Centre for Distance & Online Education
(CDOE)

Bachelor of Arts
(B.A.) SEM. VI

HINC-302

HINDI
(COMPULSORY)

Guru Jambheshwar University of Science & Technology, HISAR-125001

विषय सूची

Sr. No.	Title	Pages
Part – 1	नव्यतर विधाओं पर आधारित पाठ्य पुस्तक	7
Part - II	हरियाणवी भाषा और साहित्य का इतिहास	100
Part – III	प्रयोजनमूलक हिन्दी: पत्रकारिता	138

Part 1 नव्यतर विधाओं पर आधरित पाठ्य पुस्तक

1	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : उत्साह (निबन्ध)	
2	महादेवी वर्मा : गिल्लू (संस्मरण)	
3	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : देवदारू (ललित निबन्ध)	
4	विद्यानिवास मिश्र : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (निबन्ध)	
5	हरिशंकर परसाई : सदाचार का ताबीज (व्यंग्य)	
6	राहुल सांकृत्यायन : तिब्बत के पथ पर (यात्रावृत)	

No.	Title	Author	Page
Part -II	हरियाणवी भाषा और साहित्य का इतिहास	Dr. Vibha Malik	
•	हरियाणवी भाषा का उद्भव और विकास		
•	हरियाणवी भाषा की प्रमुख बोलियाँ		
•	हरियाणा की सांग परम्परा : उद्भव और विकास		
•	हरियाणवी भाषा का आधुनिक पद्य और गद्य साहित्य		
•	हरियाणवी आधुनिक कविता: परिचय और प्रवृतियाँ		

•	हरियाणवी का गद्य साहित्य:उपन्यास ,कहानी नाट्य		
Part - III	प्रयोजनमूलक हिंदी : पत्रकारिता		
•	पत्रकारिता	Dr. Vibha Malik	
•	फीचर लेखन	Dr. Vibha Malik	
•	स्वतन्त्र प्रेस की अवधारणा		

* सन्दर्भ सामग्री

Edited by: Dr. Shakuntla Devi (Prog. Coordinator for BA)

***Syllabus Copy-Must be read by the student (Given as below☟)**

Refrences

1. http://egyankosh.ac.in//handle/123456789/70349
2. http://egyankosh.ac.in//handle/123456789/89832
3. http://egyankosh.ac.in//handle/123456789/89815
4. http://egyankosh.ac.in//handle/123456789/89816
5. https://epgp.inflibnet.ac.in/Home/ViewSubject?catid=Ou87QKvJCO+SE37bEZFbPA
6. http://egyankosh.ac.in//handle/123456789/70706
7. https://www.egyankosh.ac.in/bitstream/123456789/102843/1/Unit-6.pdf

गुरु जम्भेश्वर विज्ञान एवं प्रोद्यौगिकी विश्वविद्यालय हिसार

बी०ए० तृतिय वर्ष छटवाँ समेस्टर

पेपर - ए HINC 302. हिन्दी (अनिवार्य)

कुल अंक : 100 **लिखित परीक्षा : 80**

समय : 3 घण्टे **आन्तरिक मूल्यांकन : 20**

- निर्धारित पाठ्यक्रम
    - नव्यतर विधाओं पर आधारित पाठ्य पुस्तक
    - हरियाणवी भाषा और साहित्य का इतिहास
    - प्रयोजनमूलक हिन्दी: पत्रकारिता

खण्ड(क) पाठ्यक्रम में निर्धारित रचनाकार एव ंरचना

1. बालमुकुंदगुप्त : आशाकाअंत(निबंध)
2. आचार्य रामचन्द्र शुकल : उत्साह(निबंध)
3. महादेवी वर्मा : गिल्लू(संस्मरण)
4. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : देवदारू (ललित निबंध)
5. विद्यान निवास मिश्र : मेरेरामकामुकुटभीगरहाहै(ललित निबंध)
6. हरिशंकर परसाई : सदाचारकाताबीज(व्यंग्य)
7. राहुल सांकृत्यायन : तिब्बत के पथपर(यात्रावृत)

- पाठ्यक्रम में निर्धारित रचनाकारो के साहित्यिक परिचय, निबन्धों के विषय तथा कला पक्ष पर ही प्रश्न पूछे जाँएगे

खण्ड(ख) हरियाणवी भाषा और साहित्य का इतिहास पाठ्यक्रम में निर्धारित विषय

1. हरियाणवी भाषाका उद्भव और विकास
2. हरियाणवी भाषा की प्रमुख बोलियाँ
3. हरियाणा की सांगपरम्परा : उद्भव और विकास
4. हरियाणवी भाषा का आधुनिक पद्य और गद्य साहित्य
5. हरियाणवी आधुनिक कविता : परिचय औरप्रवृत्तियाँ
6. हरियाणवी का गद्य साहित्य : उपन्यास, कहानी, नाट्य

खण्ड(ग) प्रयोजनमूलक हिन्दी : पत्रकारिता

1. पत्रकारिता– स्वरूप और प्रकार
2. शीर्षक की संरचना
3. सम्पादक के गुण और दायित्व
4. फीचर लेखन
5. स्वतन्त्र प्रेस की अवधारणा

खण्ड(घ) सम्पूर्ण पाठ्य क्रम से वस्तुनिष्ठ प्रश्न

निर्धारित पाठ्यक्रम का वर्गीकरण और अंक विभाजन

1 खण्ड(क) निर्धारितपाठ्य पुस्तक में से व्याख्या के लिए चार अवतरणदिए जाएँगे, परीक्षार्थियों को किन्ही दो अवतरणों की व्याख्या करनी है प्रत्येक० याख्या 5 अंक और पूरा प्रश्न 10 अंकका होगा।

2 खण्ड(क) निर्धारित आलोचनात्मक प्रश्नों में से दो प्रश्न पूछे जाएँगे जिनमें से परीक्षार्थियों को एक प्रश्न का उत्तर देना होगा यह प्रश्न 5 अंक का होगा।

3 खण्ड(क) निर्धारित पाठ्य पुस्तक से छः लघुतरी प्रश्न पूछे जाएँगे, परीक्षार्थियों को लगभग 150 शब्दों में किन्ही तीन के उत्तर लिखने होंगे प्रत्येक प्रश्न 5 अंक और पूरा प्रश्न 15 अंक का होगा।

4 खण्ड(ख) निर्धारित आलोचनात्मक प्रश्नों मेंसे दो प्रश्न पूछे जाएँगे परीक्षार्थियों को एक प्रश्न का उत्तर देना होगा यह प्रश्न 7 अंक का होगा।

5 खण्ड(ख) में निर्धारित प्रश्नों में से चार लघुतरी प्रश्न पूछे जाएँगे परीक्षार्थियों ने इनमें से दो के उत्तर लिखने होंगे प्रत्येक प्रश्न 4 अंक और पूरा प्रश्न 8 अंक का होगा।

6 खण्ड(ग) में निर्धारित पाठ्यक्रम में से छः लघुतरी प्रश्न दिए जाएँगे जिनमें से परीक्षार्थियों को तीन प्रश्नों के उत्तर 150 शब्दों में लिखने होंगे प्रत्येक प्रश्न के लिए 5 अंक और पूरा प्रश्न 15 अंक का होगा।

7 खण्ड(ग) में पूरे पाठ्यक्रम से दस लघुत्तरी प्रश्न पूछे जाएँगे प्रत्येक प्रश्न 2 अंक का होगा पूरा प्रश्न 20 अंक का होगा प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 25-50 शब्दों में लिखना होगा।

ACKNOWLEDGEMENT

As we know that SWAYAM (http://swayam.gov.in) is India's National MOOC Platform. It has been designed to achieve the 3 cardinal principles of Educational Policy of India (NPE) i.e. Access, Equity and Quality since very earlier to attain.

It is only in reference to cover a number of Courses related to School/ Vocational, Under-graduate, Post-graduate, Engineering and other professional Courses.

In a recent move, the UGC (University Grant Commission) has given the relaxation to institutions to allow upto 40% of the total courses in a particular Programme per semester to be offered via SWAYAM,EPG-Pathshalla and EGyan Kosh which is world's Largest Online Free E-learning Platform Portal.

Therefore, efforts are made to frame SLM (Self Learning Material) for Sociology i.e. HINC 302 from only recommended Portal/Sources only to provide an easy and quick study material as per rule.

Therefore, it is directed to the concerned students that go through your allocated syllabus and be prepare while choosing the content as per given guidelines please.

Requisite efforts have been made by Mrs. Meena Rani (Hindi Officer) to assess the required content as per syllabus.Hence, Iam indebted to her for genuine assistance to trace the desired content by the time.

Programme Coordinator (BA)

Dr. Shakuntla Devi

MA (Sociology), M.Ed.,Ph.D (Education)

PART-I

इकाई 11 रामचंद्र शुक्ल और उनका निबंध साहित्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 आर्चाय रामचन्द्र शुक्ल का संक्षिप्त जीवन परिचय

11.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य–सर्जन

11.4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध साहित्य की विशेषताएँ

11.5 हिंदी निबंध–साहित्य के विकास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान

11.6 सारांश

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप रामचन्द्र शुक्ल के निबंध साहित्य का परिचय दे पाएँगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप :

- रामचंद्र शुक्ल का संक्षिप्त जीवन परिचय जान पाएँगे,
- रामचन्द्र शुक्ल के साहित्य सर्जन के बारे में परिचित हो सकेंगे,
- रामचन्द्र शुक्ल के निबंधों की विशेषताएँ बता सकेंगे, और
- हिंदी निबंध–साहित्य के विकास में रामचन्द्र शुक्ल के योगदान को समझा सकेंगे।

11.1 प्रस्तावना

रामचन्द्र शुक्ल हिंदी के सबसे प्रतिष्ठित लेखक और आलोचक हैं। उनकी विद्वत्ता को ध्यान में रखते हुए हिंदी साहित्य जगत उन्हें आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के नाम से संबोधित करता है। हम भी इस इकाई में उन्हें आचार्य के रूप में ही संबोधित करेंगे। उन्होंने सबसे पहले हिंदी में व्यवस्थित साहित्य–सिद्धांतों की नींव रखी और उन्हीं आधारों पर उन्होंने हिंदी साहित्य का इतिहास लिखा और हिंदी साहित्य की व्यावहारिक आलोचना की। उन्होंने हिंदी–साहित्य के अध्ययन– अध्यापन के लिए व्यवस्थित रूप से पाठ्यक्रम का निर्माण किया और पाठ्यक्रम उपलब्ध करवाया। इसी के साथ–साथ उन्होंने हिंदी निबंध लेखन किया। आचार्य शुक्ल का यह सारा साहित्यिक कर्म एक दूसरे का पूरक है। इसलिए हम इस इकाई में उनके संपूर्ण साहित्य के संदर्भ में उनके निबंध साहित्य का अध्ययन करेंगे।

11.2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का संक्षिप्त जीवन परिचय

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म 4 अक्टूबर, 1884 को बस्ती के अगौना नामक गाँव में हुआ और मृत्यु काशी में 2 फरवरी, 1941 को हुई। इनकी प्रारंभिक शिक्षा मिर्जापुर और बाद में प्रयाग में हुई। मिर्जापुर के लंदन मिशन स्कूल से शुक्लजी ने स्कूल की अंतिम परीक्षा सन् 1901 में उत्तीर्ण की। शुक्ल जी ने कायस्थ पाठशाला, प्रयाग से इंटर

किया। आगे उनका संपूर्ण अध्ययन स्वाध्याय से ही हुआ। आचार्य शुक्ल का बचपन अवध क्षेत्र में गुजरा। आरंभिक शिक्षा के साथ उन्होंने उर्दू, अंग्रेजी, बंगला और हिंदी भाषा और साहित्य का गंभीर अध्ययन किया। मिर्जापुर में उनका संपर्क भारतेंदु युग के महत्वपूर्ण रचनाकार चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन से हुआ। इससे उन्होंने भारतेंदु युग के साहित्य को तो जाना–समझा ही, समकालीन साहित्य की गतिविधियों से भी जुड़े। सन् 1903–08 तक शुक्लजी ने 'आनंद कादम्बिनी' पत्रिका के संपादन में चौधरी बदरीनारायण प्रेमघन का सहयोग किया। इस कार्य से उन्हें भाषा और संपादन की समझ विकसित हुई। इसी दौरान उनके साहित्य लेखन का प्रारंभ भी हो चुका था। 'कविता क्या है' निबंध का प्रारंभिक रूप सन् 1909 की 'सरस्वती' में प्रकाशित हो चुका था। स्कूली शिक्षा समाप्त होने के कुछ महीनों के बाद सन् 1904 से 1908 तक वे लंदन मिशन स्कूल में ड्राइंग के शिक्षक रहे। इस तरह शुक्लजी के लेखन की दिशा तय करने में मिर्जापुर का जीवन महत्वपूर्ण रहा।

सन् 1908 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल मिर्जापुर से काशी आ गए। यहाँ उन्हें काशी नागरी प्रचारिणी सभा में निर्मित होने वाली 'हिंदी शब्द सागर' की महत्वाकांक्षी परियोजना में सहायक संपादन का दायित्व सौंपा गया। उस समय शुक्ल जी की उम्र लगभग 24–25 वर्ष की थी। उनका बाद का सारा जीवन काशी में ही बीता। इस कोश के प्रधान संपादक बाबू श्यामसुंदर दास थे। इस कोश में बालकृष्ण भट्ट, लाला भगवान दीन बाबू अमीर सिंह, बाबू जगमोहन वर्मा ने भी कार्य किया। ये लोग इस परियोजना में कभी जुड़ते रहे, कभी निकलते रहे, लेकिन रामचन्द्र शुक्ल इसमें अंत तक बने रहे। सन् 1927 ई. में इस कोश का कार्य पूरा हुआ। इस कोश की लंबी भूमिका आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखी। यह भूमिका बाद में परिवर्तित रूप में 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के रूप में प्रकाशित हुई। नागरी प्रचारिणी सभा इस समय आधुनिक साहित्य के निर्माण की केन्द्रीय संस्था बन गई थी। सारे लेखक किसी न किसी रूप में सभा से जुड़े हुए थे। उस समय हिंदी के प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों की खोज का कार्य भी जोर शोर से चल रहा था। इन खोजों की रिपोर्ट प्रकाशित होती थी। सभा में उन पर चर्चा हुआ करती थी। इन चर्चाओं में शुक्लजी भाग लिया करते थे। शब्दकोश के निर्माण के लिए भी विद्वानों में शब्दों को लेकर चर्चा चला करती थी। इस कोश के निर्माण में आचार्य शुक्ल की भूमिका को लेकर बाबू श्यामसुंदरदास ने लिखा "इस कोश के कार्य में आरंभ से लेकर अंत तक पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का संबंध रहा है और उन्होंने इसके लिए जो किया है, वह विशेष रूप से उल्लिखित होने योग्य है। यदि यह कहा जाए कि शब्द–सागर की उपयोगिता और सर्वांगपूर्णता का अधिकांश श्रेय पंडित रामचन्द्र शुक्ल को प्राप्त है, तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। इतिहास, दर्शन, भाषा विज्ञान, व्याकरण, साहित्य आदि सभी विषयों का समीचीन विवेचन प्रायः उन्हीं का किया हुआ है। यदि शुक्ल जी सरीखे विद्वान की सहायता प्राप्त न होती तो केवल एक या दो सहायक संपादकों की सहायता से यह कोश प्रस्तुत करना असंभव ही होता।"

सन् 1919 में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का चयन काशी हिंदू विश्वविद्यालय के प्रध्यापक के रूप में हुआ। उस समय श्याम सुंदर दास यहाँ हिंदी विभाग के अध्यक्ष थे। उस समय शुक्लजी 'हिंदी शब्द सागर' परियोजना के सहायक संपादक के साथ–साथ काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी थे। सन् 1937 में श्याम सुंदर दास के निधन के बाद आचार्य शुक्ल हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने और फिर जीवनपर्यन्त 1941

तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे। उस दौर में हिंदी साहित्य को पढ़ाने के लिए पाठ्यसामग्री का अभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य था। शुक्लजी ने इस कार्य में हाथ लगाया। सन् 1919 से वे छात्रों को पढ़ाने के क्रम में वे हिंदी साहित्य का इतिहास के नोट्स तैयार कर रहे थे। यह कार्य उन्होंने 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन के दौरान भी किया था। इस ग्रंथ की भूमिका को सुधार–संवार कर उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' लिखा। अब हिंदी साहित्य का ढाँचा बनकर तैयार हो गया था। जिसे छात्रों के साथ–साथ कोई भी हिंदी प्रेमी पढ़–समझ सकता था। इस क्रम में शुक्लजी ने सूरदास के 'भ्रमरगीत' संबंधी पदों को इकट्ठा किया तथा उसकी विस्तृत भूमिका लिखी। इसी तरह 'जायसी ग्रंथावली' का संपादन किया तथा उसकी भी लंबी भूमिका लिखी। शुक्लजी के इस कार्य को आलोचना और प्राध्यापकीय आलोचना के मेल के रूप में देखा जा सकता है। अन्य शैक्षिणिक कार्यों के अलावा विश्वविद्यालय में उनका यह उल्लेखनीय कार्य था।

इस बीच शुक्लजी ने काव्यशास्त्र और साहित्य सिद्धांतों का भी गंभीर मनन किया, जिसको हम उनकी पुस्तक 'रस मीमांसा' और 'चिंतामणि' में देख सकते हैं। 'चिंतामणि' में उन्होंने मनोविकार संबंधी निबंधों के साथ–साथ साहित्य–सिद्धांतों का भी विश्लेषण–मूल्यांकन किया। अब तक शुक्लजी को राष्ट्रीय ख्याति स्थापित हो चुकी थी। 'चिंतामणि' पर उन्हें अत्यंत प्रतिष्ठित मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया था। यह पुरस्कार काशी के मंगला प्रसाद परिवार द्वारा साहित्य के क्षेत्र में विशेष योगदान देने वाले लेखक को दिया जाता था। इसकी स्थापना पुरुषोत्तमदास टंडन ने की थी, जो हिंदी साहित्य सम्मेलन द्वारा दिया जाता था। उस दौर में यह पुरस्कार इतना अधिक प्रतिष्ठित था कि जिस कृति पर यह पुरस्कार दिया जाता था, उसके अगले संस्करणों में यह प्रकाशित किया जाता था कि इस पुस्तक को मंगला प्रसाद पारितोषिक प्रदान किया गया है। यह पारितोषिक ही आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की प्रतिष्ठा की सार्वजनिक स्वीकृति था । यदि उन्हें यह पुरस्कार न दिया गया होता, तो इतिहास में इस बात का उल्लेख होता कि उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक नहीं दिया गया। तब यह पारितोषिक ही संदेहास्पद हो जाता।

काम के बोझ और अतिरिक्त व्यस्तता के कारण वे अपने स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रख पाते थे। इस कारण अपने सेवा काल के दौरान ही 2 फरवरी, सन् 1941 को हृदयगति के रुक जाने से उनकी मृत्यु हो गई।

बोध प्रश्न

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म कब और कहाँ हुआ था ?

   ....

   ....

   ....

2. नागरी प्रचारिणी सभा से आचार्य शुक्ल का जुड़ाव किस प्रकार का था?

   ....

   ....

   ....

3. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) शुक्ल जी ने काव्यशास्त्र और .... का भी गंभीर मनन किया।

ख) .... पर उन्हें मंगला प्रसाद पारितोषित प्रदान किया गया।

ग) उन्होंने .... का संपादन किया।

घ) सन् 1903–08 तक शुक्ल जी के .... पत्रिका के संपादन में सहयोग किया।

11.3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का साहित्य–सर्जन

डॉ. रामविलास शर्मा का मत है कि हिंदी आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का वही महत्व है, जो हिन्दी साहित्य में उपन्यासकार प्रेमचंद का और कवि निराला का। अर्थात् रामचन्द्र शुक्ल हिंदी आलोचना के सबसे समर्थ हस्ताक्षर हैं। उनकी आलोचना को हम तीन हिस्सों में बाँट सकते हैं– मिर्जापुर का दौर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा का समय और हिंदी विभाग, बनारस हिंदू विश्वविद्यालय का युग। उनके लेखन का प्रारंभ मिर्जापुर में हो गया था। उस समय उनकी कुछ कविताएँ, लेख और अनुवाद प्रकाशित हुए थे। सन् 1903 में उनकी एक कहानी प्रकाशित हुई थी– 'ग्यारह वर्ष का समय'। हिंदी कहानी के इतिहास पर चर्चा करते हुए विद्वान लोग इस कहानी की भी चर्चा करते हैं। सन् 1901 के आसपास उनके लेख तत्कालीन प्रतिष्ठित पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित होने लगे थे। बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी उनकी रचनाओं को महत्त्व देकर प्रकाशित किया। सन् 1898–99 में उन्होंने एडिसन की रचना का अनुवाद 'कल्पना का आनंद' के नाम से किया। इसी तरह 'मेगस्थनीज़ का भारतवर्ष वर्णन' का भी उन्होंने अनुवाद किया। सन् 1903–08 तक वे चौधरी बदरीनारायण 'प्रेमघन' की पत्रिका 'आनंद कादंबिनी' के नए सहायक संपादक बनाए गए। इस दौर में उन्होंने कई हिंदी लेखकों के संस्मरण और जीवन चरित भी लिखे। इनमें 'प्रेमघन की छाया–स्मृति' और जीवन चरित भी लिखे। इनमें 'प्रेमघन की छाया–स्मृति' और फ्रेडरिक पिंकाट पर लिखे हुए लेखों को बहुत सराहना मिली।

नागरी प्रचारिणी सभा में आने के पश्चात् भी शुक्लजी का लेखन कार्य बदस्तूर जारी रहा। हिंदी भाषा के विकास के लिए स्थापित 'काशी नागरी–प्रचारिणी सभा' का हिन्दी आलोचना विकास में बहुत योगदान था। सभा ने प्राचीन साहित्य को खोज निकालने का कार्य तो किया ही था, साथ ही हिंदी भाषा का व्याकरण, हिंदी शब्दकोश और हिंदी साहित्य का इतिहास लिखने–लिखवाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। इसके साथ–साथ सभा की अपनी पत्रिका निकलती थी। सन् 1909 से 1914 तक आचार्य शुक्ल नागरी प्रचारिणी पत्रिका के संपादक बने। "हिंदी शब्द सागर" की लंबी भूमिका सन् 1927 में "हिंदी भाषा का विकास" शीर्षक से लिखी, जो आगे चलकर "हिंदी साहित्य का इतिहास" की आधार बनी। इसी तरह 'विश्व प्रपंच' की भूमिका एवं वैज्ञानिक ग्रंथ का अनुवाद किया। इस दौर में शुक्लजी अनुवादक के रूप में भी सक्रिय रहे। भाव और मनोविकार संबंधी अधिकांश निबंधों का प्रारंभिक रूप इसी दौर में लिखा गया, जिसे शुक्लजी ने सुधार–परिष्कार करके 'चिंतामणि' में प्रकाशित किया।

तीसरे दौर में शुक्लजी काशी हिंदू विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में आ गए थे। यहाँ आकर उन्होंने हिंदी के छात्रों के लिए स्तरीय पाठ्य सामग्री के निर्माण, संपादन और लेखन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। 'भ्रमरगीत सार' और 'जायसी ग्रंथावली' का

संपादन और उनकी लंबी भूमिकाएँ इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य हैं। इन सबके अतिरिक्त सबसे बड़ा कार्य 'हिंदी साहित्य का इतिहास' है। यह ग्रंथ पहली बार सन् 1929 में प्रकाशित हुआ। इसका संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण सन् 1941 में आया। इसमें शुक्लजी की कामना थी कि "मुझे अपने साहित्य का एक पक्का और व्यवस्थित ढाँचा खड़ा करना था न कि कवि–कीर्तन करना।" 'साहित्य का इतिहास' संबंधी अपने दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा, "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिंब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अंत तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परंपरा को परखते हुए साहित्य–परंपरा के साथ सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है। जनता की "चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक और धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है।" यह पूरा ढाँचा तो उन्होंने रखा ही, साथ ही हिंदी साहित्य के इतिहास का काल–विभाजन भी किया, जो थोड़े बहुत फेर बदल के बाद आज भी यथावत मौजूद है। उन्होंने आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल के रूप में इसका विभाजन किया। मध्यकाल के उन्होंने दो विभाजन किए–पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल। इन सब कालों के साहित्यिक नामकरण भी उन्होंने किए। आदिकाल को वीरगाथा काल, पूर्व मध्यकाल को भक्तिकाल, उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल और आधुनिक काल को गद्य काल नाम से परिभाषित किया। इस इतिहास में वर्णित किसी भी कवि के बारे में आज भी जब कोई आलोचक टिप्पणी करता है तो सबसे पहले वह यह अवश्य देख लेता है कि शुक्लजी ने इस कवि के बारे में क्या कहा है।

इसके साथ ही शुक्ल जी ने हिंदी आलोचना को संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रभाव से मुक्त किया तथा हिंदी का अपना व्यवस्थित शास्त्र निर्मित किया। 'रस मीमांसा' इस दृष्टि से महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इसी तरह संस्कृत काव्यशास्त्र में जो कमियाँ रह गई थीं, उनकी पूर्ति करने का प्रयास भी उन्होंने किया। "चिंतामणि" भाग एक के निबंधों को इसी दृष्टि से पढ़ा जाना चाहिए।

इस तरह लेखन के क्षेत्र में उनकी प्रमुख रुचियों को हम इस प्रकार से समझ सकते हैं– आलोचना, साहित्य सिद्धांत, संपादन, पाठ्यसामग्री का निर्माण, हिंदी साहित्य का इतिहास, कविता–कहानी का लेखन, संस्मरण एवं अन्य विधाएँ। इन सब क्षेत्रों में शुक्लजी ने महत्वपूर्ण कार्य किया।

11.4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबंध साहित्य की विशेषताएँ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का निबंध साहित्य उनकी पुस्तक "चिंतामणि" में संकलित है। इस पुस्तक का प्रकाशन 1939 में हुआ, जब वे जीवित थे। पहले इस पुस्तक का नाम "विचार वीथी" (1930) था जिसे शुक्लजी ने बदल दिया। इस संकलन में भाव और मनोविकार संबंधी 10 निबंध और 7 अन्य निबंध थे। इनमें से प्रारंभिक 10 निबंध ही ललित निबंधों की श्रेणी में आएँगे, शेष निबंध काव्यशास्त्र और आलोचना से संबंधित है। इन निबंधों का अध्ययन ललित निबंधों के अंतर्गत नहीं किया जा सकता। शुक्लजी की मृत्यु के बाद उनके तीन अन्य निबंधों को शामिल करके एक नया संकलन तैयार किया गया और उसे "चिंतामणि" भाग 2 शीर्षक दिया। इस तरह शुक्ल जी की मूल पुस्तक का शीर्षक बदलकर "चिंतामणि भाग 1" हो गया। इसका संपादन विश्वनाथ

प्रसाद मिश्र ने किया और यह पुस्तक सन् 1945 में प्रकाशित हुई। इसके बाद 1983 में शुक्लजी के प्रकाशित 21 निबंधों को मिलाकर 'चिंतामणि भाग 3' शीर्षक पुस्तक तैयार हुई। इसका संपादन नामवर सिंह ने किया। शोधकर्ताओं ने शुक्लजी के कुछ और निबंध खोजे। कुछ अंग्रेजी निबंधों का हिंदी अनुवाद किया और 'चिंतामणि भाग 4' पुस्तक तैयार की। इस पुस्तक में उनके कुल 47 निबंध शामिल किए गए। इसका संपादन कुसुम चतुर्वेदी और ओम प्रकाश सिंह ने किया। यह पुस्तक सन् 2002 में प्रकाशित हुई। इस तरह उनके कुल 89 निबंध हुए।

शुक्लजी के इन निबंधों को दो भागों में बाँटा जा सकता है– मनोविकार संबंधी ललित निबंध और आलोचनात्मक निबंध। आलोचनात्मक निबंधों में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों तरह के निबंध शामिल किए जा सकते हैं। इनका अध्ययन शुक्लजी की आलोचना और काव्यशास्त्रीय चिंतन के भीतर किया जाना चाहिए। निबंध साहित्य के अध्ययन में भाव और मनोविकार संबंधी निबंधों का ही अध्ययन होता है और होना भी चाहिए। इस इकाई में हम इन्हीं निबंधों का अध्ययन करेंगे।

आचार्य शुक्ल ने 'चिंतामणि' की एक अति संक्षिप्त भूमिका लिखी। इस भूमिका में उनके निबंधों की कुछ विशेषताएँ उन्होंने स्वयं ही बता दी हैं। भूमिका को शुक्लजी ने ''निवेदन'' के रूप में कहा है। उन्होंने लिखा है ''इस पुस्तक में मेरी अन्तर्यात्रा में पड़ने वाले कुछ प्रदेश हैं। यात्रा के लिए निकलती रही है बुद्धि पर हृदय को साथ लेकर। अपना रास्ता निकालती हुई बुद्धि जहाँ कहीं मार्मिक या भावाकर्षक स्थलों पर पहुँचती है, वहाँ हृदय थोड़ा बहुत रमता और अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ कहता गया। इस प्रकार यात्रा के श्रम का परिहार होता रहा है। बुद्धि पथ पर हृदय भी अपने लिए कुछ-न- कुछ पाता रहा है। बस, इतना ही निवेदन करके इस बात का निर्णय मैं विज्ञ पाठकों पर छोड़ता हूँ कि ये निबंध विषय–प्रधान हैं या व्यक्ति–प्रधान।'' यह 'निवेदन' उन्होंने 2 फरवरी, 1939 को काशी में कहा है।

इन निबंधों का विषय, जिसे शुक्लजी ने 'प्रदेश' की संज्ञा दी है, हृदय में स्थित भाव और मनोविकार हैं, लेकिन इनका लेखन, विश्लेषण और मूल्यांकन बुद्धि द्वारा किया गया है। अर्थात् अंतिम विश्लेषण में ये निबंध बुद्धि प्रधान कहे जाएँगे। लेकिन इनमें शुद्ध बौद्धिक विवेचन नहीं है। कहीं–कहीं शुक्लजी ने अपने हृदय–गत भावों को भी वाणी दी है। जहाँ शुक्ल जी ने ऐसा किया है, वहाँ ये निबंध अधिक 'मार्मिक' और 'भावाकर्षक' हो गए हैं। कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये निबंध इन प्रस्तुत भावों का साक्षात्कार नहीं कराते, वरन् उनके स्वरूप को स्पष्ट करते हैं और यह बौद्धिक व्यापार है। शुक्लजी के समय में निबंधों के स्वरूप को लेकर काफी बहसें होती रही हैं। उन्हीं के संदर्भ में उन्होंने 'विज्ञ पाठकों' से हलका सा परिहास किया है कि वे इनको चाहें तो 'विषय–प्रधान' निबंध कहें या 'व्यक्ति प्रधान'। आगे चलकर जब आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध आए, तब इसी मानक के आधार पर 'विज्ञजनों' ने शुक्लजी के निबंधों को 'विषय प्रधान' और द्विवेदी जी के निबंधों को 'व्यक्ति–प्रधान' कहकर निबंध के स्वरूप को समझाना प्रारंभ किया।

शुक्लजी से पहले भी, भारतेंदु युग के लेखकों ने इस तरह के निबंध लिखे थे। प्रताप नारायण मिश्र ने भी चिंता, छल, खुशामद जैसी वृत्तियों पर छिटपुट निबंध लिखे थे। अन्य लेखकों ने भी ऐसे निबंध लिखे थे, जिनमें विचार और परिहास का अद्भुत मिश्रण हुआ करता था। तब भी इतनी गंभीरता से इन भावों का विवेचन किसी ने नहीं किया था।

आचार्य शुक्ल के निबंधों की विशेषताएँ जानने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि उन्होंने ये निबंध क्यों लिखे। दरअसल आचार्य रामचन्द्र शुक्ल साहित्य सिद्धांतों के जानकार, व्याख्याकार के साथ–साथ सिद्धांतों के सर्जक भी हैं। उन्होंने विस्तार से संस्कृत काव्यशास्त्र का गहन अध्ययन किया। संस्कृत आचार्यों के बीच भरत के रस–सूत्र पर गहन विचार मंथन हुआ है। भरत का सूत्र है कि विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है। इस सूत्र के एक–एक बिंदु को लेकर पर्याप्त विचार–विमर्श हुआ है। इनमें से एक प्रश्न यह भी उठा कि इस रस सूत्र में भरत ने स्थायी भाव का उल्लेख क्यों नहीं किया। गणेश त्र्यंबक देश पाण्डेय ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए रस की दो परंपराओं का उल्लेख किया है। एक परंपरा मानती है कि स्थायी भाव ही रस होता है, इसलिए भरत ने इसका उल्लेख नहीं किया। दूसरी परंपरा कहती है कि रस स्थायी विलक्षण होता है, इसलिए भरत ने उसका उल्लेख नहीं किया। यह दूसरी परंपरा अभिनवगुप्त की थी, जो आगे चलकर संपूर्ण भारतीय बौद्धिक समाज की मूल मान्यता बन गई।

इस बहस के बीच में शुक्लजी ने यह महसूस किया कि संस्कृत में इन स्थायी भावों का कहीं कोई स्वरूप विवेचन ही नहीं मिलता। किसी आचार्य ने इसकी आवश्यकता महसूस नहीं की कि इन भावों का स्वरूप विश्लेषण कर दे। फिर सिर्फ स्थायी भावों का ही क्यों, अन्य भावों का भी कोई मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विवेचन पाठकों को नहीं मिलता। अतः रामचंद्र शुक्ल आचार्य ने संस्कृत काव्यशास्त्र की इस कमी को दूर करने के लिए भाव और मनोविकार के बारे में सोचना आरंभ किया। जब सोचना आरम्भ किया तो अनेक नई बातें अनजाने ही इसमें जुड़ती चली गईं। इसलिए ये निबंध सिर्फ मनोविकार संबंधी वैचारिक निबंध नहीं हैं। यह शुक्ल जी के काव्यशास्त्रीय चिंतन के आधार हैं। अतः ये भी शास्त्रीय निबंध है। इस कारण शुक्लजी ने "चिंतामणि" में इन भावों के विवेचन के तुरन्त बाद "कविता क्या है" निबंध को सम्मिलित किया। "कविता क्या है" निबंध को समझने के लिए शुक्लजी के भाव–विवेचन को पढ़ना जरूरी है।

संस्कृत की आत्मवादी काव्य परंपरा भावों को शाश्वत मानती है। उनमें न तो परिवर्तन होता है और न विकास होता है। शुक्लजी इस धारणा को नहीं मानते। उनके भाव–विवेचन का प्रारंभ इस मान्यता से होता है कि मनुष्य सुख और दुःख की दो जोड़ी अनुभूतियों को लेकर पैदा होता है। "सुख और दुःख" की मूल अनुभूति ही विषय भेद के अनुसार प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा, इत्यादि मनोविकारों का जटिल रूप धारण करती है।

इस तरह शुक्लजी के अनुसार भाव विकसित होते हैं। वे परिवर्तित होते हैं और समय पाकर किसी दूसरे भाव में रूपांतरित भी हो जाते हैं। जैसे शुक्लजी ने लिखा कि 'बैर क्रोध का अचार या मुरब्बा है' अर्थात् कई दिनों तक क्रोध रहने से वह बैर में बदल जाता है। ऐसे ही वे अन्य भावों के रूपांतरण का भी उदाहरण देते हैं। दूसरे शुक्लजी का मानना है कि भाव अपनी प्रकृति में सामाजिक होते हैं। उनका 'शेष सृष्टि के साथ' रिश्ता होता है। उसी के साथ वे विकसित होते हैं या विकसित होने चाहिए।

शुक्लजी के अनुसार "जिस प्रकार जगत अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है। इस अनेक भावों का व्यायाम और परिष्कार तभी हो सकता है जबकि उन सबका प्रकृत सामंजस्य जगत् के भिन्न–भिन्न रूपों और व्यापारों के साथ हो जाए। जब तक यह सामंजस्य पूरा–पूरा न होगा, तब तक यह नहीं कहा जा

सकता कि कोई पूरी तरह जी रहा है।'' उनका यह भी मत है कि शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए। लोकरक्षा और लोकरंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।

इसके साथ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि शुक्लजी ज्ञान विरोधी भावुकता का कभी समर्थन नहीं करते। वे 'बच्चन' की तरह बुद्धि और हृदय के द्वंद्व को भी नहीं मानते। उनका स्पष्ट मत है कि ''ज्ञान–प्रसार के भीतर ही हृदय–प्रसार होता है और हृदय–प्रसार ही काव्य का सच्चा लक्ष्य है।''उनके अनुसार ज्ञान का संबंध दर्शन से और भाव का संबंध कविता से होता है। ''विचार या दर्शन जहाँ भाव का सहारा लेकर आता है, तभी वह काव्य क्षेत्र में प्रविष्ट हो पाता है।'' यहाँ तक कि वे कल्पना को भी भाव के अधीन रखते हैं।

यहाँ आकर वे भाव का संबंध कविता से जोड़ते हैं। भाव का परिष्कार जरूरी है, लेकिन यह परिष्कार सिर्फ भाव के स्तर पर संभव नहीं है। शेष सृष्टि के साथ भाव का संपर्क होना चाहिए। यह कार्य कविता करती है। उनके अनुसार कविता मनुष्य के हृदय को व्यक्तिगत संबंध के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य भावभूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत के नाना रूपों और व्यापारों के साथ उसके प्रकृत संबंध का सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। इस सौन्दर्य के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार ओर जगत के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है।

जिन धार्मिक और रहस्यवादी संतों ने 'भाव–दमन' के उपदेश दिए हैं, शुक्लजी उनका विरोध करते हैं। वे उन लोगों से भी सहमत नहीं हैं, जो कोमल और रुचिकर भावों का तो समर्थन करते हैं, लेकिन शेष भावों का विरोध करते हैं। इस भावपरक दृष्टि के कारण उन्होंने कबीर, टॉलस्टाय, गाँधीजी आदि का विरोध किया है। साहित्य में आध्यात्मिकता की चर्चा को भी वे ठीक नहीं समझते। शुक्लजी तो यहाँ तक मानते हैं कि भाव ही कर्म के प्रेरक होते हैं। शुद्ध बुद्धि की प्रेरणा, से मनुष्य कोई काम करता ही नहीं। इसके साथ ही वे मूल्यहीन भाववाद का समर्थन नहीं करते। वे सभी भावों के उचित सामंजस्य की वकालत करते हैं। यह सामंजस्य लोक मंगल द्वारा स्वतः घटित हो जाता है। उनका मानना है कि ''समस्त मानव जीवन के प्रवर्तक, भाव या मनोविकार होते हैं। मनुष्य की प्रवृत्तियों की तह में अनेक प्रकार के भाव ही प्रेरक के रूप में पाए जाते हैं। शील या चरित्र का मूल भी भावों के विशेष प्रकार के संगठन में ही समझना चाहिए। लोक रक्षा और लोकरंजन की सारी व्यवस्था का ढाँचा इन्हीं पर ठहराया गया है।''

अपने इसी दृष्टिकोण के कारण कविता को भाव–व्यापार मानने के बावजूद हिंदी साहित्य का इतिहास लिखते हैं और इतिहास में तथ्यों को महत्व देते हैं। इस तरह वे स्वतः ही संस्कृत की रसवादी धारा से अपने आपको अलग कर लेते हैं। राजनीतिक रूप से शुक्लजी तिलक के करीब हैं। राजनीतिक दृष्टिकोण का सार–संक्षेप करते हुए कहा जा सकता है कि शुक्लजी राजनीतिक दृष्टि से साम्राज्यवाद विरोधी हैं। वे जातीय उत्पीड़न, भाषायी भेदभाव और सांस्कृतिक अवमानना के विरुद्ध हैं। भावावेग प्रेरित स्वाधीनता संग्राम में उनका यकीन रहा है। वे गाँधीजी की मान्यताओं के समर्थक कभी नहीं रहे। साम्यवाद और समाजवाद का भी उन्होंने यदाकदा विरोध ही किया है। राम के आदर्श रूप पर मुग्ध शुक्लजी अन्याय के प्रतिकार में यकीन रखते हैं। ईश्वर में विश्वास करते हुए भी वे साहित्य की लौकिक व्याख्या करते हैं। भावपरक दृष्टि और लोकमंगल की अवधारणा के अंतर्संघर्ष में वे भाव के पक्ष में खड़े रहते हैं।

बोध प्रश्न

4. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   क) शुक्ल जी ज्ञान विरोधी .... का समर्थन नहीं करते।

   ख) 'चिंतामणि भाग–3' का संपादन .... ने किया।

   ग) शुक्ल जी के निबंध .... में संकलित है।

   घ) बैर क्रोध का .... या .... है।

   ङ) आचार्य शुक्ल इतिहास में ....को महत्व देते हैं।

5. हिंदी निबंध साहित्य के विकास में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का महत्व बताइए। (लगभग 10 पंक्तियों में)

....

....

....

....

....

....

....

....

....

....

11.5 हिंदी निबंध-साहित्य के विकास में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का योगदान

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आधुनिक काल को 'गद्य काल' का नाम दिया है। अर्थात् इस दौर में गद्य की विभिन्न विधाओं का प्रचुर मात्रा में विकास हुआ और ऐतिहासिक दृष्टि से यह सबसे महत्वपूर्ण है। इसके साथ ही उन्होंने कहा कि "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबंध गद्य की कसौटी है। भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास निबंधों में ही सबसे अधिक संभव होता है।" इसका अर्थ यह है कि आधुनिक काल की सबसे प्रभावशाली विधा निबंध है। हालाँकि मात्रा की दृष्टि से पाठकों की संख्या उपन्यास और कहानी की अधिक है, लेकिन भाषा के महत्व की दृष्टि से कथेतर गद्य–विधा 'निबंध' महत्वपूर्ण है। शुक्लजी ने अपने "हिंदी साहित्य का इतिहास" में निबंध के विकास को महत्व देकर उल्लिखित किया है।

हिंदी में निबंध का आगमन प्रेस और साहित्यिक पत्रकारिता के साथ होता है। आरंभिक हिंदी साहित्यिक पत्रिकाओं में निबंध अनिवार्य रूप से होता था। दरअसल, यह शिक्षित वर्ग की पाठ्य विधा है। कविता को हम सुन भी सकते हैं, परंतु निबंध का आस्वाद लेने के लिए आपको शिक्षित होना अनिवार्य है। निबंध का यह पाठक प्रबुद्ध भी होना

चाहिए। अपने ज्ञान को लगातार विकसित करने की चेष्टा करने वाला पाठक ही निबंध पढ़ता है अर्थात् यह मनोरंजक विधा नहीं है। मनोरंजन के लिए वह कहानी पढ़ सकता है। निबंध का पाठक कुछ जानना–समझना चाहता है। लेखक भी उसे कुछ बताना चाहता है। भले ही वह हल्के–फुल्के ढंग से बताए। भले ही हास–परिहास करते हुए बताए, तब भी निबंध लेखक के पास कुछ बात या विचार होने चाहिए। ये विचार गंभीर और मौलिक होने चाहिए। पुरानी बातों को पाठक निबंध में नहीं पढ़ना चाहता। इस दृष्टि से आप शुक्ल जी के निबंधों को देख–परख सकते हैं।

शुक्लजी ने जिन भावों और मनोविकारों पर लिखा है, उनके स्वरूप को उदाहरण देकर बारीकी से समझाया है। इस समझाने के लिए जहाँ आवश्यकता महसूस हुई है, वहाँ उन्होंने अन्य भावों और मनोविकारों से तुलना करके भी समझाया है। इस पाठ्यक्रम में आप आचार्य शुक्ल के निबंध 'लोभ और प्रीति' का अध्ययन कर रहे हैं। लोभ, प्रीति, श्रद्धा, भक्ति, चारों एक ही तरह के भाव है। शुक्लजी ने निबंध में सबको अलग–अलग समझाते हुए एक दूसरे से तुलना करके स्पष्ट किया है कि दरअसल लोभ और प्रीति में या श्रद्धा और भक्ति में क्या समानता है और क्या असमानता है।

दरअसल, प्रत्येक निबंध का एक केन्द्रीय विचार होता है। शुक्लजी उस केन्द्रीय विचार को समझाते हैं। आगे चलकर उस विचार का विकास होता है। उस विचार के जितने आयाम हो सकते हैं, शुक्लजी सबके बारे में बताते जाते हैं। उनका प्रत्येक निबंध सुगठित होता है। प्रत्येक पंक्ति में कोई बात होती है, जो नई होती है। फिर उसके उदाहरण आते हैं, तुलना होती है। यदि कहीं हास्य–व्यंग्य भी आता है तो शुक्लजी उसे व्यक्त करके पुनः अपनी मूल बात पर आ जाते हैं।

शुक्लजी के अनुसार निबंध तो उसी को कहना चाहिए जिसमें व्यक्तित्व अर्थात् व्यक्तिगत विशेषता हो अर्थात् किसी भी गद्यांश को पढ़कर हम कह सकते हैं कि यह हजारी प्रसाद द्विवेदी का या रामवृक्ष बेनीपुरी का लेखन है। व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रृंखला रखी जाए या जानबूझकर जगह–जगह से तोड़ दी जाए। "भावों की विचित्रता दिखाने के लिए ऐसी अर्थ योजना की जाए तो उनकी अनुभूति के प्रकृत या लोक सामान्य स्वरूप से संबंध ही न रखे अथवा भाषा से सरकस वालों की–सी कसरत या हठयोगियों जैसे आसन कराये जायें जिनका लक्ष्य तमाशा दिखाने के सिवा और कुछ न हो।" दार्शनिक या शुद्ध वैचारिक लेखक सिर्फ मुख्य विचार तक अपने आपको केन्द्रित रखते हैं, जबकि निबंध लेखक "अपने मन की प्रकृति के अनुसार स्वच्छंद गति से इधर–उधर फूटी हुई सूत्र शाखाओं पर विचरता चलता है।" इसी अर्थ में निबंधकार की व्यक्तिगत विशेषता को समझना चाहिए।

विषय की गंभीरता और जटिलता को पठनीय बनाए रखने के लिए शुक्लजी ने हास–परिहास को भी शामिल किया है। जीवन के कुछ चित्र भी वे शामिल कर देते हैं ताकि अपने सामाजिक अनुभव से पाठक तादात्मय की स्थिति में आ सके। इसके बाद वे पुनः अपने मूल विषय पर आ जाते हैं। यह विचलन भी पाठ के अर्थ का विस्तार करता है। उनके इस विवेचन में कहीं भी हल्कापन नहीं आता। प्रत्येक पंक्ति अपने आप में गंभीर है, भले ही वह कोई सूक्ति न हो। पढ़ने के क्रम में शुक्लजी पाठक से भी सजग बने रहने की अपेक्षा रखते हैं। मूल्य व्यवस्था की दृष्टि से भी कहीं फूहड़ता या अश्लीलता नहीं आती। पर्याप्त शालीनता और मर्यादा से शुक्लजी अपनी बात कहते हैं।

शुक्ल जी के अपने समय में भी अन्य द्विवेदी युगीन निबंध लेखकों की उपस्थिति रही है जिनका शुक्ल जी ने अपने "हिंदी साहित्य का इतिहास" में उल्लेख किया है। इनमें पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी और सरदार पूर्ण सिंह के निबंधों की बहुत प्रशंसा की है। उनके

अलावा महावीर प्रसाद द्विवेदी, बाबू श्यामसुंदर दास, पं. माधव प्रसाद मिश्र, बाल मुकुंद गुप्त आदि का भी शुक्लजी ने आलोचनात्मक परिचय प्रस्तुत किया है।

11.6 सारांश

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का जन्म 04 अक्टूबर, 1884 को बस्ती के अगौना नामक गाँव में हुआ।
- उनकी शिक्षा मिर्जापुर में हुई। वे सिर्फ हाई–स्कूल पास थे। अपना ज्ञान उन्होंने स्वध्याय से प्राप्त किया। उन्हें हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू और बंगला भाषा का ज्ञान था।
- सन् 1903–08 तक वे 'आनंद कादम्बिनी' पत्रिका के सहायक संपादक थे। उन्होंने नागरी प्रचारिणी पत्रिका का संपादन किया। वे काशी नागरी प्रचारिणी सभा की महत्वाकांक्षी परियोजना 'हिंदी शब्द सागर' के सहायक संपादक थे।
- सन् 1919 में उनकी नियुक्ति काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हुई, जहाँ वे बाद में हिंदी विभाग के अध्यक्ष बने। 2 फरवरी, 1941 को काशी में उनका देहावसान हो गया।
- उन्होंने 'हिंदी साहित्य का इतिहास', 'रस मीमांसा' और 'चिंतामणि' जैसी प्रतिष्ठित पुस्तकें लिखीं। 'चिंतामणि' पुस्तक पर इन्हें मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ।
- 'चिंतामणि' में उन्होंने भाव और मनोविकार संबंधी निबंध लिखे। ये ललित निबंध तो हैं ही, उनके काव्यशास्त्रीय चिंतन के आधार भी हैं।
- उनके निबंधों में उनका गंभीर व्यक्तित्व अभिव्यक्त हुआ है, जिसमें हृदय और बुद्धि का सामंजस्य है।
- शुक्लजी के अनुसार भाव विकसित होते हैं, परिवर्तित होते हैं और रूपांतरित हो जाते हैं। अर्थात् वे शाश्वत नहीं होते। उनका सामाजिक संदर्भ होता है। शेष सृष्टि के साथ भावों का सामंजस्य होता है।

इस इकाई में आपने विस्तार से आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध साहित्य और उनके निबंधों की विशेषताओं का अध्ययन किया है।

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. रामचंद्र शुक्ल का जन्म 4 अक्टूबर, 1884 को बस्ती के अगौना नामक ग्राम में हुआ।
2. उत्तर के लिए 11.2 का अध्ययन कीजिए।
3. (क) साहित्य सिद्धांतों (ख) चिंतामणि (ग) जायसी ग्रंथावली (घ) आनंद कादंबिनी।
4. (क) भावुकता (ख) नामवर सिंह (ग) चिंतामणि (घ) अचार, मुरब्बा (ङ) तथ्यों।
5. उत्तर के लिए 11.5 का गहन अध्ययन कीजिए।

इकाई 12 : गिल्लू – महादेवी वर्मा (रेखाचित्र)

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 महादेवी का साहित्यिक–परिचय

12.3 'गिल्लू' का वाचन

12.4 'गिल्लू' का सार

12.5 रेखाचित्र (गिल्लू) की संदर्भ सहित व्याख्या

12.6 कथावस्तु: विचार पक्ष और भाव पक्ष

12.7 चरित्र–चित्रण

12.8 परिवेश

12.9 संरचना शिल्प: भाषा व शैली

12.10 प्रतिपाद्य

12.11 सारांश

12.12 शब्दावली

12.13 उपयोगी पुस्तकें

12.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

यह इकाई बी.ए.(कार्यक्रम) हिन्दी ऑनर्स के पाँचवे सत्र की है, जिसमें 'हिन्दी निबंध और अन्य गद्य विधाएँ' के अंतर्गत हम इस खंड की आखिरी इकाई महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'गिल्लू' का अध्ययन करेंगे। गिल्लू का अध्ययन करने के बाद आप :

- गिल्लू का सार बता पाएँगे तथा गिल्लू के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकेंगे;
- गिल्लू की कथावस्तु का विश्लेषण कर पाएँगे;
- गिल्लू के प्रतिपाद्य और सारांश समझ सकेंगे;
- गिल्लू की निर्मिति में परिवेश का योगदान को समझ सकेंगे;
- गिल्लू की संरचनागत विशेषताएं बता सकेंगे;
- उपर्युक्त विश्लेषण के माध्यम से गिल्लू के महत्व और उसकी सार्थकता जान सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

यह इस खंड कि आखिरी इकाई हैं। इसमें हम महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'गिल्लू' का अध्ययन करेंगे। इससे पहले इस खंड में हम सरदार पूर्ण सिंह, रामचन्द्र शुक्ल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, विवेकी राय...आदि के साहित्य का अध्ययन कर चुके हैं।

इस इकाई में हम सबसे पहले महादेवी वर्मा के युग की जानकारी हासिल करेंगे। इसी क्रम में महादेवी के जीवन और साहित्य का भी परिचय प्रपट किया जाएगा।

महादेवी वर्मा की ख्याति एक कवयित्री के रूप है, लेकिन उतनी ही सिद्धस्त गद्यकार भी हैं। उन्होने सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने के लिए गद्य का सहारा लिया। वे अपने रेखाचित्रों, संस्मरणों, निबंधों और आलोचना के माध्यम से समाज और खासकर दलित और नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया।

महादेवी वर्मा के रेखाचरित्र और संस्मरण एक दूसरे में घुले–मिले हुए हैं। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', और 'पथ के साथी' इसके सशक्त उदाहरण हैं। इन रचनाओं में चित्रांकन के साथ ही संवेदनात्मक गहराई भी है। यथार्थ अपनी समस्त प्रखरता के साथ उभर कर सामने आता है।

महादेवी जी ने जिन पात्रों का चित्र अपनी रचनाओं में खींचा है, उनमें शोषित स्त्री और दलित के साथ साथ बेजुबान भी शामिल हैं। 'गिल्लू' के माध्यम से उनकी बेजुबानों के प्रति संवेदनात्मक गहराई को बखूबी जान सकेंगे।

12.2 महादेवी वर्मा का साहित्यिक–परिचय

महादेवी वर्मा एक सफल कवयित्री होने के साथ–साथ एक मजी हुई गद्यकार भी थी। उनकी कविताओं में जितनी पीड़ा है उतनी ही पीड़ा गद्य में भी दिखाई देती है। उनकी कविताओं में यह पीड़ा काफी सघन होकर उभरी है। पर वे जब गद्यकार के रूप में आती हैं तो यथार्थ का सीधा सामना करती हैं और खुलकर प्रहार भी करती हैं। महदेवी वर्मा के साहित्य में व्यक्त पीड़ा उनकी अपनी पीड़ा है। यह एक नारी का भोगा हुआ यथार्थ है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति हमेशा ही दोयम दर्जे की रही है। ऐसी स्थिति में जब कोई स्त्री समाज के बनाए नियमों को तोड़ती है तो उसे समाज और परिवार की अवमानना तथा आक्रोश को झेलना पड़ता है। महादेवी वर्मा ने नारी के बंधन को स्वीकार नहीं किया। समाज के रूढ बंधनों को तोड़ा और खुद को बंधनों से मुक्त करते हुए शोषण के विरुद्ध कलम चलाई।

महादेवी वर्मा को आधुनिक काल की मीरा कहा जाता है। इनका जन्म 24 मार्च सन् 1907 में फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश) में हुआ था। अपने बचपन को याद करते हुए वे लिखतीं हैं "एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोध से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है, परंतु एक ओर साधनाभूत, आस्तिक और भावुक माता तो दूसरी ओर सब प्रकार की सांप्रदायिकता से दूर कर्मनिष्ठ एवं दार्शनिक पिता ने अपने–अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा रूप दिया उससे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या संप्रदाय में न बाँधने वाली चेतना पर स्थित हो सकती थी।"

इनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि साहित्यिक थी, माता और पिता दोनों कवि थे। पिता गोविन्द प्रसाद वर्मा काफी प्रतिष्ठित कवि थे। महादेवी वर्मा का विवाह बाल्यावस्था (9 वर्ष की उम्र) में श्री स्वरूप नारायण वर्मा से हुआ था। उन्होने गृहस्थ जीवन स्वीकार नहीं किया और न ही अपने को उन्होने सीमित परिवार की परिधि में ही बाँधा। विवाह के उपरांत उनकी शिक्षा प्राप्ति में व्यवधान आया था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा इंदौर में हुई फिर प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. और बाद में संस्कृत से एम.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। महादेवी वर्मा बहुत समय तक प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्राचार्या रहीं।

साहित्य के क्षेत्र में मधुर गीत लेखिका के रूप में प्रसिद्ध रही। हार्दिक वेदना और स्नेह को उन्होंने निरीह जीवों से जोड़ कर मानवीय संवेदना का विस्तार किया। वे छायावादी सशक्त गीतकार के रूप में उभरी जिसके कारण उन्हें आधुनिक युग की मीरा कहा जाने लगा। वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद के लिए निर्वाचित भी हुई तथा भारत सरकार ने उनके साहित्यिक तथा सामाजिक योगदान को देखते हुए उन्हें सन 1956 ई. में

'पद्मभूषण' से अलंकृत किया और फिर सन 1988 ई. में मरणोपरांत भारत सरकार ने 'पद्मविभूषण' से नवाजा । भारतीय साहित्य में अतुलनीय योगदान के लिए सन 1982 ई. में उन्हे 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' से सम्मानित किया गया। महादेवी वर्मा कवयित्री के रूप में ज्यादा लोकप्रिय हुई परंतु वे एक सशक्त गद्य लेखिका भी थीं। काव्य में कल्पना की आकाश विहारिणी थी तो गद्य में यथार्थ की प्रस्तुति के लिए कांटों भरे रास्तों की यात्री। इनका निधन 11 सितंबर 1987 में हुआ।

महादेवी वर्मा ने स्वतंत्रता के पहले का भारत भी देखा था और उसके बाद का भी। महादेवी वर्मा उन रचनाकारों में से एक हैं जिन्होंने व्यापक समाज में काम करते हुए भारत के भीतर विद्यमान हाहाकार और रूदन को देखा, परखा और करुणा से ओत–प्रोत अन्धकार को दूर करने वाली दृष्टि देने की कोशिश की। न केवल उनकी रचना बल्कि उनके समाज सुधार के कार्य और महिलाओं के प्रति चेतनाशील भावना भी बलवती रही। वह एक राष्ट्र–सेविका भी थीं। जब कभी देश में कोई आंदोलन छिड़ा या देशवासियों पर कहीं कोई विपत्ति आ पडी तो उन्होने केवल अपनी लेखनी के माध्यम से ही शाब्दिक सहानुभूति नहीं प्रकट की बल्कि उसमे अपना सक्रिय सहयोग भी दिया। बंगाल के अकाल में ही नहीं बल्कि नोआखाली पीड़ितों के लिए पैसा एकत्रित कर सहायता की।

महादेवी वर्मा छायावाद के चार स्तंभ में से एक हैं। महादेवी वर्मा ने काव्य के अलावा जो गद्य लिखा वह भी श्रेष्ठतम गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। उसमें जीवन का सम्पूर्ण वैविध्य समाया है। बिना कल्पना और काव्य रूपों का सहारा लिए कोई रचनाकार गद्य में कितना कुछ अर्जित कर सकता है, यह महादेवी को पढ़कर जाना जा सकता है। उनके गद्य की वैचारिक परिपक्वता आज भी प्रासंगिक है।

मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण करने से पहले वे रहस्यानुभूति से युक्त कविताएँ लिखने लगी थीं। उनके प्रथम काव्य संग्रह – 'नीहार' की अधिकांश कविताएं उसी समय की हैं। उनके पाँच काव्य संग्रह हैं– नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1935), सांध्य गीत (1936) और दीपशिखा (1942) में प्रकाशित हुई। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे काव्य संकलन भी प्रकाशित हैं, जिनमें उपर्युक्त रचनाओं में से चुने हुए गीत संकलित किए गए हैं जैसे–आत्मिका (1965), निरंतरा (1965), परिक्रमा (1965), सन्धिती (1965), यामा (1936), गीतपर्व (1963), दीपगीत (1963), स्मारिका (1963), और आधुनिक कवि महोदवी आदि (1963)।

महादेवी वर्मा कवि के अतिरिक्त सशक्त गद्य लेखिका भी थीं। 'अतीत के चलचित्र' (1941) और 'स्मृति की रेखाएँ' (1943) उनके रेखाचित्र हैं। उनके संस्मरण हैं– 'पथ के साथी' (1956), 'मेरा परिवार' (1972), 'स्मृतिचित्र' (1973) और 'संस्मरण' (1983)। 'चाँद' पत्रिका के संपादकीय लेखों का संग्रह 'श्रृंखला की कड़ियाँ' (1942) हैं। उनके अन्य निबंध संग्रह– 'विवेचनात्मक गद्य' (1942), 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (1962), 'संकल्पिता' (1969), और 'भारतीय संस्कृति के स्वर' हैं। उनके ललित निबंधों का संग्रह 'क्षणदा' (1956) है। उनका एक भाषण संग्रह 'संभाषण' (1974) नाम से है। उनकी बाल कविता संग्रह 'ठाकुर जी भोले हैं' और 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' नाम से उपलब्ध हैं।

12.3 गिल्लू : पाठ का वाचन

सोनजुही में आज एक पीली कली लगी है, इसे देखकर अनायास ही उस छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता की सघन हरीतिमा में छिपकर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुँचते ही कंधे पर कूदकर मुझे चौंका देता था। तब मुझे कली की खोज

रहती थी, पर आज उस लघुप्राण की खोज है, परंतु वह तो अब तक इस सोनजुही की जड़ में मिट्टी होकर मिल गया होगा। कौन जाने स्वर्णिम कली के बहाने वही मुझे चौंकाने ऊपर आ गया हो!

अचानक एक दिन सवेरे कमरे से बरामदे में आकर मैंने देखा, दो कौवे एक गमले के चारों ओर चोंचों से छूआ–छुऔवल जैसा खेल खेल रहे हैं। यह काकभुशुंडि भी विचित्र पक्षी है– एक साथ समादरित, अनादरित, अति सम्मानित, अति अवमानित।

हमारे बेचारे पुरखे न गरूड़ के रूप में आ सकते हैं, न मयूर के, न हंस के। उन्हें पितरपक्ष में हमसे कुछ पाने के लिए काक बनकर ही अवतीर्ण होना पड़ता है। इतना ही नहीं हमारे दूरस्थ प्रियजनों को भी अपने आने का मधुर संदेश इनके कर्कश स्वर में ही देना पड़ता है। दूसरी ओर हम कौवा और काँव–काँव करने को अवमानना के अर्थ में ही प्रयुक्त करते हैं।

मेरे काकपुराण के विवेचन में अचानक बाधा आ पड़ी, क्योंकि गमले और दीवार की संधि में छिपे एक छोटे–से जीव पर मेरी दृष्टि रुक गई। निकट जाकर देखा, गिलहरी का छोटा–सा बच्चा है जो संभवतः घोंसले से गिर पड़ा है और अब कौवे जिसमें सुलभ आहार खोज रहे हैं।

काकद्वय की चोंचों के दो घाव उस लघुप्राण के लिए बहुत थे, अतः वह निश्चेष्ट–सा गमले से चिपटा पड़ा था।

सबने कहा, कौवे की चोंच का घाव लगने के बाद यह बच नहीं सकता, अतः इसे ऐसे ही रहने दिया जावे परंतु मन नहीं माना– उसे हौले से उठाकर अपने कमरे में लाई, फिर रूई से रक्त पोंछकर घावों पर पेंसिलिन का मरहम लगाया। रूई की पतली बत्ती दूध से भिगोकर जैसे–तैसे उसके नन्हे से मुँह में लगाई पर मुँह खुल न सका और दूध की बूँदें दोनों ओर ढुलक गईं।

कई घंटे के उपचार के उपरांत उसके मुँह में एक बूँद पानी टपकाया जा सका. तीसरे दिन वह इतना अच्छा और आश्वस्त हो गया कि मेरी उंगली अपने दो नन्हे पंजों से पकड़कर, नीले काँच के मोतियों जैसी आँखों से इधर–उधर देखने लगा।

तीन–चार मास में उसके स्निग्ध रोयें, धब्बेदार पूँछ और चंचल चमकीली आंखें सबको विस्मित करने लगीं।

हमने उसकी जातिवाचक संज्ञा को व्यक्तिवाचक का रूप दे दिया और इस प्रकार हम उसे गिल्लू कहकर बुलाने लगे। मैंने फूल रखने की एक हलकी डलिया में रूई बिछाकर उसे तार से खिड़की पर लटका दिया।

वही दो वर्ष गिल्लू का घर रहा। वह स्वयं हिलाकर अपने घर में झूलता और अपनी कांच के मनकों–सी आंखों से कमरे के भीतर और खिड़की से बाहर न जाने क्या देखता–समझता रहता था। परंतु उसकी समझदारी और कार्यकलाप पर सबको आश्चर्य होता था।

जब मैं लिखने बैठती तब अपनी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की उसे इतनी तीव्र इच्छा होती थी कि उसने एक अच्छा उपाय खोज निकाला।

वह मेरे पैर तक आकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेजी से उतरता। उसका यह दौड़ने का क्रम तब तक चलता जब तक मैं उसे पकड़ने के लिए न उठती।

कभी मैं गिल्लू को पकड़कर एक लंबे लिफ़ाफ़े में इस प्रकार रख देती कि उसके अगले दो पंजों और सिर के अतिरिक्त सारा लघुगात लिफ़ाफ़े के भीतर बंद रहता। इस अद्‌भुत स्थिति में कभी–कभी घंटों मेज़ पर दीवार के सहारे खड़ा रहकर वह अपनी चमकीली आँखों से मेरा कार्यकलाप देखा करता।

भूख लगने पर चिक–चिक करके मानो वह मुझे सूचना देता और काजू या बिस्कुट मिल जाने पर उसी स्थिति में लिफ़ाफ़े से बाहर वाले पंजों से पकड़कर उसे कुतरता रहता।

फिर गिल्लू के जीवन का प्रथम बसंत आया। नीम–चमेली की गंध मेरे कमरे में हौले–हौले आने लगी। बाहर की गिलहरियां खिड़की की जाली के पास आकर चिक–चिक करके न जाने क्या कहने लगीं।

गिल्लू को जाली के पास बैठकर अपनेपन से बाहर झाँकते देखकर मुझे लगा कि इसे मुक्त करना आवश्यक है। मैंने कीलें निकालकर जाली का एक कोना खोल दिया और इस मार्ग से गिल्लू ने बाहर जाने पर सचमुच ही मुक्ति की साँस ली। इतने छोटे जीव को घर में पले कुत्ते, बिल्लियों से बचाना भी एक समस्या ही थी।

आवश्यक कागज़–पत्रों के कारण मेरे बाहर जाने पर कमरा बंद ही रहता है। मेरे कॉलेज से लौटने पर जैसे ही कमरा खोला गया और मैंने भीतर पैर रखा, वैसे ही गिल्लू अपने जाली के द्वार से भीतर आकर मेरे पैर से सिर और सिर से पैर तक दौड़ लगाने लगा। तब से यह नित्य का क्रम हो गया।

मेरे कमरे से बाहर जाने पर गिल्लू भी खिड़की की खुली जाली की राह बाहर चला जाता और दिन भर गिलहरियों के झुंड का नेता बना हर डाल पर उछलता–कूदता रहता और ठीक चार बजे वह खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता।

मुझे चौंकाने की इच्छा उसमें न जाने कब और कैसे उत्पन्न हो गई थी. कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में।

मेरे पास बहुत से पशु–पक्षी हैं और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परंतु उनमें से किसी को मेरे साथ मेरी थाली में खाने की हिम्मत हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।

गिल्लू इनमें अपवाद था। मैं जैसे ही खाने के कमरे में पहुँचती, वह खिड़की से निकलकर आंगन की दीवार, बरामदा पार करके मेज़ पर पहुंच जाता और मेरी थाली में बैठ जाना चाहता। बड़ी कठिनाई से मैंने उसे थाली के पास बैठना सिखाया जहाँ बैठकर वह मेरी थाली में से एक–एक चावल उठाकर बड़ी सफ़ाई से खाता रहता। काजू उसका प्रिय खाद्य था और कई दिन काजू न मिलने पर वह अन्य खाने की चीजें या तो लेना बंद कर देता या झूले से नीचे फेंक देता था।

उसी बीच मुझे मोटर दुर्घटना में आहत होकर कुछ दिन, अस्पताल में रहना पड़ा। उन दिनों जब मेरे कमरे का दरवाज़ा खोला जाता, गिल्लू अपने झूले से उतरकर दौड़ता और फिर किसी दूसरे को देखकर उसी तेज़ी से अपने घोंसले में जा बैठता। सब उसे काजू दे आते, परंतु अस्पताल से लौटकर जब मैंने उसके झूले की सफ़ाई की तो उसमें काजू भरे मिले, जिनसे ज्ञात होता था कि वह उन दिनों अपना प्रिय खाद्य कितना कम खाता रहा।

मेरी अस्वस्थता में वह तकिए पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हे–नन्हे पंजों से मेरे सिर और बालों को इतने हौले–हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान लगता।

गर्मियों में जब मैं दोपहर में काम करती रहती तो गिल्लू न बाहर जाता न अपने झूले में बैठता। उसने मेरे निकट रहने के साथ गर्मी से बचने का एक सर्वथा नया उपाय खोज निकाला था। वह मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता और इस प्रकार समीप भी रहता और ठंडक में भी रहता।

गिलहरियों के जीवन की अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं होती। अतः गिल्लू की जीवन यात्रा का अंत आ ही गया। दिन भर उसने न कुछ खाया न बाहर गया। रात में अंत की यातना में भी वह अपने झूले से उतरकर मेरे बिस्तर पर आया और ठंडे पंजों से

मेरी वही उंगली पकड़कर हाथ से चिपक गया, जिसे उसने अपने बचपन की मरणासन्न स्थिति में पकड़ा था।

पंजे इतने ठंडे हो रहे थे कि मैंने जागकर हीटर जलाया और उसे उष्णता देने का प्रयत्न किया, परंतु प्रभात की प्रथम किरण के स्पर्श के साथ ही वह किसी और जीवन में जागने के लिए सो गया।

उसका झूला उतारकर रख दिया गया है और खिड़की की जाली बंद कर दी गई, परंतु गिलहरियों की नयी पीढ़ी जाली के उस पार चिक–चिक करती ही रहती है और सोनजुही पर बसंत आता ही रहता है।

सोनजुही की लता के नीचे गिल्लू को समाधि दी गई है इसलिए भी कि उसे वह लता सबसे अधिक प्रिय थी– इसलिए भी कि उस लघुगात का, किसी वासंती दिन, जुही के पीताभ छोटे फूल में खिल जाने का विश्वास, मुझे संतोष देता है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित दिए गए प्रश्नों में से सही विकल्प का चयन कीजिए :

1. महादेवी वर्मा का जन्म कब हुआ था ?

   क) 1897 ख) 1885 ग) 1907 घ) 1910

2. महादेवी वर्मा को सोनजुही में लगी पीली कली देखकर किसकी याद आई ?

   क) कौआ ख) खरगोश ग) बिल्ली घ) गिल्लू

3. गिल्लू का प्रिय खाद्य पदार्थ क्या था?

   क) रोटी ख) चावल ग) सेव घ) काजू

4. गर्मी से बचने के लिए गिल्लू क्या करता?

   क) सुराही पर लेट जाता ख) खिड़की पर बैठ जाता

   ग) पंखे के नीचे बैठ जाता घ) बिस्तर पर लेट जाता

5. गिल्लू को समाधि कहाँ दी गई ?

   क) घर के लॉन में ख) सोनजुही की लता के नीचे

   ग) गमले में घ) सड़क की बगल में

12.4 'गिल्लू' का सार

महादेवी वर्मा की रचना 'गिल्लू' रेखाचित्र विधा का श्रेष्ठ उदाहरण है। 'गिल्लू' में महादेवी वर्मा ने गिलहरी जैसे एक छोटे अतिसाधारण और उपेक्षित प्राणी की चेष्टाओं का सजीव वर्णन किया है और उसे एक स्मरणीय व्यक्तित्व प्रदान किया है। रेखाचित्र 'गिल्लू में लेखिका को पीली जूही के बेल पर लगी कली को देखकर उस छोटे से जीव गिल्लू (गिलहरी) की याद आ जाती है जो इस बेल की हरियाली में रहता था और लेखिका को एक दिन घायल अवस्था में मिला था। जिसे कौए अपना शिकार बनाना चाहते थे। लेखिका उसे घायल अवस्था में उठाकर अपने कमरे में लाई, उसके घावों का इलाज खुद किया और उसे रूई के फाहे से दूध पिलाने का प्रयास किया।

लेखिका के इलाज से गिल्लू कुछ दिनों में ही ठीक हो गया। इलाज के तीसरे दिन ही जब लेखिका की ऊँगली को 'गिल्लू' अपने दोनों पंजों से पकड़कर प्यार जताता है तो लेखिका का मातृत्व जाग जाता है और वह उसे अपने पास ही रख लेती हैं जिसे वह 'गिल्लू' नाम देती है। 'गिल्लू' के रहने की व्यवस्था वह एक डलिया में रूई बिछाकर

करती हैं। गिल्लू तीन–चार महीने में ही स्वस्थ हो गया और लगभग दो वर्ष तक वह महादेवी के पास रहता है। लेखिका का ध्यान आकर्षित करने के लिए गिल्लू विभिन्न उपक्रम करता था। भूख लगने पर वह चिक–चिक करके लेखिका को सूचना देता था। 'गिल्लू' के जीवन के प्रथम वसंत में लेखिका ने उसके लिए खिड़की की जाली का कोना खोला था। लेखिका के बाहर से आने पर वह उसके सिर से पैर तक दौड़ लगाता था। 'गिल्लू' लेखिका को जगह–जगह छिपकर चौंकाता था और लेखिका जब खाने पर बैठती तो वह भी थाली के पास बैठकर थाली में से सफाई के साथ खाना उठाकर खाता था। एक बार जब लेखिका मोटर दुर्घटना में घायल होने के कारण अस्पताल में भर्ती हुईं, तब गिल्लू अपना प्रिय खाद्य काजू भी नहीं खाता था। वह लेखिका की बीमारी में परिचारिका के समान उसका ध्यान रखता था। सिरहाने बैठकर अपने नन्हें पंजों से उनके बालों को हौले–हौले सहलाता रहता था। गिल्लू नए–नए उपाय खोजकर लेखिका के पास ही रहता।

सामान्यतः गिलहरियों का जीवन काल दो वर्ष का होता है। अपने अंत समय में गिल्लू अपने झूले से उतरकर लेखिका के पास आया और लेखिका की ऊँगली पकड़ ली जैसे कि उसने अपने बचपन में पकड़ी थी, जब वह घायल अवस्था में लेखिका को मिला था। गिल्लू के चिर–निद्रा में सोने पर लेखिका ने गिल्लू को उसी सोनजूही की बेल के नीचे समाधि दी, जो उसे बहुत प्रिय थी। लेखिका को उसका जूही के पीले फूल के रूप में खिलने का विश्वास था। जिससे वह संतोष पाती थी कि इस पीले जूही के रूप में गिल्लू फिर उसके सामने प्रकट हो गया है।

12.5 संदर्भ सहित व्याख्या

उद्धरण–1

सोनजुही में आज एक पीली कली लगी है। उसे देखकर अनायास ही उसे छोटे जीव का स्मरण हो आया, जो इस लता का सघन हरीतिमा में छिपकर बैठता था और फिर मेरे निकट पहुँचते ही कन्धे पर कूदकर मुझे चौंका देता था, तब मुझे कली की खोज रहती थी, पर आज उस लघु प्राणी की खोज है।

संदर्भ :

प्रस्तुत अवतरण 'गिल्लू' रेखाचित्र से लिया गया है जिसकी लेखिका महादेवी वर्मा है। महादेवी जी को सोनजुही की लता में एक पीली कली को देखकर गिलहरी के बच्चे 'गिल्लू' की याद आ जाती है। लेखिका ने एक कोमल लघु प्राणी (गिलहरी) की प्रकृति का मानवीय संवेदना तथा समता के आधार पर चित्रण किया है।

व्याख्या :

महादेवी वर्मा सोनजुही की लता में लगी पीली कली देखकर अपनी स्मृतियों मे खो गई। उसको देखकर उन्हें एक छोटे से कोमल प्राणी गिलहरी के बच्चे 'गिल्लू' का संस्मरण हो आया। 'गिल्लू' के साथ बिताए एक–एक क्षण याद आ गए। उन्हें याद आया जिस प्रकार लताओं के बीच उसकी कली छिपी हुई है, ठीक उसी प्रकार 'गिल्लू' भी उसी लता में छिपकर बैठता था। जब मैं लता के निकट कलियों एवं पुष्पों को लेने जाती थी, तो लता के बीच छिपा हुआ 'गिल्लू' मेरे कंधे पर कूदकर मुझे अचानक चौंका देता था। 'गिल्लू' स्वभाव के अनुरूप उछल–कूद खूब करता। लेकिन वह इस जगत में नहीं है, उसका जीवन समाप्त हो चुका है। किंतु मेरी आँखें उसे आज भी खोज रही हैं। अब वह इस सोनजुही की जड़ की मिट्टी में विलीन हो गया है। शायद वह इस स्वर्णिम कली के बहाने मुझे चौंकाने के लिए ऊपर आ जाय। इसे कौन जान सकता है?

विशेष :

1. महादेवी वर्मा जी की 'गिल्लू' के प्रति मानवीय संवेदना, गहरी वेदना और मार्मिकता उभर कर सामने आई है।
2. स्मृतियों के माध्यम से एक महाप्राण अपने लघुप्राण को खोजने की कोशिश करता है। यह जीवन की क्षणभंगुरता की ओर ले जाता है।

उद्धरण–2

मेरे पास बहुत से पशु–पक्षी हैं और उनका मुझसे लगाव भी कम नहीं है, परंतु उनमें से किसी को मेरे साथ मेरे थाली में खाने की हिम्मत हुई है, ऐसा मुझे स्मरण नहीं आता।

संदर्भ :

प्रस्तुत अवतरण 'गिल्लू' रेखाचित्र से लिया गया है, जिसकी लेखिका महादेवी वर्मा हैं। प्रस्तुत अवतरण में उनका 'गिल्लू' के साथ लगाव और 'गिल्लू' की लेखिका के प्रति आत्मीयता और अधिकार भाव दिखाई देता है।

व्याख्या :

इस अवतरण में लेखिका इस बात की ओर संकेत करती हैं कि उनके पास बहुत से पशु–पक्षी हैं। उनका सभी के साथ असीम प्यार और लगाव है, लेकिन 'गिल्लू' कुछ खास है। तभी तो वह मेरे साथ मेरी थाली में बैठकर खाने की हिम्मत कर लेता है। कोई और ऐसा साहस किया हो याद नहीं। 'गिल्लू' इसका अपवाद था। मैं खाना खाने के लिए जैसे ही मेज के पास जाती 'गिल्लू' कूद–फाँदकर खाने की मेज तक पहुँच जाता और मेरी थाली में बैठना चाहता। एक बच्चे की तरह जिद करता। मैंने बड़ी मुश्किल से उसे थाली के पास बैठना सिखाया। उसके बाद गिल्लू मेरी थाली के पास बैठकर एक–एक चावल निकालकर खाता रहता। काजू उसे बेहद पसंद था। यदि कई दिन काजू न मिले तो अन्य चीजें भी खाना बंद कर देता था या झूले के नीचे गिरा देता था। कुछ तो था जो दूसरे पशु–पक्षियों से इसे अलग करता था।

विशेष :

1. लेखिका के पशु–पक्षियों से असीम लगाव को दर्शाता है।
2. एक–दूसरे के प्रति एकाकार और समर्पण का भाव दिखाई देता है।

अभ्यास प्रश्न

1. नीचे दिए गए उद्धरण की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए :

   उद्धरण : गर्मियों में जब मैं दोपहर में काम करती रहती तो गिल्लू न बाहर जाता न अपने झूले में बैठता। उसने मेरे निकट रहने के साथ गर्मी से बचने का एक सर्वथा नया उपाय खोज निकाला था। वह मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता और इस प्रकार समीप भी रहता और ठण्डक में भी रहता।

   ....

   ....

   ....

2. सोनजुही में लगी पीली कली को देख लेखिका के मन में कौन से विचार उमड़ने लगे? तीन पंक्तियों में लिखिए।

   ....

   ....

3. पाठ के आधार पर कौए को एक साथ समादरित और अनादरित प्राणी क्यों कहा गया है? संक्षिप्त उत्तर दीजिए ।

....

....

12.6 कथावस्तु

'गिल्लू' महादेवी वर्मा जी की पालतू गिलहरी पर रेखाचित्र है। एक दिन कमरे के बरामदे में से देखती हैं कि सोनजुही के पास रखे गमले के चारो ओर दो कौवे एक गिलहरी को चोंच मार–मार कर घायल कर दिए हैं। सबके मना करने के बावजूद वे उसे अचेत अवस्था में ले आईं। उन्होने ने रुई से घाव को साफ कर उसकी मरहम–पट्टी कर दी। दो–तीन दिन देखभाल करने के पश्चात वह स्वस्थ हो गई। जिसका नाम उन्होंने जातिवाचक संज्ञा से बदलकर व्यक्तिवाचक कर 'गिल्लू' रख दिया।

तीन–चार महीने बाद 'गिल्लू' के स्निग्ध रोएँ, धब्बेदार पूंछ और चंचल चमकीली आँखें सबको बिस्मित करने लगी। उसके रहने के लिए एक हल्की डलिया में रुई बिछाकर उसे तार से खिड़की पर लटका दिया। वह अपनी फूल की डालिया को स्वयं हिलाकर झूलता था और अपनी कांच की मनकों जैसी आँखों से कमरे के भीतर और खिड़की के बाहर देखता समझता रहता था। लोगों को उसकी समझदारी और कार्यकलाप पर आश्चर्य होता था।

लेखिका जब व्यस्त होती तो उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह उनके पैरों तक जाकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेजी से उतरता था, जब तक लेखिका उसे जाकर पकड़ नहीं लेती थी। बच्चे की तरह खूब शरारतें करता था। यहाँ तक कि उसे लिफाफे में बंद करना पड़ जाता था। जब उसे भूख लगती तो वह चिक–चिक करके सूचना देता था और काजू या बिस्कुट को अपने पंजों से पकड़कर कुतरता था। उसे काजू बहुत प्रिय था। लेखिका जब बाहर जाती तो 'गिल्लू' भी खिड़की के छेद में से बाहर चला जाता था और दिनभर गिलहरियों के झुंड का नेता बनकर डालियों पर उछलता–कूदता रहता था। शाम को ठीक चार बजे, लेखिका के घर आने के समय, खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता था। लेखिका को चौंकने के लिए वह कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में तो कभी सोनजुही की पत्तियों में।

लेखिका को पशु–पक्षियों से प्यार था। वह जब खाने के लिए बैठती तो वह उनकी थाली में बैठने की कोशिश करता, दूसरे किसी जानवर की ऐसी हिम्मत कभी नहीं हुई। लेकिन वह लेखिका के खाने की थाली में से बड़ी सफाई से एक–एक चावल उठाकर खाता था। उसे काजू बहुत प्रिय था। यदि उसे कई दिनों तक काजू नहीं मिलता तो वह खाने की अन्य चीजों को लेना छोड़ देता या झूले के नीचे फेंक देता था।

एक बार लेखिका मोटर दुर्घटना में घायल हो गईं और अस्पताल में भर्ती होना पड़ गया तो गिल्लू प्रतिदिन उनका इंतजार करता था। पदचाप सुनकर दरवाजे तक आता लेकिन किसी दूसरे को देखकर पुनः अपने घोंसले में जा बैठता। सब उसे उसका प्रिय काजू भी देते लेकिन वह नहीं खाता और लेखिका जब अस्पताल से वापस आईं तो उन्हें उसके झूले में अनेक काजू पड़े हुए मिले। अस्पताल से वापस आने के बाद वह उनके पास ही बैठा रहता। वह अपने नन्हें–नन्हें पंजो से सिरहाने बैठकर सिर और बालों को हौले–हौले सहलाता। अब उसकी दूरी मुझे भी खलने लगी थी। उसके प्यार भरे एहसास ने दिल को छू लिया था। इस प्रकार गिल्लू बहुत ही समझदार और प्रिय था।

जैसा की हम जानते हैं कि गिलहरियों की जीवन अवधि दो वर्ष से अधिक नहीं होती। वह दिन आ ही गया जब 'गिल्लू' ने हमे अलविदा कह दिया। सोनजुही की लता के नीचे उसकी समाधि दी गई। क्योंकि वह जगह उसे बहुत प्रिय थी और उसके पीले फूल मुझे स्मृतियों में ले जाते जिससे बड़ा सुख और सकून मिलता।

महदेवी वर्मा भावनात्मक स्तर से ओत–प्रोत होने के साथ अपने निबंधों में वैचारिक स्तर पर भी गूढ़ संदेश का संचार भी करती जान पड़ती हैं। वे मानव जाति के सभी वर्गों से तो विशेष सहानुभूति रखती ही हैं साथ ही प्राणी जगत के अन्य जीवों को भी अपनी लेखनी का प्रमुख विषय बना लेती हैं। 'गिल्लू' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

12.7 गिल्लू का चरित्र–चित्रण

महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'गिल्लू' में पात्र के नाम पर स्वयं लेखिका और उनका प्यारा 'गिल्लू' ही है। लेखिका कथावाचक की भूमिका में हैं। ऐसे में मुख्य पात्र 'गिल्लू' ही ठहरता है। पूरी कथा इसी लघुप्राण के इर्द–गिर्द घूमती है। उसकी जीवटता तो कमाल की है। उसे कौवे चोंच मार–मार कर घायल कर देते हैं, लेकिन लेखिका के मरहम पट्टी के बाद दो–तीन दिन में ही स्वस्थ हो गया। तीन–चार महीने में वह अपने स्निग्ध रोएँ, धब्बेदार पूंछ और चंचल चमकीली आँखों से सबको विस्मित करने लगा। वह अपनी फूल की डलिया को स्वयं हिलाकर झूलता था और अपनी काँच के मनकों जैसी आँखों से कमरे के भीतर और खिड़की के बाहर देखता–समझता रहता था। लोग उस नन्हें जीव की समझदारी और कार्यकलाप पर आश्चर्य चकित रह जाते थे। लेखिका का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए वह उनके पैरों तक जाकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता और फिर उसी तेजी से उतरता था जब तक लेखिका उसे जाकर पकड़ नहीं लेती थी।

लेखिका और 'गिल्लू' एक दूसरे के मनोभावों को बखूबी समझते थे। 'गिल्लू' को जब भूख लगती तो वह चिक–चिक करने लगता। लेखिका उसकी आवज से समझ जाती की उसे भूख लगी है। वे उसे काजू या बिस्कुट दे देती और वह उन्हे अपने पंजों से पकड़कर कुतरता रहता था। उसे काजू बहुत प्रिय थे। समझदारी के साथ साथ खूब शरारती भी था। लेखिका जब बाहर जाती तो गिल्लू भी खिड़की के छेद में से बाहर चला जाता था और दिन भर गिलहरियों के झुंड का नेता बनकर डालियों पर उछलता–कूदता रहता। शाम को ठीक चार बजे लेखिका के घर आने के समय, खिड़की से भीतर आकर अपने झूले में झूलने लगता था। लेखिका को चौंकाने के लिए वह कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में।

मनुष्य ही नहीं बल्कि जीव–जन्तु भी भावनात्मक समझ रखते हैं। जब लेखिका खाने पर बैठती तो वह भी आ धमकता। उन्हीं की थाली में से बड़ी सफाई से एक–एक चावल उठाकर खाता था। अनुशासित विद्यार्थी की तरह शांती से उनका साथ देता। उसे काजू पसंद था। यदि उसे कई दिनों तक काजू नहीं मिलता तो वह खाने की अन्य चीजों को लेना छोड़ देता या झूले से नीचे फेंक देता था। जब लेखिका एक दुर्घटना की शिकार हो गई और अस्पताल में थी, 'गिल्लू' प्रतिदिन उनका इंतजार करता था। वह एकदम उदास सा रहने लगा थी। उसने अपना प्रिय काजू भी नहीं खाता और लेखिका जब अस्पताल से वापस आई तो उन्हें उसके झूले में अनेक काजू पड़े हुए मिले। वापस आने पर तकिये के सिरहाने बैठकर अपने नन्हें–नन्हें पंजों से उनके बालों को हौले–हौले सहलाता था। इस प्रकार गिल्लू में मानवीय संवेदना की गहरी समझ और भावनात्मक लगाव उसे बहुत ही समझदार और सबका प्रिय बना देते हैं।

12.8 परिवेश

महादेवी वर्मा का गद्य साहित्य कथ्य और प्रस्तुति की दृष्टि से उत्कृष्ट है। नारी जीवन और दलित शोषण का समकालीन यथार्थ इसके केंद्र में है। उन्होने समाज के रूढ़ बंधनो को तोड़ा। गद्य उनकी वैचारिकी का निदर्शन हैं। वे अपने संस्मरणों को रेखाचित्रों और शब्द–चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति करती हैं। महादेवी वर्मा इन रेखाचित्रों के साथ सामाजिक यथार्थ को लेकर आती हैं। अतः दीन–हीन, पतित और उपेक्षित व्यक्तित्व इन रेखाओं और चित्रों में सांस भरते दिखाई देते हैं।

महादेवी वर्मा का 'गिल्लू' मनुष्य से इतर एक नन्हा और लगभग उपेक्षित जीव है। भावनात्मक लगाव और प्यार बेजुबान जानवरों को भी जोड़ देता है। हर जीव चाहे वह मनुष्य हो या जीव–जंतु उसे प्रेम की आवश्यकता होती है। अगर हम पशु पक्षियों से प्रेम का व्यवहार करेंगे तो वे भी हमें उतना ही स्नेह देंगे। गिलहरी पालतू पशु की श्रेणी में नहीं आता किंतु 'गिल्लू' पाठ में गिलहरी का बच्चा लेखिका के स्नेहपूर्ण और आत्मीय व्यवहार के कारण उसके साथ मानवीय संबंध जोड़ लेता है और वह बिल्कुल घरेलू बन जाता है। इस तरह हमारा परिवेश और मानवीय व्यवहार जीव–जंतुओं के साथ जुड़ाव को निर्धारित करता है।

12.9 संरचना : शिल्प

व्यक्ति और समाज के बीच नित नए संतुलन घटित होते रहते हैं। जिनका साहित्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। उन्होने संस्कृत में एम.ए. किया था जिसकी स्पष्ट झलक उनके निबंधो की भाषा मे दिखाई देता है। उनकी भाषा तत्सम शब्दावली से युक्त है। इसके साथ ही उनमें विभिन्न विशेषतया मानवीकरण, अलंकारों का प्रयोग भरपूर मिलता है। उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा

"यह काकभुशुंडि भी विचित्र पक्षी है– एक साथ समादरित, अनादरित, अति सम्मानित, अति अपमानित।"

"मेरे काकपुराण के विवेचन में अचानक बाधा आ पड़ी, क्योंकि गमले और दीवार की संधि में छिपे एक छोटे से जीव पर मेरी दृष्टि रुक गई।"

''काकद्वय की चोंचों के दो घाव उस लघुप्राण के लिए बहुत थे, अतः वह निश्चेष्ट सा गमले से चिपका पड़ा था।"

महदेवी वर्मा के निबंधों में गहन संवेदना सर्वत्र व्याप्त है। मानव मन की सहज सहानुभूति से वे सदैव ओत–प्रोत जान पड़ती हैं और यही कारण है कि उनके निबंधों में भावुक हृदय और दया का भाव अपेक्षाकृत अधिक दिखाई देता है। वे गंभीर विषयों को सहज, सरल भाषा द्वारा ग्राह्य बना देती हैं। मूलरूप से कवयित्री होने के कारण उनके गद्य में एक निरंतरता और गतिशीलता का भान होता है। एक उदाहरण देखें :

"मेरी अस्वस्थता में वह तकिये पर सिरहाने बैठकर अपने नन्हें–नन्हें पंजों से मेरे सिर और बालों को इतने हौले–हौले सहलाता रहता कि उसका हटना एक परिचारिका के हटने के समान लगता।"

2.10 प्रतिपाद्य

महादेवी वर्मा के इस रेखाचित्र में संवेदना का संदेश दृष्टिगोचर होता है। संवेदना केवल मानव में नहीं होती, बल्कि जीव जंतुओं में भी होती है। गिलहरी को समाज में पालतू जंतु नहीं माना जाता। महादेवी वर्मा इसी गिलहरी के बच्चे को बचाती हैं। उसकी सेवा सुश्रुषा करके उसे ठीक कर देती हैं और उसे अपने पास पाल लेती हैं। गिलहरी का

यह बच्चा जिसे लेखिका ने 'गिल्लू' नाम दिया है उन्हे छोड़कर नहीं जाता। वह लेखिका से हिलमिल जाता है। उन्हीं के पास रहता है। लेखिका के दिनचर्या के मुताबिक वह उपस्थित रहता है। अपनी पसंद–नापसंद तक जाहिर करता है और जब महादेवी बीमार होकर अस्पताल में रहती है तो उन दिनों में 'गिल्लू' कुछ भी नहीं खाता–पीता है। महादेवी वर्मा जब अस्पताल से वापस आती है तो गिल्लू एक परिचारिका की तरह उनके बाल सहलाता है।

इस रेखाचरित्र के माध्यम से लेखिका ने इस सत्य को प्रकट किया है कि केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि जीव–जन्तु भी भावनात्मक समझ रखते हैं। हमें यह भी संदेश देता है कि यदि हम जीव–जंतुओं के साथ संवेदनात्मक व्यवहार करेंगे तो जीव–जंतु भी हमारे प्रति संवेदनात्मक व्यवहार करेंगे।

12.11 सारांश

महादेवी ने अपनी रचनाओं को स्मृति चित्र कहा है। 'गिल्लू' इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। 'गिल्लू' महादेवी वर्मा की पालतू गिलहरी पर आधारित रेखाचित्र है। 'गिल्लू' लेखिका द्वारा दिया गया नाम है, जो घायल अवस्था में, कौवों के आघात से बचाने के लिए लेखिका ने अपने संरक्षण में ले लिया। महादेवी वर्मा ने उसका उपचार किया और वह स्वस्थ हो गया। उन्होंने 'गिल्लू' के रहने का इंतजाम फूल की डलिया में रूई बिछाकर कर दिया। यह एक ऐसा घर था जिसमे आना–जाना गिल्लू के स्वयं पर निर्भर था। वह उसका पिंजरा नहीं था। लेखिका के घर के बाहर जाती तो 'गिल्लू' भी खिड़की के छेद में से बाहर चला जाता था और दिनभर गिलहरियों के झुंड का नेता बनकर डालियों पर उछलता कूदता रहता था। लेखिका को चौंकाने के लिए वह कभी फूलदान के फूलों में छिप जाता, कभी परदे की चुन्नट में और कभी सोनजुही की पत्तियों में। फूल की डलिया को 'गिल्लू' स्वयं हिलाकर झूलता था और अपनी काँच के मनकों जैसी आँखों से कमरे के भीतर और खिड़की के बाहर देखता समझता रहता। लोगों को उसकी समझदारी और कार्यकलाप पर आश्चर्य होता था।

जब लेखिका व्यस्त होती तो उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए गिल्लू उनके पैरों पर जाकर सर्र से परदे पर चढ़ जाता है और फिर उसी तेजी से उतरता था, जब तक कि लेखिका उसे जाकर पकड़ नहीं लेती थी। भूख लगने पर वह चिक–चिक करके लेखिका को सूचना देता था और काजू या बिस्कुट को अपने पंजों से पकड़कर कुतरता था। जब वे खाने पर बैठती तो 'गिल्लू' लेखिका की खाने की थाली में से बड़ी सफाई से एक–एक चावल उठाकर खाता था। उसे काजू बहुत प्रिय था। यदि उसे कई दिनों तक काजू नहीं मिलता तो वह खाने की अन्य चीजों को लेना छोड़ देता या झूले के नीचे फेंक देता था। लेखिका की अनुपस्थिति में उसने किसी और के द्वारा दिए गए काजुओं को नहीं खाया, जो की उसे बहुत प्रिय था। लेखिका जब अस्पताल से वापस आई तो उन्हें उसके झूले में अपने काजू पड़े हुए मिले। गिल्लू लेखिका की अस्वस्थता में उनकी देखभाल करता है और अपने नन्हें–नन्हें पंजों से उनके बाल हौले–हौले सहलाता है। हमारे पास रहने वाला 'गिल्लू' एक दिन अपना शरीर त्याग दिया। लेखिका ने उसे सोनजुही की लता के नीचे समाधि दी। इस प्रकार लेखिका ने मनुष्य जगत ही नहीं जीव जगत के इन छोटे–छोटे प्राणियों को भी अपनी लेखनी का आधार बनाया।

अभ्यास प्रश्न

नीचे दिए गए निम्नलिखित प्रश्नो में से सही उत्तर का चयन कीजिए–

4. गिलहरी के घायल बच्चे का उपचार किस प्रकार किया गया?

   क) मिट्टी का लेप लगाकर   ख) पत्ती का लेप लगाकर

   ग) पेन्सिलीन मलहम लगाकर   घ) सोनजुही का लेप लगाकर

5. लेखिका को अस्पताल में क्यों भर्ती होना पड़ा ?

   क) पेड़ से टकराने के कारण ख) मोटर दुर्घटना के कारण

   ग) फर्श पर गिरने के कारण घ) छत से गिरने के कारण

6. लेखिका का ध्यान आकर्षित करने के लिए 'गिल्लू' क्या करता था? संक्षिप्त उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

7. गिल्लू किन अर्थों में परिचारिका की भूमिका निभा रहा था? तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

8. गिल्लू की किन चेष्टाओं से यह आभास मिलने लगा था कि अब उसका अंत समय समीप है?

   ....

   ....

9. सोनजुही की लता के नीचे बनी गिल्लू की समाधि से लेखिका के मन में किस विश्वास का जन्म होता है?

   ....

   ....

10. 'सोनजुही पर वसंत आता ही रहता है' से लेखिका का क्या अभिप्राय है? स्पष्ट कीजिए।

   ....

   ....

12.12 शब्दावली

सोनजुही	:	एक प्रकार का पीला फूल
अनायास	:	अचानक
हरीतिमा	:	हरियाली
लघुप्राण	:	छोटा जीव
छुआ	:	छुऔवल –चुपके से छूकर छुप जाना और फिर छूना
काकभुशुंडी	:	एक रामभक्त ब्राह्मण जो लोमश ऋषि के शाप से कौआ हो गए।
समादरित	:	विशेष आदर
अनादरित	:	बिना आदर के
अवतीर्ण	:	प्रकट
कर्कश	:	कटु
काकद्वय	:	दो कौआ
निश्चेष्ट	:	बिना किसी हरकत के

विस्मित	:	आश्चर्य चकित
अपवाद	:	सामान्य नियम से अलग
परिचारिका	:	सेविका, दाई
मरणासन्न	:	जिसकी मृत्यु निकट हो
उष्णता	:	गर्मी
पीताम	:	पीले रंग का

12.13 उपयोगी पुस्तकें

1. महादेवी का गद्य – सूर्य प्रसाद दीक्षित, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
2. महादेवी वर्मा – इंद्रनाथ मदान (सं), राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
3. महादेवी वर्मा – जगदीश गुप्त, साहित्य अकादमी, दिल्ली

12.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1. ग) 2. घ) 3. च) 4. क)
5. ख)

अभ्यास प्रश्न

1. **संदर्भ**

उपर्युक्त अवतरण 'गिल्लू' रेखाचित्र से लिया गया है। जिसकी लेखिका महादेवी वर्मा है। प्रस्तुत अवतरण में लेखिका ने बताया है कि कैसे गिल्लू गर्मी से राहत पाने के साथ–साथ उनके समीप रहने का उपाय ढूँढ निकालता है।

व्याख्या

महादेवी वर्मा कहती हैं कि गर्मियों में जब मैं अपने लिखने–पढ़ने में व्यस्त रहती तो 'गिल्लू' का ध्यान न रख पाती थी। शायद वह मेरी व्यस्तता को महसूस करता था। इस दौरान वह भी न बाहर जाता था और न ही अपने झूले पर जाता था। वह सदैव मेरे करीब ही रहता, या रहने की जुगत करता था। गर्मी से बचाने के लिए उसने अनोखी तरकीब निकाल लिया था। 'गिल्लू' गर्मी से बचने के लिए मेरे पास रखी सुराही पर लेट जाता था। इससे वह गर्मी से बच जाता और मेरे निकट भी रह जाता था। इस तरह वह एक पल भी मुझसे अलग नहीं होना चाहता था। जीव–जन्तु भी प्यार के भूखे होते हैं। जिस तरह इंसान अपने प्रिय से दूर नहीं रहना चाहता। गिल्लू भी लेखिका से दूर नहीं रहना चाहता था।

विशेष :

(1) इंसान की तरह पशु–पक्षी भी प्यार के भूखे होते हैं। प्यार, हमदर्दी जीव–जंतुओं को परस्पर जोड़ देती है।

(2) मानवीय संवेदना की व्यावहारिकता की झलक मिलती है।

2. सोनजुही में लगी पीली कली को देखकर महादेवी वर्मा के मन में छोटे से जीव गिलहरी की याद आ गई, जिसे वह गिल्लू कह कर पुकारती थीं।

3. महादेवी वर्मा ने कौए को समादरित इसलिए कहा है क्योंकि वह छत पर बैठकर अपनी आवाज से प्रियजनों के आने की सूचना देता पितृपक्ष में लोग इसे आदर

से बुलाकर भोजन देते हैं। इसे अनादरित इसलिए कहा गया है क्योंकि इसकी आवाज बहुत ही कर्कश होती है।

4. ग)

5. ख)

6. लेखिका का ध्यान आकर्षित करने के लिए गिल्लू उनके पैरों के पास आकर खेलता फिर सर्र से पर्दे पर चढ़ जाता फिर उसी तेजी से उतरता। वह इसी तरह भाग–दौड़ करता रहता जब तक लेखिका उसे पकड़ने के लिए उठ न जाती।

7. महादेवी वर्मा की अस्वस्थता में गिल्लू उनके सिराहने बैठ जाता और नन्हें पंजों से उनके बालों को हौले–हौले सहलाता रहता। इस प्रकार सच्चे अर्थों में परिचारिका की भूमिका निभा रहा था।

8. 'गिल्लू' ने दिन भर कुछ भी नहीं खाया न बाहर गया। रात में अंत की यातना व मुश्किल के बाद भी वह झूले से उतरकर लेखिका के बिस्तर पर आ गया और अपने ठंडे पंजों से उँगली पकड़कर हाथ से चिपक गया, जिसे पहले उसने घायल अवस्था में पकड़ा था। इन्हीं चेष्टाओं से आभास मिलने पर कि अब उसका अंत समय समीप है।

9. सोनजुही की लता के नीचे 'गिल्लू' की समाधि बनाई गई क्योंकि यह लता 'गिल्लू' को बहुत पसंद थी और साथ ही लेखिका को विश्वास था कि इस छोटे से जीव को इस बेल पर लगे फूल के रूप में देखेगी। जुही में जब पीले फूल लगेंगे तो लेखिका के समक्ष 'गिल्लू' की स्मृति साकार हो जाएगी। इससे उन्हें संतोष मिलेगा।

10. 'सोनजुही पर वसंत आता ही रहता है' से लेखिका एक तो यह कहना चाहती है कि संसार अथवा जीवन गतिशील है। किसी की मृत्यु पर यह ठहर नहीं जाता, वरन् अपनी गति से चलता रहता है। यही कारण है कि जूही के वसंत का आनंद लेने वाला 'गिल्लू' अब नहीं रहा, फिर भी उस पर वसंत आता रहता है। इस पंक्ति के द्वारा लेखिका यह भी कहना चाहती है कि 'गिल्लू' आज भी उनकी स्मृति में पूर्ववत् बसा है। जब–जब जूही में वसंत आता है, तब–तब उसकी स्मृति और गाढ़ी हो जाती है।

इकाई 5 : देवदारु (आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 निबंध का वाचन : देवदारु

5.3 निबंध का सार

5.4 सन्दर्भ सहित व्याख्या

5.5 अंतर्वस्तु

5.5.1 विचार पक्ष

5.5.2 भाव पक्ष

5.6 लेखकीय अभिव्यक्ति

5.7 संरचना शिल्प

5.7.1 भाषा

5.7.2 शैली

5.8 मूल्यांकन

5.8.1 निबंध का प्रतिपाद्य

5.8.2 शीर्षक

5.9 सारांश

5.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम 'देवदारु' नामक निबंध का अध्ययन करेंगे। 'देवदारु' निबंध के रचनाकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी है। इस इकाई के अंतर्गत हम हिंदी निबंध में उनके योगदान का भी अध्ययन करेंगे। साथ ही लेखक परिचय, निबंध का सार और प्रमुख अंशों का सन्दर्भ सहित व्याख्या भी की जाएगीं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप निम्नलिखित बिन्दुओ को समझ पाएंगे :

- निबंध की विषयवस्तु और सार अपने शब्दों में लिख सकेंगे;
- कठिन शब्दों के अर्थ आसानी से निकाल सकेंगे;
- निबंध में आए महत्वपूर्ण अंशों का व्याख्या कर सकेंगे;
- निबंध के संरचना शिल्प को समझा जा सकता है;
- लेखकीय अभिव्यक्ति के साथ निबंध की अंतर्वस्तु का भी अध्ययन कर सकते है;
- निबंध को पढने के बाद पाठक मजदूरी, मजदूर और किसान के प्रति अपनी समझ विकसित कर सकता है।

5.1 प्रस्तावना

हिंदी में निबंध लेखन की परम्परा बहुत लम्बी है। भारतेंदु काल से शुरू होकर आज भी इसकी लेखन परम्परा जारी है। हजारी प्रसाद द्विवेदी और उनका रचना संसार बहुत

बड़ा है। इनका साहित्य पुरानी और नई सामाजिक सांस्कृतिक सामंजस्य का प्रतीक है। इतिहास लेखन से लेकर आलोचना तक इनकी पैठ है। निबंधों की परम्परा में इनका लेखन एक ललित निबंधकार के रूप में जाना जाता है। इनके निबंधो में विषय के साथ शैली भी परिवर्तित हो जाती है। आचार्य शुक्ल की तरह इनके निबंध भी तत्सम प्रधान हैं, लेकिन इनके निबंधों में ग्रामीण व देशज शब्द शुक्ल जी से अलग कर देती है। आचार्य द्विवेदी के सन्दर्भ में यह बात उचित है कि 'भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, ज्योतिष और विभिन्न धर्मों का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है जिसकी झलक इनके निबंधों में मिलती है। छोटी–छोटी चीजों, विषयों का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन और विश्लेषण–विवेचन उनकी निबंधकला का विशिष्ट व मौलिक गुण है। उनके निबंध दार्शनिक तत्व प्रधान एवं सामाजिक जीवन से संबंध रखते हैं। द्विवेदी जी के इन निबंधों में विचारों की गहनता, निरीक्षण की नवीनता और विश्लेषण की सूक्ष्मता रहती है। आचार्य द्विवेदी ने साहित्य की प्रासंगिता के सन्दर्भ में स्वयं कहते हैं कि – 'मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है जिस कृति से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, वह वाग्जाल है।'

जीवन और जगत के संबंध में द्विवेदी जी लोक को वरीयता देते है, ऐसे में उनकी चिंतन को लोकधर्मी चिंतन कहा जा सकता है। द्विवेदी जी ने आचार्य शुक्ल की शास्त्रीय लोकमंगल की अवधारणा और विचारधारा को ख़ारिज करते हुए जन पर आधारित लोक को प्राथमिकता दी। यही कारण है की शुक्ल जी के यहाँ तुलसीदास केंद्र में है और द्विवेदी जी के यहाँ कबीर।

अतः द्विवेदी जी के निबंधो के अध्ययन से पाठक लोक और शास्त्र के साथ सांस्कृतिक चेतना को भी समझ सकते हैं, द्विवेदी जी के सारे निबंध चिंतन के केंद्र में मनुष्य ही है ।

5.2 निबंध का वाचन : देवदारु

पता नहीं किसने इस पेड़ का नाम देवदारु रख दिया था, नाम निश्चय ही पुराना है, कालिदास से भी पुराना, महाभारत से भी पुराना। सीधे ऊपर की ओर उठता है, इतना ऊपर कि पासवाली चोटी के भी ऊपर उठ जाता है, एकदम द्युलोक को भेद करने की लालसा से। नीचे शाखाएँ मर्त्यलोक को अभय–दान देने की मुद्रा में फैलती चली जाती हैं, मानों कह रही हों, भय नहीं, मैं जो हूँ। प्रत्येक शाखा को झबरीली टहनियाँ कँटीले पत्तों के ऐसे लहरदार छंदों का वितान तानती हैं कि छाया चेरी–सी अनुगमन करती हैं। जिस आचार्य ने पतिपाटीविहित निष्टजनानुमोदित 'सज्जा' को 'छाया' नाम दिया था वह जरूर इस पेड़ की शोभा से प्रभावित हुआ था। पेड़ क्या है, किसी सुलझे हुए कवि के चित्तका मूर्तिमान छंद है – धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लहरदार वितानों की श्रृंखला को सावधानी से सँभालता हुआ, विपुल–व्योम की ओर एकाग्रीभूत मनोहर छंद। कैसी शान है, गुरुत्वाकर्षण के जड़–वेग को अभिभूत करने की कैसी स्पर्धा है – प्राण के आवेग की कैसी उल्लासकार अभिव्यक्ति है! देवताओं का दुलारा पेड़ नहीं तो क्या है।क्या यों ही समाधि लगाने के लिए महादेव ने 'देवारुद्रुम–वेदिका' को ही पसंद किया था? कुछ बात होनी चाहिए। कोई नहीं बता सकता कि महादेव समाधि लगाकर क्या पाना चाहते थे। उन्हें कमी किस बात की थी? कालिदास ने बताया है कि उन्होंने इस प्रयोजनातीत (निष्प्रयोजन तो कैसे कहें) समाधि के लिए देवदारु–द्रुम के नीचे वेदिका बनायी थी। शायद इसलिए कि देवदारु भी अर्थातीत छंद है – प्राणों का उल्लासनर्तन, जड़शक्ति के द्वारा आकर्षण को पराभूत करके विपुल–व्योम–मंडल में विहार करने का अर्थातीत आनंद!

कहते हैं, शिव ने जब उल्लासतिरेक में उद्याम–नर्तन किया था तो उनके शिष्य तंडु मुनि ने उसे याद कर लिया था। उन्होंने जिस नृत्य का प्रवर्तन किया उसे 'तांडव' कहा जाता है। 'तांडव' अर्थात् 'तंडु' मुनि द्वारा प्रवर्तित 'रस भाव–विवर्जित' नृत्य! रस

भी अर्थ है, भाव भी अर्थ है, परंतु तांडव ऐसा नाच है, जिसमें रस भी नहीं। भाव भी नहीं, नाचने वाले का कोई उद्देश्य नही, मतलब नहीं, 'अर्थ' नहीं। केवल जड़ता के द्वारा आकर्षण को छिन्न करके एकमात्र चौतन्य की अनुभूति का उल्लास! यह 'एकमात्र' लक्ष्य ही उसमें छंद भरता है, इसी से उसमें ताल पर नियंत्रण बना रहता है। एकाग्रीभाव छंद की आत्मा है। अगर यह न होता तो शिव का तांडव बेमेल धमाचौकड़ी और लस्टम–पस्टम उछल–कूद के सिवा और कुछ न होता। तांडव की महिमा आनंदोमुखी एकाग्रता में है। समाधि भी एकाग्रता चाहती है। ध्यान–धारणा, और समाधि की एकाग्रता से ही 'योग' सिद्ध होता है। बाह्य–प्रकृति के द्वारा आकर्षण को छिन्न करने का उल्लास तांडव है। अंतःप्रकृति के असंयत फिंकाव को नियंत्रित करने के उल्लास का नाम ही समाधि है। देवदारु वृक्ष पहले प्रकार के उल्लास को सूचित करता है, शिव का निर्वात 'निष्कम्पड़वप्रदीपरू' रूप दूसरे प्रकार के। दोनों में एक ही छंद है। शिव ने समझ–बूझकर ही देवदारुद्रुम की वेदिका को पसंद किया होगा। देवदारु के नीचे समाधिस्थ महादेव! तुक मिल रहा है, शानदार तुक! कौन कहता है कि कालिदास ने तुक मिलाने की परवाह नहीं की। मेरा मन कहता है कि कालिदास भी तुकाराम थे, तुक मिलाने के मौजी वागविलासी! मगर ये तुक भोड़े किस्म के नहीं थे, यह तो निश्चित है। 'झगरे–रगरे बगरे–डगरे' ये भी कोई तुक है। मगर सारी दुनिया इसी तुक को तुक कहती आ रही है। कुछ–न–कुछ तो होगा ही। सारी दुनिया पागल नहीं हो सकती है। लेकिन यह भी सही है कि 'बात–बात' में तुक मिला करता है। अगर ऐसा ना होता तो 'बेतुकी' हाँकने वालों को बुरा न माना जाता जो लोग 'तुक की बात करते हैं' वे शब्द की ध्वनियों का तुक तो नहीं मिलाते। फिर तुक है क्या?

बोध प्रश्न

1. 'देवदारु' निबंध के लेखक का क्या नाम है?

   क) आचार्य रामचंद्र शुक्ल   ख) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी

   ग) दिनकर   घ) कोई नहीं

2. लोक विश्वास में तांडव कौन देवता करते हैं?

   क) राम   ख) कृष्ण

   ग) देवी मैया   घ) शिव

3. लेखक के अनुसार जीवन में क्या जरुरी है?

   क) तुक, लय, छंद और अर्थ   ख) फकीरी

   ग) पाखंड   घ) पूजा–पाठ

4. यह निबंध किस पेड़ पर आधारित है?

   क) महुआ   ख) आम

   ग) देवदारु   घ) इमली

तुक वह है जो देवदारु की गगनचुंबी शिखा और समाधिस्थ महादेव की निवात–निष्कंप प्रदीप की ऊर्ध्वगामिनी ज्योति में है! अर्थात् तुक अर्थ में रहता है ध्वनि–साम्य के तुक में कुछ न कुछ अर्थचारुता होनी चाहिए। ध्वनिसाम्य साधन है, तुक अर्थ का धर्म होना चाहिए। मगर कहना खतरे से खाली नहीं है। किसी नये आलोचक ने अर्थ को लय की वकालत की है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सारी पंडित–मंडली उस गरीब पर बरस पड़ी है। अगर तुक अर्थ में मिल सकता है तो लय क्यों नहीं मिल सकता। मेरे अंतर्यामी कहते हैं कि तुक तो अर्थ में नहीं रहता है लय नहीं रहता। बहुत से लोग अंतर की आवाज को आँख मूँदकर मान लेते हैं। मैं नहीं मान पाता। आँखें खोलने पर भी यदि

अंतर की आवाज ठीक जँचे तो मान लेना चाहिए, क्योंकि उस अवस्था में भीतर और बाहर का तुक मिल जाता है। शिवजी ने अंतर और बाहर का तुक मिलाने के लिए ही तो देवदारु को चुना था। अंतर्यामी भी बहिर्यामी के साथ ताल मिलाते रहें यही उचित है। महादेव ने आँखें मूँद ली थीं, देवदारु ने खोल रखी थी। महादेव ने भी जब आँख खोल दी तो तुक बिगड़ गया, छंदोभंग हो गया, त्रैलोक्य को मदविह्वल करने वाला देवता भस्म हो गया। उसका फूलों की तूणीर जल गया, रत्नजटित धनुष टूट गया। सब गड़बड़ हो गया। सोचता हूँ, उस समय देवदारु की क्या हालत हुई होगी। क्या इतनी ही फक्कड़ाना मस्ती से झूम रहा होगा? क्या ऐसा ही बेलौस खड़ा होगा? शायद हाँ, क्योंकि शिव की समाधि टूटी थी, देवदारु का तांडव–रस–भावविवर्जित महानृत्य – नहीं टूटा था। देवता की तुलना में भी निर्विकार रहा – काठ बना हुआ। कौन जाने इसी कहानी को सुनकर किसी ने इसे 'देवता का काठ' (देव–दारु) नाम दे दिया हो। फक्कड़ हो तो अपने लिए हो बाबा, मनुष्य के लिए तो निरकाठ हो, दया नहीं, माया नहीं, आसक्ति नहीं, निरे काठ! ऐसों से तो देवता ही भला! कहीं न कहीं उसमें दिल तो है। मगर यह भी कैसे कहा जाए! देवता के दिल होता तो लाज–शरम भी होती, लाज–शरम होती तो आँखों की पलकें भी झँपती। लेकिन देवता है कि ताकता रहता है, पलक उसकी झँपती ही नहीं! एक क्षण के लिए उसने आँखें मूँदी कि अनर्थ हुआ! बहुत सावधान, सदा जाग्रत।

अलबत्ता, महादेव इन देवताओं से भिन्न थे। जहाँ आँखें झुकनी चाहिए, वहाँ उनकी आँखें झुकती थीं, जहाँ टकटकी बँधनी चाहिए वहाँ बँध जाती थी। पार्वती जब वसनापुष्पोंके आभरण से सजी हुई संचारिणी पल्लविनी लता की भाँति उनके सामने आयीं, तो उनके (पार्वती) बिंबफल के समान अधरोष्ठ वाले मोहक मुख पर उनकी टकटकी बँध गई। फिर उनकी आँखें झुकीं भी। वे मनुष्य के समान विकारग्रस्त हुए। वे देवताओं में मनुष्य थे –महादेव! उस दिन देवदारु चूक गया। वह सब देखता रहा। इतना बड़ा अनर्थ हो गया औरआपने अवधूतपन का बाना नहीं छोड़ा। वह महावृक्ष नहीं बन सका 'देवरदारू' बन गया। आँखें खोले रहना भी कोई तुक की बात है! महावृक्ष वनस्पति होते हैं, जिनमें भावुकतातो नहीं पर सार्थकता होती है, जो फूल तो नहीं देते पर फल देते हैं – 'अपुष्पा फलवंतो ये:'। देवदारु चूक गया, 'वनस्पति' की मर्यादा से वंचित रह गया।

तो क्या हुआ? यह सब मनुष्य की आत्म–केंद्रित दृष्टि का प्रसाद है। देवदारु को इससे क्या लेना–देना! वह तो जैसा है ऐसा बना हुआ है। तुम उसे वनस्पति कहो या देवता का काठ कहो। तुम्हें अच्छा लगता है तो अच्छा नाम देते हो, बुरा लगता है तो बुरा नाम देते हो। नाम में क्या धरा है। मुमकिन है, इसका पुराना नाम देवतरु हो। देवताका तरु नहीं, देवता भी और तरु भी। देव होकर वह छंद है, तरु होकर अर्थ है। छंद, समष्टिव्यापिनी जीवन–गति के समानांतर चलने वाले व्यष्टिगत–प्राणवेग का नाम है, अर्थ, समाज स्वीकृत–प्राप्त संकेत हुआ करता है।

जहाँ बैठकर लिख रहा हूँ वहाँ ऊपर और नीचे पर्वत पृष्ठ पर देवदारु वृक्षों की सोपान–परंपरा–सी दीख रही है। कैसी मोहक शोभा है। वृक्ष और भी हैं, लोगों ने नाम भीबताए हैं, पर सब छिप गये हैं। दिखते हैं, आकाश–चुंबी देवदारु ऐसा लगता है कि ऊपर वाले देवदारु वृक्षों की फुनगी पर से लुढ़का दिया जाऊँ तो फुनगियों पर ही लोटता हुआ हजारों फीट नीचे तक जा सकता हूँ अनायास! पर ऐसा लगता ही भर हैं। भगवान करे कोई सचमुच लुढ़का दे। हड्डी पसली चूर हो जाएगी। जो कुछ लगता है वह सचमुच हो जाए तोअनर्थ हो जाए। लगने में बहुत–सी बातें लगती हैं। इसलिए कहता हूँ कि लगना अर्थ नहीं होता, कई बार अनर्थ होता है। अर्थ वास्तविकता है, वास्तविक जगत् की सचाई है, लगता है सो मन का विकल्प है, अंतर्जगत् की स्पृहा मात्र

है, छंद है। दोनों में कहीं ताल–तुक मिल जाता तो काम की बात होती। नहीं मिलता, यह खेद की बाद है। ताल–तुक मिलना अर्थ है, न मिलना अनर्थ है।

प्रत्येक व्यक्ति के मन में कुछ न कुछ लगता ही रहता है। मजेदार बात यह है कि व्यक्ति का लगना अलग–अलग होता है। 'अ–लग' अर्थात् जो न लगे। लगता है पर नहीं लगता, यह भी कोई तुक की बात हुई? तुक की बात तब होती जब लगना 'अलग' लगना न होता। इसीलिए कहता हूँ कि तुक अर्थ में होता है। जिसने इस पेड़ का नाम देवदारु दिया था उसे क्या लगा था, कह नहीं सकता। बात औरों को भी कमोबेग लगी होगी, तभी सबने मान लिया। जो सबको लगे सो अर्थ, एक को लगे, बाकी को न लगे तो अनर्थ! अलगाव को ही पुराने आचारों ने पृथकत्व–बुद्धि का नाम दिया है। और भी समझा कर कहा है कि यह अलगाव 'मैं पन' है, 'अहंकार' है। इधर कवि लोग हैं उन्हें कि हमेशा कुछ देखकर कुछ न कुछ लगता ही रहता है। खुले–आम कहते हैं कि मुझे ऐसा लग रहा है। दुनिया की ओर भी देखो। वह तुम्हें पागल कहेगा। पागल को भी तो कुछ–न–कुछ लगता रहता है। मगर दुनिया को देखता हूँ तो हैरत में पड़ जाता हूँ। कवि को जो कुछ लगता है उसका वाह–वाह करके उसे सिर उठा लेती है। कुछ समझ में नहीं आता। 'हाँ ही बौरी बिरह बस के बौरौ सबगाँव'।

बिहारी अच्छे खासे कवि माने जाते हैं। उन्हीं की बात याद आ गई थी। बात इतनी ही सी थी कि कोई विरह की मारी स्त्री कह रही है कि मैं ही पागल हो गयी हूँ या सारा गाँव ही पागल हो गया है? क्या समझ कर ये लोग चाँद को ठंडी किरनवाला कहते हैं – 'कहाँ जाने ये कहत है ससिहिं सीत–कर नाँव' विरह की मारी महिला का दिमाग बिगड़ गया है, जो सबको ठंडा लग रहा है, उसे वह दाहक मान रही है। पागलपन ही तो है। मगर जब बिहारी ने उसे दोहा छंद में बाँध दिया हो बात बिल्कुल बदल गयी। हाय–हाय, कैसी विरह–वेदना है कि उस सुकुमार बालिका को चाँद भी गरम मालूम पड़ता है। हृदय के भीतर जलनेवाली विरहाग्नि ने उसे किसी काम का नहीं छोड़ा। हे भगवान, तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकते कि सारे गाँव के समान इस बालिका को भी चंद्रमा उतना ही शीतल लगे जितना औरों को लगता है! अर्थात् विरहिणी की दारूण–व्यथा अब सब के चित्त की सामान्य अनुभूति के साथ ताल मिलाकर चलने लगी। पागल का 'लगना' एक का लगना होता है, कवि का लगना सबको लगने लगता है। बात उलट कर कही जाय तो इस प्रकार होगी – जिसका लगना सबको लगे वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल। लगने–लगने में भी भेद है। जो सबको लगे, वह अर्थ है, जो एक को ही लगे, वह अनर्थ है।अर्थ सामाजिक होता है।

मगर देवदारु नाम केवल नाम ही नहीं है। मैंने अपने गाँव के एक महान भूत–भगवान ओझा को देवदारु की लकड़ी से भूत भगाते देखा है। आजकल के शिक्षित लोग भूत में विश्वास नहीं करते। वे भूत को मन का वहम मानते हैं। पर गाँव में भूत लगते मैंने देखा है। भूत भागते भी देखा है। भूत भी लगता है। सब लगालगी वहम ही होती होगी। आँखों को भी। बिहारी जानते थे। कह गये हैं – 'लगालगी लोचन करें, नाहक मन बँध जाय।' नाहक अर्थात् बेमतलब, निरर्थक।

हमारे गाँव में एक पंडितजी थे। अपने को महाविद्वान् मानते थे। विद्या उनके मुँह से फचाफच निकला करती थी। शास्त्रार्थ में वे बड़े–बड़े दिग्गजों को हरा देते थे।विद्या के जोर से नहीं, फचफचाहट के आघात से। प्रतिपक्षी मुँह पोछता हुआ भागता था। अगर कुछ कैड़े का हुआ तो दैहिक–बल से जय–पराजय का निश्चय होता था। मेरे सामने ही एक बार खासी गुत्थमगुत्थी हो गई। गाँव–जवार के लोगों को पंडितजी की विद्या पर भरोसा नहीं था पर उनकी फचाफच वाणी और – भीमकाया पर विश्वास अवश्य था।शास्त्रार्थ में पंडितजी कभी हारे नहीं। कम लोग जानते हैं कि शास्त्रार्थ

में कोई हारता नहीं, हराया जाता है! पंडितजी के यजमान जम के उनके पीछे लाठी लेकर खड़े हो जाते थे तो उनकी विजय निश्चित हो जाती थी। पंडितजी केवल बड़े दिग्गज विद्वानों को ही नहीं, आसपास के भूतों को भी पराजित करने में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते थे। गायत्री का मंत्र जो उनके मुँह से आल्हा जैसा सुनाई देता था और देवदारु की लकड़ी उनके अस्त्र थे। एक बार वे बगीचे से गुजर रहे थे, घोर अंधकार, भयंकर सुनसान!क्या देखते हैं कि आगे दनादन ढेले गिर रहे हैं। पंडितजी का अनुभवी मन तुरंत ताड़ गया कि कुछ दाल में काला है। मनुष्य इतनी तेजी से ढेले नहीं फेंक सकता। पंडितजी डरने वाले नहीं थे, पीछे मुड़कर ललकारा – अरे केवन है। केवन अर्थात् कौन। पीछे मुड़कट्टा, घोड़े पर चढ़ा चला आ रहा था, टप्प–टप्प–टप्प! (यहाँ पाठकों की जानकारी के लिए बता दूँ कि एक बार मैंने अपने गाँव में भूतों के जाति–भेद की जाँच की थी। कुल तेईस किस्म के हैं। मुड़कट्टा एक भूत ही है। मूँड़ नहीं है। छाती पर दो आँखें मशाल की तरह जलती रहती हैं। घोड़े पर चढ़कर चलता है) सो, पंडितजी से उलझने की हिमाकत की इस मुड़कट्टे ने। डरनेवाला कोई और होता है। पंडितजी ने जूता उतार दिया, वह गायत्री मंत्र के पाठ में बाधक था। झमाझम गायत्री पढ़ने लगे। देवदारु की लकड़ी मुट्ठी में थी। दे रद्दे पर रद्दा। विचारा मुड़कट्टा त्राहि–त्राहि कर उठा। अबकी बार छोड़ दो पंडितजी, पहचान नहीं सका था। अब फिर यह गलती नहीं होगी। आज मैं तुम्हारा गुलाम हुआ। पंडितजी का ब्राह्मण मन पसीज गया। नहीं तो यह सारे गाँव–जवार का कंटक समाप्त हो गया होता। मैंने यह कहानी स्वयं पंडितजी के मुँह से सुनी थी। अविश्वास करने का कोई उपाय नहीं था – फर्स्टहैंड इन्फर्मेशन था। उस दिन मेरे बालचित्त पर देवदारु की धाक जम गयी थी! अब भी क्या दूर हुई है।

आज देवदारु के जंगल में बैठा हूँ। लाख–लाख मुड़कट्टों को गुलाम बना सकता हूँ। भूतों में जैसे मुडकट्टे होते हैं, आदमियों में भी कुछ होते हैं। मस्तक नाम की चीज उनके पास होती नहीं, मस्तक ही नहीं तो मस्तिष्क कहाँ, लता ही कट गई तो फूल की संभावना ही कहाँ रही – 'लतायां पूर्वलूनायां प्रसूनस्योद्भवरू कृतरू।' क्या इन मुड़कट्टों को देवदारु की लकड़ी से पराभूत किया जा सकता है? करने का प्रयत्न ही कर रहा हूँ। पंडितजी के पास तो फचफची गायत्री थी, वह कहाँ पाऊँ?

मन की सारी भ्रांति को दूर करनेवाले देवदारु तुम्हें देखकर मन श्रद्धा से जो भर जाता है, वह अकारण नहीं है। तुम भूत भगवान हो, तुम वहम–मिटावन हो, तुम भ्रांति नसावन हो। तुम्हें दीर्घकाल से जानता था पर पहचानता नहीं था, अब पहचान भी रहा हूँ। तुम देवता के दुलारे हो महादेव के प्यारे हो, तुम धन्य हो।

जानता हूँ कि बुद्धिमान लोग कहेंगे कि यह महज गप्प है। यह भी जानता हूँ कि कदाचित् अंतिम विश्लेषण पर पंडितजी की कहानी 'पत्ता खड़का, बंदा भड़का' से अधिक वजनदारन साबित हो। संभावना तो यही तक है कि पत्ता भी न खड़का हो और पंडितजी ने आद्योपांत पूरी कहानी बना ली हो। मगर बलिहारी है इस सर्जन शक्ति की। क्या शानदार कहानी रची है पंडितजी ने! आदिकाल से मनुष्य गप्प रचता आ रहा है, अब भी रचे जा रहा है। आजकल हम लोग ऐतिहासिक युग में जीने का दावा करते हैं। पुराना मनुष्य 'मिथकीय युग में रहता था, जहाँ वह भाषा के माध्यम को अपूर्ण समझता था, वहाँ मिथकीय तत्वों से काम लेता था। मिथक गप्पें – भाषा की अपूर्णता को भरने का प्रयास है। आज भी क्या हम मिथकीय तत्वों से प्रभावित नहीं हैं? भाषा बुरी तरह अर्थ से बँधी हुई है। उसमें स्वच्छंद संचार की शक्ति क्षीण से क्षीणतर होती जा रही है। मिथक स्वच्छंद विचरण करता है। आश्चर्य होता है भाषा का मिथक अभिव्यक्त करता है भाषातीत को। मिथकीय आवरणों को हटाकर उसे तथ्यानुयायी अर्थ देने वाले लोग मनोवैज्ञानिक कहलाते हैं, आवरणों की सार्वभौम रचनात्मकता को पहचानने वाले कला समीक्षक कहलाते हैं। दोनों को भाषा का सहारा लेना पड़ता है, दोनों धोखा खाते हैं।

भूत तो सरसों में है। जो सत्य है, वह सर्जनाशक्ति के हिरण्य–पात्र में मुँह बंद किए ढँका ही रह जाता है। एक पर एक गप्पों की परतें जमती जा रही हैं। सारी चमक सीपी को चमक में चाँदनी देखने की तरह मन का अभ्यास मात्र है। गप्प कहाँ नहीं हैं, क्या नहीं है? मगर छोड़िए भी।

देवदारु भी सब एक से नहीं होते। मेरे बिलकुल पास में जो है, वह जरठ भी है, खूसट भी। जरा उसके नीचे की ओर जो है, वह सनकी–सा लगता है। एक मोटे राम खड्ड के एक प्रांत पर उगे हैं, आधे जमीन में, आधे अधर में, आधा हिस्सा ठूँठ, आधा जगर–मगर, सारे कुनबे के पाधा जान पड़ते हैं। एक अल्हड़ किशोर है, सदा हँसता–सा, कवि जैसा लगता है। जी करता है इसे प्यार किया जाए। सदा से ऐसा होता आया है। हर देवदारु का अपना व्यक्तित्व होता है। एक इतना कमनीय था कि बैल की ध्वजा वाले महादेव ने उसे अपना बेटा बना लिया था। पार्वती माता की छाती से दूध ढरक पड़ा था। कालिदास खुद कह गये हैं। मगर कुछ लोग ऐसे होते हैं कि उन्हें 'सबै धान बाईस पसेरी' दिखते हैं।वे लोग सबको एक ही जैसा देखते हैं। उनके लिए वह खूसट, वह पाधा, वह सूम, वह सनकी, वह झबरैला, वह चपरगेंगा, वह गदरौना, वह खिटखिटा, वह झक्की, वह झुमरैला, वह धोकरा, वह नटखटा, वह चुनमुन, वह बाँकुरा, वह चौरंगी सब समान हैं। महादेवजी के प्यारे बेटे के कमनीय व्यक्तित्व को भी सब नहीं पहचान सकते थे। एक मदमत्त गजराज आये और अपने गंडस्थल की खाज मिटाने के लिए उसी पर पिल पड़े। जड़ें हिल गई, पत्ते झड़ गये, खाल छूट गयी और आप खाज मिटाते रहे। महादेव जी को बड़ा क्रोध आया। आना ही था। उन्होंने उसकी रक्षा के लिए एक सिंह तैनात कर दिया। पर मेरे सामने जो अल्हड़ कवि है, इसका क्या होगा? वह तो कहिए कि इधर हाथी आते ही नहीं। फिर भी डर तो लगता ही है। हाथी न सही गधों और खच्चरों से तो शहर भरा पड़ा है। लेकिन मैं जिधर हूँ उधर वे भी कम ही आते हैं। गाहे–बगाहे आ भी जाते हैं पर उन्हें देवदारु की तरफ देखने की फुरसत नहीं होती। उन्हें देखने को और बहुत–सी चीजें मिल जाती हैं। बहरहाल कोई खास चिंता की बात नहीं। इस देश के लोग पीढ़ियों से सिर्फ जाति देखते आ रहे हैं, व्यक्तित्व देखने की उन्हें न आदत है न परवाह है। संत लोग चिल्लाकर थक गये कि 'मोल करो तलवार को, पड़ा रहन दो म्यान' के मोल भाव से बाजार गर्म। व्यक्तित्व को यहाँ पूछता ही कौन है। अर्थमात्र जाति है, छंदमात्र व्यक्ति है। अर्थ आसानी से पहचाना जा सकता है क्योंकि वह धरती पर चलता है, छंद आसानी से पकड़ में नहीं आता, वह आसमान में उड़ा करता है।

बात यह है कि जब में कहता हूँ कि देवदारु सुंदर है तो सुननेवाले सुंदर का एक सामान्य अर्थ ही लेते हैं। हजार तरह के सुंदर पदार्थों में रहने वाला एक सामान्य सौंदर्य–धर्म। सौंदर्य का कौन–सा विशिष्ट रूप मेरे हृदय में उल्लास तरंगित कर रहा है यह बात बस, मैं ही जानता हूँ। अगर मुझमें इस बात को कहने की शक्ति नहीं हुई तो यह गूँगे का गुड़ बनी रह जाएगी। जिसमें शक्ति होती है, वह कवि कहलाता है। अनेक प्रकार के कौशल से वह इस बात को कहने का प्रयत्न करता है फिर भी शब्दों का सहारा तो उसे लेना ही पड़ता है, शब्द सदा सामान्य अर्थ को प्रकट करते हैं। कवि विशिष्ट अर्थ देना चाहता है। वह छंदों के सहारे, उपमान योजना के बल पर, ध्वनि–साम्य के द्वारा विशिष्ट अर्थ को समझ पाते हैं? बिल्कुल नहीं। कोई बड़भागी होता है जिसके दिल की धड़कन कवि के दिल की धड़कन के साथ ताल मिला पाती है। कविके हृदय के साथ मिल जाय उसे 'सहृदय' कहा जाता है। देवदारु की ऊर्ध्वा शिखा–शोभा मेरे हृदय में एक विशेष उल्लास पैदा करती है। मेरे पास कवि कौशल नाम की चीज नहींहै। मैं अपने विशिष्ट अनुभवों का साधारणीकरण नहीं कर पा रहा हूँ। कवि होता तो करा लेता। उपमानों की छटा खड़ी कर देता, सहृदय के चित्त को अपने चित्त के ताल परनृत्य कराने योग्य छंद ढूँढ़ लेता, ध्वनियों की नियतसंचारी समता को ऐसा समाँ बाँधता कि सुननेवाले का मन–मयूर की भाँति नाच उठता, पर मेरे भाग्य

में यह कुछ भी नहीं। केवल आँख फाड़कर देखता हूँ, पाषाण की कठोर छाती भेदकर देवदारु न जाने किस पताल से न जाने अपना रस खींच रहा है और कम ह्रस्व छाया का वितान तानता हुआ उर्ध्वलोक की ओर किसी अज्ञात निर्देशक के तर्जनी–संकेत की भाँति कुछ दिखा रहा है। यह इतनी उँगलियाँ क्या यों ही उठी हुई है? कुछ बात है, अवश्य कुछ रहस्य है। भीतर ही भीतर अनुभव कर रहा हूँ पर बता सकूँ ऐसी भाषा कहाँ है। हाय, मैं असमर्थ हूँ, मूक हूँ! मीमांसकों का एक संप्रदाय मानता था कि शब्द का अर्थ वहाँ तक जाता है जहाँ तक वक्ता ले जाता है वक्ता की इच्छा को **विवक्षा** कहते हैं। ये लोग कहते हैं कि जब जैमिनि मुनि ने कहा था कि 'यत्परः शब्दः स शब्दार्थः' तो उनका यही मतलब था। मेरा रोम–रोम अनुभव कर रहा है कि मुनि की बात का ऐसा अर्थ नहीं होना चाहिए। कहाँ विवक्षा इतनी दूर तक ले जाती है? सुंदर शब्द का प्रयोग करके मैं जो कहना चाहता हूँ वह कहाँ प्रकट हो पा रहा है। कहना तो बहुत चाहता हूँ, कोई, समझे भी तो नहीं शब्द उतना ही बता पाता है जितना लोग समझते हैं। वक्ता जो कहना चाहता है उतना कहाँ बता पाता है वह? दुनिया में कवियों की जो कदर है वह इसीलिए है कि वे जो अनुभव करते हैं उसे श्रोता के चित्त में प्रविष्ट भी करा सकते हैं। प्रेषणधर्मिता उनके कहे का एक प्रधान गुण है। मैं नहीं पहुँचा पाता हूँ उस अर्थ को जिसे मेरा मन अनुभव कर रहा है। क्योंकि मैं शब्दों और छंदों का ऐसा अस्त्र नहीं बना पाता हूँ, जो मेरी अनुभूतियों को लेकर तीर की तरह श्रोता के हृदय में चुभ जाये। अर्थ निश्चय ही वक्ता की इच्छा के अधीन नहीं है। वह सामाजिक स्वीकृति चाहता है। उसमें लय नहीं, संगीत नहीं, गति नहीं, वह स्थिर है। शब्दों के गतिशील आवेग से वह हिलता है, भरभराता है, नये–नये परिवेश में सजता है और तब कहीं नया पैदा करता है। अर्थ में लय नहीं होता, वह लय के सहारे नया अर्थ देता है।

लेकिन देवदारु है शानदार वृक्ष। हवा के झोंको से जब हिलता है तो इसका अभिजात्य झूम उठता है कालिदास ने इसी हिमालय के उस भाग की, जहाँ से भागीरथी के निर्झर झरते रहते हैं, शीतल–मंद–सुगंध पवन की चर्चा की थी, उन्होंने शीतलता को भागीरथी के निर्झर सीकरों की देन कहा, सुगंधि को आसपास के वृक्षों के पुष्पों के संपर्क की बदौलत घोषित किया, लेकिन मंदी के लिए 'मुहुःकंपित देवदारु' को उत्तरदायी ठहराया। देवदारु के बारंबार कंपित होते रहने में एक प्रकार की मस्ती अवश्य है। युग–युगांतर की संचित अनुभूति ने ही मानो यही मस्ती प्रदान की है। जमाना बदलता रहा है, अनेक वृक्षों और लताओं ने वातावरण से समझौता किया है, कितने ही मैदान में जा बसे हैं और खासी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली है, लेकिन देवदारु है कि नीचे नहीं उतरा, समझौते के रास्ते नहीं गया और उसने अपनी खानदानी चाल नहीं छोड़ी। झूमता हैतो ऐसा मुसकराता हुआ मानों कह रहा हो मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ। तुम्हारे करिश्में मुझे मालूम हैं, मुझसे तुम क्या छिपा सकते हो – 'मों ते दुरैहौ कहा सजनी निहुरे–निहुरे कहुँ ऊँट की चोरी!' हजारों वर्ष के उतार–चढ़ाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है।

बोध प्रश्न

5. शिव की साधना और कवियों की कविता की शुरुआत लेखक के अनुसार कहाँ से शुरू हुई थी?

   क) सती मैया के चौरा से   ख) देवदारु वृक्ष के नीचे

   ग) कटहल के पेड़ से   घ) कोई नहीं

6. लेखक के अनुसार किसने अपनी खानदानी चाल नहीं छोड़ी?

   क) देवदारु   ख) ब्राह्मण

   ग) बबूल   घ) नेता

7. भूतों में जैसे मुड़कट्टे होते हैं, आदमियों में भी कुछ होते हैं। यह किस निबंध में कहा गया है।

    क) कुटज   ख) अशोक के फूल

    ग) देवदारु   घ इनमे से कोई नहीं

8. इस निबंध में मूर्ख पंडित अपनी विद्वता कैसे मनवाता था?

    क) लाठी, डंडा और फचफचाहट से   ख) ब्राह्मणवाद से

    ग) दोनों से   घ) इनमें से कोई नहीं

9. 'हजारों वर्ष के उतार–चढ़ाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है।' यह बात किसने कही है?

    क) नामवर सिंह ने   ख) आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने

    ग) आचार्य शुक्ल ने   घ) इनमे से कोई नहीं

10. इस निबंध से क्या शिक्षा मिलती है?

    क) समाज में बने रहने के लिए संघर्ष जरुरी है

    ख) पाखंड जरुरी है

    ग) अन्धविश्वास से व्यक्ति आगे निकल सकता है

    घ) जीवन में फकीरी का सन्देश

5.3 निबंध का सार

इस इकाई में हम 'देवदारु' निबंध का सारांश अपने शब्दों में लिखने की कोशिश करेंगे। देवदारु निबंध में लेखक कहता है यह पेड़ अत्यंत पुराना है, इसकी उचाँई इतनी है मानो पर्वत की चोटी को पार करते हुए देवलोक की तरफ जा रहा हो। इस पेड़ की शाखाएँ इस तरह से फैली है कि लगता है छाया इस पेड़ की दासी हो। ऐसा लगता है की यह पेड़ किसी सुलझे हुए कवि के चित का मूर्तिमान छंद है। कालिदास ने बताया है कि उन्होंने इस प्रयोजनातीत (निष्प्रयोजन तो कैसे कहें) समाधि के लिए देवदारु–द्रुम के नीचे वेदिका बनायी थी। शायद इसलिए कि देवदारु भी अर्थातीत छंद है। एकाग्रीभाव छंद की आत्मा है। अगर यह न होता तो शिव का तांडव बेमेल धमाचौकड़ी और लस्टम–पस्टम उछल–कूद के सिवा और कुछ न होता। तांडव की महिमा आनंदोमुखी एकाग्रता में है।

निबंधकार देवदारु की महता स्थापित करते हुए लिखता है कि तुक अर्थ में रहता है ध्वनि–साम्य केतुक में कुछ न कुछ अर्थचारुता होनी चाहिए। ध्वनिसाम्य साधन है, तुक अर्थ का धर्म होना चाहिए।बहुत से लोग अंतर की आवाज को आँख मूँदकर मान लेते हैं। मैं नहीं मान पाता। आँखें खोलने पर भी यदि अंतर की आवाज ठीक जँचे तो मान लेना चाहिए। क्योंकि उस अवस्था में भीतर और बाहर का तुक मिल जाता है। शिवजी ने अंतर और बाहर का तुक मिलाने के लिए ही तो देवदारु को चुना था। अंतर्यामी भी बहिर्यामी के साथ ताल मिलाते रहें यही उचित है।

लेखक का मानना है कि जीवन सिर्फ तुकबंदी से नहीं चलता ,बल्कि जीवन फक्कड़ मस्ती का दूसरा रूप है। लेखक लिखता है कि 'सोचता हूँ, उस समय देवदारु की क्या हालत हुई होगी। क्या इतनी ही फक्कड़ाना मस्ती से झूम रहा होगा? क्या ऐसा ही बेलौस खड़ा होगा? शायद हाँ, क्योंकि शिव की समाधि टूटी थी, देवदारु का तांडव–रस–भाव विवर्जित महानृत्य – नहीं टूटा था'।

साथ ही लेखक शिव और देवदारु के रिश्ते को बार बार रेखांकित करता है, लेकिन लेखक देवदारु की अहमियत बताते हुए कहता है कि 'महादेव! उस दिन देवदारु चूक गया। वह सब देखता रहा। इतना बड़ा अनर्थ हो गया और आपने अवधूतपन का बाना नहीं छोड़ा। वह महावृक्ष नहीं बन सका 'देवदारू' बन गया। आँखें खोले रहना भी कोई तुक की बात है! महावृक्ष बनस्पति होते हैं, जिनमें भावुकतातो नहीं पर सार्थकता होती है, जो फूल तो नहीं देते पर फल देते हैं।'

लेखक छंद और अर्थ के बीच जीवन को तलाशता है, 'मुमकिन है, इसका पुराना नाम देवतरु हो। देवता का तरु नहीं, देवता भी और तरु भी। देव होकर वह छंद है, तरु होकर अर्थ है।' परन्तु इधर कवि लोग हैं उन्हें कि हमेशा कुछ देखकर कुछ न कुछ लगता ही रहता है। खुले–आम कहते हैं कि मुझे ऐसा लग रहा है। दुनिया की ओर भी देखो। वह तुम्हें पागल कहेगा। पागल को भी तो कुछ–न–कुछ लगता रहता है। मगर दुनिया को देखता हूँ तो हैरत में पड़ जाता हूँ। कवि को जो कुछ लगता है उसका वाह–वाह करके उसे सिर उठा लेती है। कुछ समझ में नहीं आता। 'हाँ ही बौरी बिरह बस के बौरौ सब गाँव'।

जीवन की विविधता में सामाजिक जीवन की भूमिका के साथ लेखक विरहणी और उसके दुःख को समाज से जोडकर देखता है : विरहिणी की दारूण–व्यथा अब सब के चित्त की सामान्य अनुभूति के साथ ताल मिलाकर चलने लगी। पागल का 'लगना' एक का लगना होता है, कवि का लगना सबको लगने लगता है। बात उलट कर कही जाय तो इस प्रकार होगी – जिसका लगना सबको लगे वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल। लगने–लगने में भी भेद है। जो सबको लगे, वह अर्थ है, जो एक को ही लगे, वह अनर्थ है।अर्थ सामाजिक होता है।'

लोक जीवन में कर्मकांड और अन्धविश्वास की अपनी परम्परा है, लेखक देवदारु को वहाँ भी ब्राह्मणों के औजार के रूप में बताया है : 'पंडितजी केवल बड़े दिग्गज विद्वानों को ही नहीं, आसपास के भूतों को भी पराजित करने में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं मानते थे। गायत्री का मंत्र जो उनके मुँह से आल्हा जैसा सुनाई देता था और देवदारु की लकड़ी उनके अस्त्र थे। क्या इन मुड़कट्टों को देवदारु की लकड़ी से पराभूत किया सकता है? करने का प्रयत्न ही कर रहा हूँ। पंडितजी के पास तो फचफची गायत्री थी, वह कहाँ पाऊँ ,मन की सारी भ्रांति को दूर करनेवाले देवदारु तुम्हें देखकर मन श्रद्धा से जो भर जाता है, वह अकारण नहीं है। तुम भूत भगवान हो, तुम वहम–मिटावन हो, तुम भ्रांतिनसावन हो। तुम्हें दीर्घकाल से जानता था पर पहचानता नहीं था, अब पहचान भी रहा हूँ। तुम देवता के दुलारे हो महादेव के प्यारे हो, तुम धन्य हो।

निबंधकार देवदारु के साथ सिद्धांत और व्यवहार की बात भी करते है – मिथकीय आवरणों को हटाकर उसे तथ्यानुयायी अर्थ देने वाले लोग मनोवैज्ञानिक कहलाते हैं, आवरणों की सार्वभौम रचनात्मकता को पहचानने वाले कला समीक्षक कहलाते हैं।'

साथ ही देवदारु भी सब एक से नहीं होते। मेरे बिलकुल पास में जो है, वह जरठ भी है, खूसट भी। जरा उसके नीचे की ओर जो है, वह सनकी–सा लगता है। एक मोटे राम खड्ड के एकप्रांत पर उगे हैं, आधे जमीन में, आधे अधर में, आधा हिस्सा ठूँठ, आधा जगर–मगर, सारे कुनबे के पाधा जान पड़ते हैं। एक अल्हड़ किशोर है, सदा हँसता–सा, कवि जैसा लगता है। जी करता है इसे प्यार किया जाए।केवल आँख फाड़कर देखता हूँ, पाषाण की कठोर छाती भेदकर देवदारु न जाने किस पताल से न जाने अपना रस खींच रहा है और कम ह्रस्व छाया का वितान तानता हुआ उर्ध्वलोक की ओर किसी अज्ञात निर्देशक के तर्जनी–संकेत की भाँति कुछ दिखा रहा है। यह इतनी उँगलियाँ क्या यों ही उठी हुई है? कुछ बात है, अवश्य कुछ रहस्य है। भीतर ही भीतर अनुभव कर रहा हूँ पर बता सकूँ ऐसी भाषा कहाँ है।

सचमुच कालिदास ने देवदारु को शानदार वृक्ष कहा है।' हवा के झोंको से जब हिलता है तो इसका अभिजात्य झूम उठता है हिमालय के उस भाग की, जहाँ से भागीरथी के निर्झर झरते रहते हैं, शीतल–मंद–सुगंध पवन की चर्चा की थी, उन्होंने शीतलता को भागीरथी के निर्झर सीकरों की देन कहा, सुगंधि को आसपास के वृक्षों के पुष्पों के संपर्क की बदौलत घोषित किया, लेकिन मंदी के लिए 'मुहुःकंपित देवदारु' को उत्तरदायी ठहराया। देवदारु के बारंबार कंपित होते रहने में एक प्रकार की मस्ती अवश्य है।'

बोध प्रश्न

11. देवदारु आभिजात्य पेड़ है।

    क) सही   ख) गलत

12. सचमुच कालिदास ने ....को शानदार वृक्ष कहा है।

    क) पीपल   ख) महुआ

    ग) देवदारु   घ) पकड़ी

13. जिसका लगना सबको लगे वह ..... है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल।

    क) कवि   ख) ढोंगी   ग) कर्मकांडी

5.4 सन्दर्भ सहित व्याख्या

1. जिस आचार्य ने पतिपाटीविहित निष्टजनानुमोदित 'सज्जा' को 'छाया' नाम दिया था वह जरूर इस पेड़ की शोभा से प्रभावित हुआ था। पेड़ क्या है, किसी सुलझे हुए कवि के चित्तका मूर्तिमान छंद है – धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लहरदार वितानों की शृंखला को सावधानी से सँभालता हुआ, विपुल–व्योम की ओर एकाग्रीभूत मनोहर छंद। कैसी शान है, गुरुत्वाकर्षण के जड़–वेग को अभिभूत करने की कैसी स्पर्धा है – प्राण के आवेग की कैसी उल्लासकार अभिव्यक्ति है!

सन्दर्भ : प्रस्तुत गद्यांश 'देवदारु ' निबंध से लिया गया है। इस निबंध के लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी है

लेखक देवदारु पेड़ की विशालता और उसकी छाया की महिमा मंडन कर रहा है।

व्याख्या : लेखक देवदारु पेड़ का उल्लेख करते हुए कहता है कि जो भी महान आचार्य ने सज्जा को छाया नाम दिया है, वे इसी पेड़ के सौदर्य को देखा होगा। सचमुच यह पेड़ न होकर ऐसा लगता है कि यह किसी कवि का मूर्तिमान छंद हो जो धरती के सौदर्य को बढ़ाते हुए कवि मन को प्रभावित किया होगा द्य इस पेड़ की शृंखला पहाड़ो के मध्य ऐसे मूर्तिमान है जैसे किसी महान कवि की रचना विधान। यह पेड़ अपनी उँचाई में आसमान को छूने के बाद भी अपनी जड़ों से बहुत मजबूत है, ऐसा लगता है जैसे गुरुत्वाकर्षण बल से बराबरी कर रहा हो। देवदारु को देखकर ऐसा लगता है कि इस पेड़ में जीवन की अभिव्यक्ति है।

विशेष : इस गद्यांश में अतिरिक्त पांडित्य बोध है, जिसे सामान्य पाठक आसानी से नहीं समझ सकता है।

भाषा तत्सम प्रधान है।

लेखन ने देवदारु पेड़ की महता में अतिश्योक्ति भर दिया और उसका महानता का वर्णन किया है।

कवि, कविता और जीवन को प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

लेखक ने देवदारु के सौंदर्य बोध को जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।

लेखक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पर्वतीय सौदर्यबोध को दर्शाया है।

लेखकीय लोकबोध और उसके प्रति लगाव देखा जा सकता है।

भाषा खड़ीबोली हिंदी है।

2. ध्वनिसाम्य साधन है, तुक अर्थ का धर्म होना चाहिए। मगर कहना खतरे से खाली नहीं है। किसी नये आलोचक ने अर्थ को लय की वकालत की है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सारी पंडित–मंडली उस गरीब पर बरस पड़ी है। अगर तुक अर्थ में मिल सकता है तो लय क्यों नहीं मिल सकता। मेरे अंतर्यामी कहते हैं कि तुक तो अर्थ में नहीं रहता है लय नहीं रहता। बहुत से लोग अंतर की आवाज को आँख मूँदकर मान लेते हैं। मैं नहीं मान पाता। आँखें खोलने पर भी यदि अंतरकी आवाज ठीक जँचे तो मान लेना चाहिए, क्योंकि उस अवस्था में भीतर और बाहर का तुक मिल जाता है द्य

सन्दर्भ : निबंध और निबंधकार का नाम (देवदारु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

लेखक तुक और लय के बीच देवदारु को केंद्र में रखकर जीवन की व्याख्या करता ।

व्याख्या : तुक और लय आलोचकीय मंडली और जीवन की लोकपक्षीय मिठास

विशेष : लेखक ने देवदारु के सौंदर्य बोध को जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।

लेखक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ पर्वतीय सौदर्यबोध को दर्शाया है।

लेखकीय लोकबोध और उसके प्रति लगाव देखा जा सकता है।

भाषा खड़ीबोली हिंदी है।

(कुछ विशेष पाठक स्वयं करे)

3. हृदय के भीतर जलनेवाली विरहाग्नि ने उसे किसी काम का नहीं छोड़ा। हे भगवान, तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकते कि सारे गाँव के समान इस बालिका को भी चंद्रमा उतना ही शीतल लगे जितना औरों को लगता है! अर्थात् विरहिणी की दारूण–व्यथा अब सब के चित्त की सामान्यअनुभूति के साथ ताल मिलाकर चलने लगी। पागल का 'लगना' एक का लगना होता है, कवि का लगना सबको लगने लगता है। बात उलट कर कही जाय तो इस प्रकार होगी – जिसका लगना सबको लगे वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल। लगने–लगने में भी भेद है। जो सबको लगे, वह अर्थ है, जो एक को ही लगे, वह अनर्थ है।अर्थ सामाजिक होता है।

सन्दर्भ : निबंध और निबंधकार का नाम (देवदारु, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी)

लेखक विरहणी को केंद्र में रखकर जीवन की व्याख्या करता है।

व्याख्या : कवि, कविता और विरहणी का दुःख

जीवन की लोकपक्षीय मिठास

अर्थ सामाजिक होता है

विशेष : लेखक ने देवदारु के सौंदर्य बोध को जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में देखा है।

लेखक ने विरहणी की पीड़ा और प्रकृति की पीड़ा को मिलाकर देखा है।

लेखकीय लोकबोध और उसके प्रति लगाव देखा जा सकता है।

भाषा खड़ी बोली हिंदी है।

(कुछ विशेष पाठक स्वयं करे)

5.5 अंतर्वस्तु

इस इकाई के अंतर्गत निबंध के भाव और विचारगत विशेषताओं पर बात करेंगे।

इस इकाई के अंतर्गत 'देवदारु' नामक निबंध की अंतर्वस्तु पर विचार करेंगे। किसी भी रचना की अंतर्वस्तु उसके भाव पक्ष और कला पक्ष पर आधारित होता है, इसे समझने की भाषा में विचार पक्ष और भाव पक्ष भी कहा जा सकता है।

5.5.1 विचार पक्ष

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध रचना अपनी लालित्यबोध के लिए महत्वपूर्ण है। लेखक ने सामाजिक–सांस्कृतिक तथ्यों के मूल्यांकन के लिए कुटज, अशोक के फूल, देवदारु इत्यादि पेड़ों को आधार बनाकर जीवन की कठिनता और उसमे जीवटता भरने की कोशिश करते है। लेखक अनेक दृष्टान्तों और सांस्कृतिक सूचनाओं के माध्यम से लोकजीवन की प्रासंगिकता को बनाये रखने में विश्वास रखते हैं। लेखक पेड़ को कवि और कविता से जोडकर देखता है – 'पेड़ क्या है, किसी सुलझे हुए कवि के चित्त का मूर्तिमान छंद है – धरती के आकर्षण को अभिभूत करके लहरदार वितानों की शृंखला को सावधानी से सँभालता हुआ, विपुल–व्योम की ओर एकाग्रीभूत मनोहर छंद।'

लेखक मिथकीय पात्रों के साथ पेड़ के संबंधों की नई व्याख्या करता है। शिव तांडव और जीवन में उसका अर्थ की व्याख्या इससे अच्छा क्या हो सकता है उन्होंने जिस नृत्य का प्रवर्तन किया उसे 'तांडव' कहा जाता है। 'तांडव' अर्थात् 'तंडु' मुनि द्वारा प्रवर्तित 'रस भाव–विवर्जित' नृत्य! रस भी अर्थ है, भाव भी अर्थ है, परंतु तांडव ऐसा नाच है, जिसमें रस भी नहीं। भाव भी नहीं नाचनेवाले का कोई उद्देश्य नही, मतलब नहीं, 'अर्थ' नहीं।'

लेखक के लिए तुक जीवन में अर्थ को प्रासंगिक बनाये रखने में है ,अर्थात 'तुक वह है जो देवदारु की गगनचुंबी शिखा और समाधिस्थ महादेव की निवात–निष्कंप प्रदीप की ऊर्ध्वगामिनी ज्योति में है! अर्थात् तुक अर्थ में रहता है ध्वनि–साम्य केतुक में कुछ न कुछ अर्थचारुता होनी चाहिए। ध्वनिसाम्य साधन है, तुक अर्थ का धर्म होना चाहिए द्य इसलिए प्रत्येक व्यक्ति के मन में कुछ न कुछ लगता ही रहता है। मजेदार बात यह है कि व्यक्ति का लगना अलग–अलग होता है। 'अ–लग' अर्थात् जो न लगे। लगता है पर नहीं लगता, यह भी कोई तुक की बात हुई? तुक की बात तब होती जब लगना 'अलग' लगना न होता।

लेखक का विचार पक्ष लोकजन से गुजरता है, इसलिए लेखक कुछ भी चर्चा करे लेकिन अर्थ तक पहुँचते–पहुँचते वह सामान्य धरातल पर आ जाते है। लेखक के लिए सुख–दुःख दोनों जरुरी है अर्थात ह्रदय के भीतर जलने वाली विरहाग्नि ने उसे किसी काम का नहीं छोड़ा। हे भगवान, तुम ऐसा कुछ नहीं कर सकते कि सारे गाँव के समान इस बालिका को भी चंद्रमा उतना ही शीतल लगे जितना औरों को लगता है! अर्थात् विरहिणी की दारूण–व्यथा अब सब के चित्त की सामान्य अनुभूति के साथ ताल मिलाकर चलने लगी। पागल का 'लगना' एक का लगना होता है, कवि का लगना सबको लगने लगता है। बात उलट कर कही जाय तो इस प्रकार होगी – जिसका लगना सबको लगे वह कवि है, जिसका लगना सिर्फ उसे ही लगे, औरों को नहीं, वह पागल। लगने–लगने में भी भेद है। जो सबको लगे, वह अर्थ है, जो एक को ही लगे, वह अनर्थ है। अर्थ सामाजिक होता है।

लेखक का लोक पक्षीय रूप तब और महत्वपूर्ण हो जाता है जब वह मिथक, अन्धविश्वास के साथ लोकविश्वास की बात करता है ऐसे में लेखक का विचार है कि देवदारु नाम केवल नाम ही नहीं है। मैंने अपने गाँव के एक महान भूत–भगावन ओझा को देवदारु की लकड़ी से भूत भगाते देखा है। "मन की सारी भ्रांति को दूर करने वाले देवदारु

तुम्हें देखकर मन श्रद्धा से जी भर जाता है, वह अकारण नहीं है। तुम भूत भगवान हो, तुम वहम–मिटावन हो, तुम भ्रांति नसावन हो। तुम्हें दीर्घकाल से जानता था पर पहचानता नहीं था, अब पहचान भी रहा हूँ। तुम देवता के दुलारे हो महादेव के प्यारे हो, तुम धन्य हो।'

जीवन में संघर्ष के मध्य सौंदर्य को देखना लेखक का अतिरिक्त दायित्वबोध है, इसे समझने के लिए शास्त्र को छोडकर लोक की तरफ रूचि पैदा करनी होगी, तभी पेड़, पौधों, जंगल, पर्वत में जीवन को देखा जा सकता है लेखक लिखता है कि 'तुम्हारे करिश्में मुझे मालूम हैं, मुझसे तुम क्या छिपा सकते हो – 'मों ते दुरैहौ कहा सजनी निहुरे–निहुरे कहुँ ऊँट की चोरी!' हजारों वर्ष के उतार–चढ़ाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है।'

5.5.2 भाव पक्ष

आचार्य शुक्ल की लोकमंगल की स्थापना को खारिज करते हुए तुलसी की अपेक्षा लोकवादी कबीर को आदर्श बनाने वाले महान निबंधकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबंध देवदारु का भाव पक्ष उनके अन्य निबंधों की तरह ही लोक सौंदर्य से ओतप्रोत है।

देवदारु निबंध में भी लेखक ने देवदारु पेड़ के माध्यम से भारतीय समाज के अनेक पक्षों को रखने की कोशिश की है। लेखक देवदारु की महता और उसके चरित्र वर्णन में सर्व प्रथम शंकर और उनके तांडव का जिक्र करते हैं। लेखक तुक और लय के साथ छंद और अर्थ की बात भी बार.बार करता है? भारतीय समाज व्यवस्था में शिव लोक जीवन के देवता रहे हैं और उनका चरित्र अनगढ़ समाज के लिए सर्वाधिक उपयोगी भी है। ऐसे में देवदारु और शंकर का उल्लेख का भाव यह है कि देवदारु और शंकर की अहमियत लोकरंजक रूप में अधिक महत्वपूर्ण है।

देवदारु की महता और प्रासंगिकता के सन्दर्भ को लेखक कालिदास और उनकी कविता से जोड़ कर देखता है। यहाँ भी लेखक छंद और अर्थ के मध्य जीवन की व्यापकता को पहचानने की बात करता है। बिहारी द्वारा निरुपित विरहणी का दर्द तब सामाजिक हो जाता है जब विरहणी के विरह को बढ़ाने वाले उपमान विरहणी का साथ देने लगे। यहाँ लेखक का यह भाव है कि जीवन सिर्फ विरह से जीना संभव नहीं है जैसे देवदारु पहाड़ों पर रहकर भी शंकर को योग साधना की जगह देता है और कवियों के दिल में जीवन की संघर्ष को समझने में मदद करता है।

लेखक अपने अन्य निबंधों की तरह इस निबंध में भी आलोचक को दूर रखता है और जीवन की निर्ममता के मध्य एक मिठास उत्पन्न करता है। इसलिए लोकजीवन में यही देवदारु की छड़ी लोगो के भूत भगाने में भी काम आता है। यद्यपि लेखक ने पंडित के चालाकी को सबसे पहले रेखांकित किया है लेकिन लोक विश्वास का अपना अलग मौखिक इतिहास है।

समग्रतः लेखकीय सामाजिक सांस्कृतिक बोध के भीतर लोकपक्षीय स्वरूप स्पष्ट दिखाई देता है, लेखक के लिए देवदारु एक माध्यम है जबकि उसका उद्देश्य मनुष्य जीवन में मानवता की स्थापना ही है।

5.6 लेखकीय अभिव्यक्ति

हिंदी साहित्य इतिहास के मूल्याकंन के सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदी अपने–अपने योगदान के हिसाब से हिंदी साहित्य में उल्लेखनीय कार्य कर रहे थे। दोनों ही साहित्य के क्षेत्र मील का पत्थर हैं। दोनों की मौजूदगी हिंदी साहित्य के लिए

अपरिहार्य है। इस इकाई में द्विवेदी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व के साथ लेखकीय पक्षधरता पर भी बात होगी।

द्विवेदी जी का जन्म 1907 ई. में उत्तरप्रदेश के बलिया जिले के एक गाँव में हुआ था। माता का नाम ज्योतिष्मती और पिता का नाम अनमोल द्विवेदी था। द्विवेदी जी अनेक भाषाओं के जानकर थे। इन्होने इतिहास लेखन से लेकर निबंध, उपन्यास व अन्य रचनाये भी की हैं। निबंधों में उल्लेखनीय योगदान के लिए इन्हें 1973 में आलोक पर्व निबंध संग्रह के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। द्विवेदी जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

इनकी कुछ महत्वपूर्ण कृतियाँ निम्नलिखित है :

- हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास
- हिन्दी साहित्य की भूमिका,
- मध्यदकालीन बोध का स्व रूप
- विचार–प्रवाह ,
- कल्पतरु
- गतिशील चिंतन
- साहित्य सहचर
- नाखून क्यों बढ़ते हैं
- अशोक के फूल
- कल्प लता
- विचार और वितर्क
- विचार–प्रवाह
- कुटज
- आलोक पर्व
- विश के दन्त
- कल्पतरु

लेखक के सन्दर्भ में डॉ सुबोध कुमार सिंह ने उचित ही कहा है कि – 'आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भारतीय मनीषा के प्रतीक और साहित्य एवं संस्कृति के अप्रतिम व्याख्याकार माने जाते हैं और उनकी मूल निष्ठा भारत की पुरानी संस्कृति में है लेकिन उनकी रचनाओं में आधुनिकता के साथ भी आश्चर्यजनक सामंजस्य पाया जाता है। आचार्य द्विवेदी को उनके निबंधों के लिए विशेष ख्याति मिली। निबंधों में विषयानुसार शैली का प्रयोग करने में इन्हें अद्‌भुत क्षमता प्राप्त है। तत्सम शब्दों के साथ ठेठ ग्रामीण जीवन के शब्दों का सार्थक प्रयोग इनकी शैली का प्रमुख गुण रहा है।' साधारण विषयों का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन और विश्लेषण–विवेचन उनकी निबंधकला का विशिष्ट व मौलिक गुण है।

आचार्य द्विवेदी जी आधुनिक हिंदी साहित्य के बहुमुखी व्यक्तित्व के स्वामी हैं। उनके समस्त निबंध साहित्य का चिंतन और सृजन मानव केंद्रित ही रहा है । उनका मानना है कि "मनुष्य ही साहित्य का लक्ष्य है जिस कृति से यह उद्देश्य सिद्ध नहीं होता, वह वाग्जाल है।"

सांस्कृतिक समझ के साथ द्विवेदी जी ललित निबंधों की एक नई परम्परा की शुरुआत करते हैं, इनमें धर्म, संस्कृति और साहित्य को निरुपित किया गया है। 'क्या आपने मेरी

रचना पढ़ी', 'आम फिर बौरा गए', 'बसंत आ गया', 'नाखून क्यों बढ़ते है, 'अशोक के फूल', 'शिरीष के फूल', 'कुटज', इत्यादि इनके ललित निबंध है। देवदारु भी उसी में से एक ललित निबंध है।

द्विवेदी जी की भाषा–शैली के बारे में डॉ सुबोध ने कहा है कि – 'निबंधों में प्रयुक्त भाषा और विविधता से युक्त शैली भी आपके लेखन की विशेषता है । भाषा के अंतर्गत भारतीय भाषाओं एवं बोलियों के अतिरिक्त संस्कृत एसं विदेशी भाषाओं का भी प्रयोग प्रभावशाली ढंग से किया गया है– "परन्तु वे स्वभाव से फक्कड़ थे' साथ ही' विषय, भाषा, शैली, चिंतन और अनुभूति सभी दृष्टियों से आचार्य जी का निबंध साहित्य उनके समकालीन एवं पूर्ववर्ती निबंध लेखकों के लिए अनुकरणीय तथा प्रेरणा प्रदान करने का समृद्ध भण्डार है– "इन निबंधों में आशा, विश्वास, राग–विराग, धारणा, मान्यता, कल्पना–अनुभूति, आदर्श, यथार्थ, विलास–विनोद, कला, विद्या आदि की अभिव्यक्ति अत्यन्त गहनता, तीव्रता एवं सजगता के साथ हुई है।'

बोध प्रश्न

14. लेखक को किस रचना के लिए साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था।

    क) आलोक पर्व   ख) अशोक के फूल

    ग) कुटज   घ) इनमे से कोई नहीं

15. क्या द्विवेदी जी ने इतिहास लेखन भी किया है?

    क) नहीं   ख) हाँ

5.7 संरचना शिल्प

इस इकाई के अंतर्गत 'देवदारु' नामक निबंध के संरचना शिल्प पर बात करेंगे। किसी भी रचना के दो भाग होते हैं एक भाग भावपक्ष से संबंधित होता है, दूसरा भाग शिल्पपक्ष से सम्बंधित। संरचना शिल्प के अंतर्गत भाषा और शैली पर विचार किया जाएगा। यह सर्वविदित है कि भाषा विचारों के आदान–प्रदान का सबसे सशक्त माध्यम होती है, ऐसे में किसी रचना की भाषा ही पाठक तक पहुँचने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभातीहै।

5.7.1 भाषा

आचार्य द्विवेदी जी की भाषा के सन्दर्भ में यह बात ठीक कहा गया है कि 'द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव और विषय के अनुसार भाषा का चयनित प्रयोग किया है। 'उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं – (1) प्राँजल व्यावहारिक भाषा, (2) संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा। प्रथम रूप द्विवेदी जी के सामान्य निबंधों में मिलता है। इस प्रकार की भाषा में उर्दू और अंग्रेज़ी के शब्दों का भी समावेश हुआ है। द्वितीय शैली उपन्यासों और सैद्धांतिक आलोचना के क्रम में परिलक्षित होती है। द्विवेदी जी की विषय प्रतिपादन की शैली अध्यापकीय है। शास्त्रीय भाषा रचने के दौरान भी प्रवाह खण्डित नहीं होता।'

देवदारु निबंध में भी लेखिकीय पांडित्य का दर्शन किया जा सकता है – 'जिस आचार्य ने पतिपाटीविहित निष्टजनानुमोदित 'सज्जा' को 'छाया' नाम दिया था वह जरूर इस पेड़ की शोभा से प्रभावित हुआ था।' 'अपुष्पा फलवंतो ये'। देवदारु चूक गया, 'वनस्पति' की मर्यादा से वंचित रह गया।'

साथ ही उनकी भाषा में लोक की छौक भी देखा जा सकता है – 'अगर यह न होता तो शिव का तांडव बेमेल धमा–चौकड़ी और लस्टम–पस्टम उछल–कूद के सिवा और कुछ न होता।' वे आगे लिखते है कि – 'प्रत्येक व्यक्ति के मन में कुछ न कुछ लगता

ही रहता है। मजेदार बात यह है कि व्यक्ति का लगना अलग–अलग होता है। 'अ–लग' अर्थात् जो न लगे। लगता है पर नहीं लगता, यह भी कोई तुक की बात हुई? तुक की बात तब होती जब लगना 'अलग' लगना न होता। इसीलिए कहता हूँ कि तुक अर्थ में होता है।'

निबंध की पठनीयता बनी रहे ऐसे में लेखक बीच – बीच में कवि, कविता या कोई ऐसा प्रसंग आ जाता है जिससे रूचि बनी रहे 'हाँ ही बौरी बिरह बस के बौरौ सबगाँव'। 'लगालगी लोचन करें, नाहक मन बँध जाय।' नाहक अर्थात् बेमतलब, निरर्थक।'

'बात यह है कि जब में कहता हूँ कि देवदारु सुंदर है तो सुनने वाले सुंदर का एक सामान्य अर्थ ही लेते हैं। हजार तरह के सुंदर पदार्थों में रहने वाला एक सामान्य सौंदर्य–धर्म। सौंदर्य का कौन–सा विशिष्ट रूप मेरे हृदय में उल्लास तरंगित कर रहा है यह बात बस, मैं ही जानता हूँ। अगर मुझमें इस बात को कहने की शक्ति नहीं हुई तो यह गूँगे का गुड़ बनी रह जाएगी।'

भाषा की दृष्टि से द्विवेदी जी के निबंध सामान्य पाठक के अभिरुचि के अनुकूल नहीं है, इनकी भाषा भी शुक्ल जी की भाषा की तरह बहुत जगह जटिल हो जाता है, लेकिन विश्वविद्यालय में पठन–पाठन के लिए आचार्य द्विवेदी की भाषा ठीक है।

5.7.2 शैली

द्विवेदी जी ने मुख्यतः चार शैलियों का प्रयोग अपने निबंध लेखन में किया है। इनकी शैली की खास बात यह है कि विषय के निष्कर्ष पर पाठक को पहुँचने के लिए अतिरिक्त ज्ञानकोष जरुरी है।

सैद्धांतिक शैली द्विवेदी जी के विचारात्मक तथा आलोचनात्मक निबंधों में अधिक मिलता है। यह शैली द्विवेदी जी की प्रतिनिधि शैली है। इस शैली की भाषा संस्कृत प्रधान और पांडित्य पूर्ण है।

कालिदास ने बताया है कि उन्होंने इस प्रयोजनातीत (निष्प्रयोजन तो कैसे कहें) समाधि के लिए देवदारु–द्रुम के नीचे वेदिका बनायी थी। शायद इसलिए कि देवदारु भी अर्थातीत छंद है – प्राणों का उल्लासनर्तन, जड़शक्ति के द्वारा आकर्षण को पराभूत करके विपुल–व्योम–मंडल में विहार करने का अर्थातीत आनंद!

कहते हैं, शिव ने जब उल्लासतिरेक में उद्दाम–नर्तन किया था तो उनके शिष्य तंडु मुनि ने उसे याद कर लिया था। उन्होंने जिस नृत्य का प्रवर्तन किया उसे 'तांडव' कहा जाता है। 'तांडव' अर्थात् 'तंडु' मुनि द्वारा प्रवर्तित 'रस भाव–विवर्जित' नृत्य! रस भी अर्थ है, भाव भी अर्थ है, परंतु तांडव ऐसा नाच है, जिसमें रस भी नहीं। भाव भी नहीं नाचनेवाले का कोई उद्देश्य नही, मतलब नहीं, 'अर्थ' नहीं। केवल जड़ता के द्वारा आकर्षण को छिन्न करके एकमात्र चौतन्य की अनुभूति का उल्लास! यह 'एकमात्र' लक्ष्य ही उसमें छंद भरता है, इसी से उसमें ताल पर नियंत्रण बना रहता है। एकाग्रीभाव छंद की आत्मा है।

वर्णनात्मक या विवरणात्मक शैली अत्यंत स्वाभाविक और रुचि पैदा करने वाला होता है। इस शैली में तद्‌भव तत्सम और उर्दू के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे :

''तुक वह है जो देवदारु की गगनचुंबी शिखा और समाधिस्थ महादेव की निवात–निष्कंप प्रदीप की ऊर्ध्वगामिनी ज्योति में है! अर्थात् तुक अर्थ में रहता है ध्वनि–साम्य केतुक में कुछ न कुछ अर्थचारुता होनी चाहिए। ध्वनिसाम्य साधन है, तुक अर्थ का धर्म होना चाहिए। मगर कहना खतरे से खाली नहीं है। किसी नये आलोचक ने अर्थ को लय की वकालत की है। मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि सारी पंडित–मंडली उस गरीब पर बरस पड़ी है। अगर तुक अर्थ में मिल सकता है तो लय क्यों नहीं मिल सकता। मेरे अंतर्यामी

कहते हैं कि तुक तो अर्थ में नहीं रहता है लय नहीं रहता। बहुत से लोग अंतर की आवाज को आँख मूँदकर मान लेते हैं। मैं नहीं मान पाता। आँखें खोलने पर भी यदि अंतर की आवाज ठीक जँचे तो मान लेना चाहिए। क्योंकि उस अवस्था में भीतर और बाहर का तुक मिल जाता है। शिवजी ने अंतर और बाहर का तुक मिलाने के लिए ही तो देवदारु को चुना था।"

आचार्य द्विवेदी जी के निबंधों में व्यंग्यात्मक शैली का बहुत ही सफल और सुंदर प्रयोग हुआ है। इस शैली में भाषा चलती हुई तथा उर्दू, फारसी आदि के शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरण के लिए यह गद्यांश देखिए :

"हमारे गाँव में एक पंडितजी थे। अपने को महाविद्वान् मानते थे। विद्या उनके मुँह से फचाफच निकला करती थी। शास्त्रार्थ में वे बड़े–बड़े दिग्गजों को हरा देते थे।विद्या के जोर से नहीं, फचफचाहट के आघात से। प्रतिपक्षी मुँह पोछता हुआ भागता था। अगर कुछ कैड़े का हुआ तो दैहिक–बल से जय–पराजय का निश्चय होता था। मेरे सामनेही एक बार खासी गुत्थमगुत्थी हो गई। गाँव–जवार के लोगों को पंडितजी की विद्या पर भरोसा नहीं था पर उनकी फचाफच वाणी और – भीमकाया पर विश्वास अवश्य था।शास्त्रार्थ में पंडितजी कभी हारे नहीं। कम लोग जानते हैं कि शास्त्रार्थ में कोई हारता नहीं, हराया जाता है! पंडितजी के यजमान जम के उनके पीछे लाठी लेकर खड़े हो जाते थे तो उनकी विजय निश्चित हो जाती थी।"

द्विवेदी जी ने विषय को विस्तारपूर्वक समझाने के लिए व्यास शैली को अपनाया है। व्यास शैली के माध्यम से विषय का प्रतिपादन व्याख्यात्मक ढंग से किया जाता है और अंत में उसका सार दे दिया जाता है जैसे – 'बात यह है कि जब मैं कहता हूँ कि देवदारु सुंदर है तो सुननेवाले सुंदर का एक सामान्य अर्थ ही लेते हैं। हजार तरह के सुंदर पदार्थों में रहने वाला एक सामान्यसौंदर्य–धर्म। सौंदर्य का कौन–सा विशिष्ट रूप मेरे हृदय में उल्लास तरंगित कर रहा है यह बात बस, मैं ही जानता हूँ। अगर मुझमें इस बात को कहने की शक्ति नहीं हुई तो यह गूँगे का गुड़ बनी रह जाएगी। जिसमें शक्ति होती है, वह कवि कहलाता है।'

5.8 मूल्यांकन

इस इकाई के अंतर्गत हम निबंध का प्रतिपाद्य और शीर्षक की सार्थकता पर विचार करेंगे।

5.8.1 निबंध का प्रतिपाद्य

यह निबंध एक ऐसे विषय और परिवेश पर आधारित है, जो स्थान की दृष्टि से पर्वतीय इलाका है। लेखक देवदारु के पेड़ में जीवन की विविधताएँ देखता है। वह पेड़ एक पेड़ न होकर पूरा समाज है।

इस निबंध में देवदारु अपने सौदर्य बोध के कारण देवता तथा मनुष्य के आकर्षण का कारण रहा है। यह उसकी सुन्दरता और विशालता ही है कि शिव अपनी साधना, कालिदास अपनी रचना विधान और अन्य कवियों की कविताएँ देवदारु से प्रभावित हैं। लेखक पेड़ की एक–एक विशेषताओं के साथ उसके इस धरती पर होने की महिमा का भी उल्लेख किया है। लेखक ने शिव तांडव से लेकर तुक, लय छंद, अर्थ के साथ देवदारु के होने या लगने और उसके लोकपक्षीय स्वरूप का भी उल्लेख किया है। एक तरफ देवदारु का सौदर्य और दूसरी तरफ पहाड़ों की चोटियों पर बने रहने का जीवन संघर्ष अर्थात मनुष्य जीवन की तरह ही देवदारु दिनरात संघर्ष करता हुआ नजर आता है, इसलिए देवदारु लेखक के लिए अर्थवान भी है और सामाजिक भी।

लेखक ने अनेक मिथकीय संदर्भो के साथ देवदारु को लोकविश्वास और अन्धविश्वास से भी जोड़कर देखा है, पंडित की छड़ी से भूत भगाने का प्रसंग या भूत को माफी माँगने पर मजबूर कर देने वाले प्रसंग। अंत में लेखक मनुष्य जीवन की प्राथमिकता और देवदारु के लोकव्यवहार को सर्वोपरि मानते हुए उससे सीखने और उसके निर्मम संघर्ष को जीवन में उतारने की बात करता है।

5.8.2 शीर्षक

शीर्षक की सार्थकता या उचित शीर्षक के सन्दर्भ में इतना ही कहा जा सकता है कि इस निबंध का शीर्षक देवदारु और मनुष्य जीवन या देवदारु की सामाजिक भूमिका रख सकते हैं लेकिन देवदारु शब्द के बिना इस निबंध का शीर्षक देना मुश्किल है। अतः देवदारु शीर्षक इस निबंध का उचित शीर्षक है।

5.9 सारांश

इस इकाई लेखन को पढने के बाद आप कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल सकते हैं।

- देवदारु निबंध के मूल पाठ का वाचन कर सकते हैं।
- निबंध का सारांश आसानी से समझा जा सकता है।
- लेखकीय अभिव्यक्ति के साथ उनका सामान्य जीवन.परिचय व लेखन कला को समझा जा सकता है।
- देवदारु निबंध की संरचना शिल्प, अंतर्वस्तु व उसका मूल्यांकन किया जा सकता है।
- सन्दर्भ सहित व्याख्या से निबंध के कुछ महत्वपूर्ण अंशों का आप अपने से व्याख्या कर सकते हैं, यह परीक्षा की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है।
- लेखकीय अभिव्यक्ति को बारीकी से समझा जा सकता है।
- संरचना शिल्प के अंतर्गत भाषा दृशैली का अध्ययन किया गया है।
- अंतर्वस्तु के अंतर्गत रचना और लेखक के भाव और विचार का अध्ययन किया गया है।
- देवदारु को जीवन से जोड़कर भी समझा जा सकता है।
- कुछ प्रश्न स्वयं भी तैयार किए जा सकते हैं इत्यादि।

5.10 बोध प्रश्नों /अभ्यासों के उत्तर

1.	ख	2.	घ	3.	क	4.	ग
5.	ख	6.	क	7.	ग	8.	क
9.	ख	10.	क	11.	क	12.	ग
13.	क	14.	क	15.	ख		

इकाई 6 : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है
(विद्यानिवास मिश्र)

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 निबंध का वाचन : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है

6.3 निबंध का सार

6.4 संदर्भ सहित व्याख्या

6.5 अंतर्वस्तु

 6.5.1 विचार पक्ष

 6.5.2 भाव पक्ष

6.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

6.7 संरचना शिल्प

 6.7.1 भाषा

 6.7.2 शैली

6.8 प्रतिपाद्य

6.9 सारांश

6.10 शब्दावली

6.11 उपयोगी पुस्तकें

6.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम की मुकुट भीग रहा है।' का अध्ययन करने जा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या कर सकते हैं;
- निबंध में व्यक्त विचारों और भावों का विवेचन कर सकते हैं;
- निबंध में व्यक्त लेखकीय व्यक्तित्व की विशेषताएँ बता सकते हैं;
- निबंध की भाषा और शैलीगत विशेषताएँ बता सकते हैं; और
- निबंध के प्रतिपाद्य का विवेचन कर सकते हैं।

6.1 प्रस्तावना

यह इस खंड की अंतिम इकाई है। अब तक आप चार निबंध पढ़ चुके हैं। आपने निबंध के स्वरूप और हिंदी निबंधों के विकास का भी अध्ययन किया है। आपने निबंध के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या का अध्ययन भी किया है और विभिन्न तत्वों के आधार पर उनके विश्लेषण का भी। इन इकाइयों के अध्ययन से आप स्वयं भी अब निबंध का विश्लेषण कर सकते हैं।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' डॉ. विद्यानिवास मिश्र की रचना है। डॉ. मिश्र हिंदी के प्रसिद्ध निबंधकार और आलोचक हैं। आपने ललित निबंध के क्षेत्र में द्विवेदीजी की परम्परा को आगे बढ़ाया और उसे समृद्ध किया। डॉ. विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य तथा भाषा के मर्मज्ञ विद्वान हैं, साथ ही भारतीय लोकजीवन और लोक संस्कृति को उन्होंने गहराई से आत्मसात किया है। इन दोनों पक्षों के कारण उनके निबंधों में जहाँ एक ओर विद्वत्ता और व्यापक ज्ञान का परिचय मिलता है, वहीं लोकतत्वों के कारण निबंध में एक नया पक्ष जुड़ गया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का जन्म 28 जनवरी, 1926 को तथा मृत्यु 14 फरवरी 2005 को हुआ था। आप विभिन्न शिक्षण संस्थाओं में लम्बे समय तक अध्यापन कार्य करते रहे। आपने कई ग्रंथों की रचना की है। आपके प्रमुख निबंध संग्रह हैं, तुम चंदन हम पानी', 'तमाल के झरोखे से, 'संचारिणी', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'आंगन का पंछी' और 'बनजारा मन', 'परंपरा बंधन नहीं, 'लागौ रंग हरी' आदि।

6.2 निबंध का वाचन : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है?

महीनों से मन बेहद–बेहद उदास है। उदासी की कोई खास वजह नहीं, कुछ तबीयत ढीली, कुछ आसपास के तनाव और कुछ उनसे टूटने का डर, खुले आकाश के नीचे भी खुलकर साँस लेने की जगह की कमी, जिस काम में लगकर मुक्ति पाना चाहता हूँ, उस काम में हजार बाधाएँ कुल ले–देकर उदासी के लिए इतनी बड़ी चीज नहीं बनती। फिर भी रात–रात नींद नहीं आती। दिन ऐसे बीतते हैं जैसे भूतों के सपनों की एक रील पर दूसरी रील चढ़ा दी गयी हो और भूतों की आकृतियाँ और डरावनी हो गयी हों। इसलिए कभी–कभी तो बड़ी–से–बड़ी परेशान करने वाली बात हो जाती है और कुछ भी परेशानी नहीं होती, उल्टे ऐसा लगता है, जो हुआ, एक सहज क्रम में हुआ, न होना ही कुछ अटपटा होता और कभी–कभी बहुत मामूली–सी बात भी भयंकर चिंता का कारण बन जाती है।

अभी दो–तीन रात पहले मेरे एक साथी संगीत का कार्यक्रम सुनने के लिए नौबजे रात गये, साथ में जाने के लिए मेरे एक **चिरंजीव** ने और मेरी एक मेहमान, महानगरीय वातावरण में पली कन्या ने अनुमति माँगी। शहरों की, आजकल की असुरक्षित स्थिति का ध्यान करके इन दोनों को जाने तो नहीं देना चाहता था, पर लड़कों का मन भी तो रखना होता है, कह दिया एक–डेढ़ घंटे सुनकर चले आना।

रात के बारह बजे। लोग नहीं लौटे। गृहिणी बहुत **उद्विग्न** हुई, झल्लायीं साथ में गये मित्र पर नाराज होने के लिए **संकल्प बोलने** लगीं। इतने में जोर की बारिश आ गयी। छत से बिस्तर समेटकर कमरे में आया। गृहिणी को समझाया, बारिश थमेगी, आ जायेंगे, संगीत में मन लग जाता है, तो उठने की तबीयत नहीं होती, तुम सोओ, ऐसे बच्चे नहीं है । पत्नी किसी तरह शांत होकर सो गई, पर मैं अकुला उठा, बारिश निकल गयी, ये लोग नहीं आये। बरामदे में कुर्सी लगाकर राह जोहने लगा। दूर कोई भी आहट होती, तो उदग्र होकर फाटक की ओर देखने लगता। रह–रहकर बिजली चमक जाती थी और सड़क **दिप** जाती थी। पर सामने की सड़क पर कोई रिक्शा नहीं, कोई **चिरई** का पूत नहीं। एकाएक कई दिनों से मन में उमड़ती–घुमड़ती पंक्तियाँ गूँज गयीं :

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा,

लछिमन के पटुकवा

मोरी सीता के भीजै सेनुरवा

त राम घर लौटहिं।"

(मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, मेरे लखन का पटुका (दुपट्टा) भीग रहा होगा, मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते)

बचपन में दादी –नानी जाँते पर यह गीत गातीं, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्ल होकर गाती और लौटने पर कहतीं– मेरे लाल को कैसे बनवास मिला था'। जब मुझे दादी–नानी की इस आकुलता पर हँसी भी आती, गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हाँ, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा–से–बड़ा संकट झेल लेगी बार–बार मन को समझाने की कोशिश करता, लड़की दिल्ली विश्वविद्यालय के एक कॉलेज में पढ़ाती है, लड़का संकट–बोध की कविता लिखता है, पर लड़की का खयाल आते ही दुश्चिंता होती, गली में जाने कैसे तत्व रहते हैं! लौटते समय कहीं कुछ हो न गया हो और अपने भीतर अनायास अपराधी होने का भाव जाग जाता, मुझे रोकना चाहिए था या कोई व्यवस्था करनी चाहिए थी, परायो लड़की (और लड़की तो हर एक परायी होती है, की मुटरी की तरह घाट पर खुले आकाश में कितने दिन फहरायेगी, अंत में उसे गृहिणी बनने जाना हो है) घर आयी, कहीं कुछ हो न जाए!

मन फिर घूम गया कौसल्या की ओर, लाखों करोड़ों कौसल्यों की ओर, और लाखों–करोड़ों कौसल्याओं के द्वारा मुखंरित एक **अनाम–अरूप** कौसल्या की ओर, इन सबके राम वन में निर्वासित हैं, पर क्या बात है कि मुकुट अभी भी उनके माथे पर बँधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है? क्या बात है कि आज भी काशी की रामलीला आरम्भ होने के पूर्व एक निश्चित मुहूर्त में मुकुट की ही पूजा सबसे पहले की जाती है? क्या बात है कि तुलसीदास ने **'कानन'** को **'सत अवध समाना'** कहा और चित्रकूट में ही पहुँचने पर उन्हें **'कलि की कुटिल कुचाल'** दीख पड़ी? क्या बात है कि आज भी वनवासी धुनर्धर राम ही लोकमानस के राजा राम बने हुए हैं? कहीं–न–कहीं इन सबके बीच एक संगति होनी चाहिए।

अभिषेक की बात चली, मन में अभिषेक हो गया और मन में राम के साथ राम का मुकुट प्रतिष्ठित हो गया। मन में प्रतिष्ठित हुआ, इसलिए राम ने राजकीय वेश उतारा, राजकीय रथ से उतरे, राजकीय भोग का परिहार किया, पर मुकुट तो लोगों के मन में था, कौसल्या के मातृ–स्नेह में था, वह कैसे उतरता, वह मस्तक पर विराजमान रहा और राम भीगें तो भीगें।

शब्दावली

चिरंजीवः पुत्र उद्विग्नः परेशान, बेचैन, **उदयः** सिर उचकाकर, दिपः प्रकाशित, रोशन, चिरई चिड़िया, **संकल्प बोलनाः** किसी मनचाही काम के पूरा हो जाने की कामना करते हुए उसके पूरा होने पर दान–दक्षिणा आदि करने की मनौती या निश्चय करना, **जाँतेः चक्की मुटरी छोटी गठरीः** विह्लः दुख से विकल। **अनाम–अरूपः** जिसका न कोई नाम हो, न कोई रूप अर्थात् व्यक्ति विशेष के रूप में जिसे न पहचाना जाय, सामान्य, अमूर्त, कानन जंगल, **सत अवध समानाः** सौ अयोध्याओं के समान, **कलि की कुटिल कुचालः** कलियुग की बुरी चाल, **अभिषेकः** राजा का सिंहासन पर बैठना अर्थात् राजा का पद स्वीकार करना, **परिहारः** त्याग।

मुकुट न भींगने पाये, इसकी चिंता बनी रही। राजा राम के साथ उनके अंगरक्षक लक्ष्मण का कमर–बंद दुपट्टा भी (प्रहरी की जागरूकता का उपलक्षण) न भींगने पाये और अखंड सौभाग्यवती सीता की माँग का सिंदूर न भींगने पाये, सीता भले ही भींग जायें। राम तो

वन से लौट आये, सीता को लक्ष्मण फिर निर्वासित कर आये, पर लोकमानस में राम की वनयात्रा अभी नहीं रुकी। मुकुट, दुपट्टे और सिंदूर के भीगने की आशंका अभी भी साल रही है। कितनी अयोध्याएँ बसीं, उजड़ीं पर निर्वासित राम की असली राजधानी, जंगल का रास्ता अपने काँटों–कुशों, कंकड़ो–पत्थरों की वैसी ही ताजा चुभन लिए हुए बरकरार है, क्योंकि जिनका आसरा साधारण गँवार आदमी भी लगा सकता है, वे राम तो सदा निर्वासित ही रहेंगे और उनके राजपाट को संभालने वाले भरत अयोध्या के समीप रहते हुए भी उनसे भी अधिक निर्वासित रहेंगे, निर्वासित ही नहीं, बल्कि एक कालकोठरी में बंद **जलावतनी** की तरह दिन बिताएँगे।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

1. निबंध के उपर्युक्त अंश में लेखक की उद्विग्नता का कारण क्या है? एक वाक्य में उत्तर लिखिए ।

   ....

   ....

2. ''मोरे राम के भीजै मुकुटवा'' लोकगीत का संदर्भ क्या है? एक वाक्य में लिखिए।

   ....

   ....

3. उपर्युक्त लोकगीत में अंतर्निहित दर्द को लेखक उस रात क्यों समझ सका। एक–दो वाक्यों में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

सोचते–सोचते लगा कि इसकी ही नहीं, पूरे विश्व की एक कौशल्या है जो हर बारिश में **बिसूर** रही है– 'मोरे राम के भीजै मुकुटवा' (मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा)। मेरी संतान, ऐश्वर्य की अधिकारिणी संतान वन में घूम रही है, उसका मुकुट, उसका ऐश्वर्य भीग रहा है, मेरे राम कब घर लौटेंगे मेरे, राम के सेवक का दुपट्टा भीग रहा है, पहरुए का कमरबंद भीग रहा है, उसका जागरण भीग रहा है, मेरे राम की सहचारिणी सीता का सिंदूर भीग रहा है, उसका अखंड सौभाग्य भीग रहा है, मैं कैसे धीरज धरूँ? मनुष्य की इस सनातन नियति से एकदम आतंकित हो उठा, ऐश्वर्य और निर्वासन दोनों साथ–साथ चलते हैं। जिसे ऐश्वर्य सौंपा जाने को है, उसको निर्वासन पहले से बदा है। जिन लोगों के बीच रहता हूँ, वे सभी मंगल नाना के नाती हैं, वे 'मुद मंगल' में ही रहना चाहते हैं, मेरे जैसे आदमी को वे निराशावादी समझकर बिरादरी से बाहर ही रखते हैं, डर लगता रहता है कि कहीं उड़कर उन्हें भी दुःख न लग जाए, पर मै अशेष मंगलाकांक्षाओं के पीछे से झाँकती हुई **दुर्निवार शंकाकुल** आँखों में झाँकता हूँ, तो मंगल का सारा उत्साह फीका पड़ जाता है और बंदनवार, बंदनवार न दिखकर बटोरी हुई रस्सी की शक्ल में कुंडली मारे नागिन दिखती है, मंगल–घट औंधाई हुई अधफूटी **गगरी** दिखता है, उत्सव की रोशनी का तामझाम धुओं की गाँठों का अंबार दिखता है और मंगल–वाद्य डेरा उखाड़ने वाले अंतिम **कारबरदार** की उसाँस में बजकर एकबारगी बंद हो जाता है।

लागति अवध भयावह भारी,

मानहुँ कालराति अँधियारी।

घोर जंतु सम पुर नरनारी,
डरपहिं एकहि एक निहारी।
घर मसान परिजन जनु भूता,
सुत हित मीत मनहुँ जमदूता।
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाहीं,
सरित सरोवर देखि न जाहीं।'

जलावतनीः अपना देश त्यागकर विदेश में रहने वाला, निर्वासित, **उपलक्षण**ः संकेत, **सालना**ः पीड़ा देना, **आसरा**ः सहारा, आश्रय, बिसूरनाः रोन, **सहचारिणी**ः पत्नी, **सनातन नियति**ः सदा से चला आया निश्चित भाग्य चक्र, **दुर्निवार**ः जिसका निवारण करना कठिन हो, शंकाकुलः शंका से चिंतित, **गगरी**ः छोटा घड़ा, **कारबरदार**ः उठाने वाला, सेवक।

कैसे मंगलमय प्रभात की कल्पना थी और कैसी अँधेरी कालरात्रि आ गयी है? एक–दूसरे को देखने से डर लगता है। घर **मसान** हो गया है, अपने ही लोग भूत–प्रेत बन गये हैं, पेड़ सूख गये हैं, लताएँ कुम्हला गयी हैं। नदियों और सरोवरों को देखना भी दुस्सह हो गया है। केवल इसलिए कि जिसका ऐश्वर्य से अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख **समष्टि** का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। इसीलिए जब कीमत अदा कर ही दी गयी, तो उत्कर्ष कम–से–कम सुरक्षित रहे, यह चिंता स्वाभाविक हो जाती है। राम भीगें तो भीगें, राम के उत्कर्ष की कल्पना न भीगे, वह हर बारिश में हर दुर्दिन में सुरक्षित रहे। नर के रूप में लीला करने वाले नारायण निर्वासन की व्यवस्था झेलें, पर नर रूप में उनकी ईश्वरता का बोध दमकता रहे, पानी की बूँदों की झालर में उसकी दीप्ति छिपने न पाये। उस नारायण की सुख–सेज बने अनंत के अवतार लक्ष्मण भले ही भीगते रहें, उनका दुपट्टा, उनका **अहर्निशि** जागर न भीजे, **शेषी नारायण** के ऐश्वर्य का गौरव अनंत **शेष** के जागर–संकल्प से ही सुरक्षित हो सकेगा और इन दोनों का गौरव जगजननी **आद्याशक्ति** के अखण्ड सौभाग्य, **सीमंत** सिंदूर से रक्षित हो सकेगा. उस शक्ति का एकनिष्ठ प्रेम–पाकर राम का मुकुट है, क्योंकि राम का निर्वासन वस्तुतः सीता का दुहरा निर्वासन है। राम तो लौटकर राजा होते हैं, पर रानी होते ही सीता राजा राम द्वारा वन में निर्वासित कर दी जाती है। राम के साथ लक्ष्मण हैं, सीता है, सीता वन्य पशुओं से घिरी हुई विजन में सोचती हैं– प्रसव की पीड़ा हो

रही है, कौन इस वेला में सहारा देगा, कौन प्रसव के समय प्रकाश दिखलायेगा, कौन मुझे सँभालेगा, कौन जन्म के गीत गायेगा?

कोई गीत नहीं गाता। सीता जंगल की सूखी लकड़ी बीनती हैं, जलाकर **अँजोर करती** हैं और जुड़वाँ बच्चों का मुँह निहारती हैं। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छीटें पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है। पर इस निर्वासन में भी सीता का

* गोस्वामी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' के अयोध्या कांड से ये पंक्तियाँ ली गयी हैं। इनमें राम, लक्ष्मण और सीता के अयोध्या के वनगमन करने के बाद का दृश्य प्रस्तुत किया गया है। इनका भावार्थ हैः अयोध्या बड़ी डरावनी लग रही है। मानों अंधकारमयी कालरात्रि ही हो। नगर के नर–नारी भयानक जंतुओं के समान एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं। घर मानो श्मशान, परिवार के लोग मानो भूत–प्रेत और पुत्र हितैषी और मित्र मानो यमराज के दूत हैं। बागों में वृक्ष और बेलें कुम्हला रही हैं। नदी और तालाब ऐसे भयानक लगते हैं कि उनकी ओर देखा नहीं।

सौभाग्य अखण्डित है वह राम के मुकुट को तब भी प्रमाणित करता है, मुकुटधारी राम को निर्वासन से भी बड़ी व्यथा देता है और एक बार और अयोध्या जंगल बन जाती है, स्नेह की रसधार रेत बन जाती है, सब कुछ उलट–पलट जाता है, **भवभूति** के शब्दों में पहचान की बस एक निशानी बची रहती है, दूर ऊँचे खड़े तटस्थ पहाड़, राजमुकुट में जड़े हीरों की चमक के सैकड़ों शिखर, एकदम कठोर, तीखे और निर्मम :

पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरितां

विपर्यासं यातो घनविरलभावः क्षितिरुहाम्

बहोः कालाद् दृष्टं ह्यपरमिव मन्ये वनमिदं

निवेशः शैलानां तदिदमिति बुद्धिं द्रढयति।'

उत्तर रामचरित, नाटक से उद्धृत पंक्तियाँ इसका भावार्थ हैः पूर्वकाल में जहाँ निर्मल जल के झरने थे, सुंदर तटों वाली नदियां बहती थीं और वनस्पतियों तथा संपन्न पेड़ों से युक्त घने जंगल थे, अब वहाँ सब कुछ विपरीत हो गया है। अब यह बहुत समय से परिचित जंगल सर्वथा अपरिचित दिखाई देता है। केवल पर्वत शिखरों की जड़ स्थिति ही प्रमाण है कि यह वही वन है, अन्यथा सब कुछ बदल गया है।

राम का मुकुट इतना भारी हो उठता है कि राम उस बोझ से कराह उठते हैं और इस वेदना के चीत्कार में सीता के माथे का सिंदूर और दमक उठता है, सीता का **वर्चस्व** और प्रखर हो उठता है।

बोध प्रश्न

4. ''लागति अवध भयावह भारी'' आदि किस रचनाकार की पंक्तियाँ हैं।

   क) भवभूति ख) विद्यानिवास मिश्र

   ग) तुलसीदास घ) वाल्मीकि

5. आद्याशक्ति किसे कहा गया है।

   क) कौशल्या ख) दुर्गा

   ग) लक्ष्मी घ) सीता

6. सीता को दूसरी बार वनवास क्यों दिया जाता है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

कुर्सी पर पड़े–पड़े यह सब सोचते–सोचते चार बजने को आये, इतने में दरवाजे पर हल्की–सी दस्तक पड़ी, चिरंजीव निचली मंजिल से ऊपर नहीं चढ़े, सहमी हुई कृष्णा (मेरी मेहमान लड़की) बोली – दरवाजा खोलिए। आँखों में इतनी कातरता

मसानः श्मशान, **समष्टिः** समूहिक, **अहर्निशिः** दिन–रात, **शेषी नारायणः** शेष शायी विष्णु के लिए प्रयुक्त शब्द, **शेषः** शेषनाग, लक्ष्मण को इनका अवतार कहा गया है **आद्याशक्तिः** आदि शक्ति सीता, **सीमंतः** मांगः **विजनः** निर्जन स्थान, **अंजोर करनाः** प्रकाश करना, प्राधानः **भवभूतिः** संस्कृत के प्रख्यात नाटककार जिन्होंने महावीर चरितम्, मालती माधवम् और उत्तर रामचरितम, नाटकों की रचना की, **कातरताः** विकलता।

कि कुछ कहते नहीं बना, सिर्फ इतना कहा कि तुम लोगों को इसका क्या अंदाज होगा कि हम कितने परेशान रहे हैं। भोजन–दूध दूध धरा रह गया, किसी ने भी छुआ नहीं, मुँह ढाँपकर सोने का बहाना शुरू हुआ, मैं भी **स्वस्ति** की साँस लेकर बिस्तर पर। पड़ा, पर अर्धचेतन अवस्था में फिर जहाँ खोया हुआ था, वहीं लौट गया। अपने लड़के घर

लौट आये, बारिश से नहीं, संगीत से भीगकर, मेरी दादी–नानी के गीतों के राम, लखन और सीता अभी भी वन–वन भीग रहे हैं। तेज बारिश में पेड़ की छाया और दुःखद हो जाती है, पेड़ की हर पत्ती से टप–टप बूँदें पड़ने लगती हैं, तने पर टिकें, तो उसकी हर नस–नस से आप्लावित होकर बारिश पीठ गलाने लगती है। जाने कब से मेरे राम भीग रहे हैं और बादल हैं कि मूसलाधार ढरकाये चले जा रहे हैं, इतने में मन में एक चोर धीरे–से फुसफुसाता है, राम तुम्हारे कब से हुए, तुम, जिसकी बुनाहट पहचान में नहीं आती, जिसके व्यक्तित्व के ताने–बाने तार–तार होकर अलग हो गये हैं, तुम्हारे कहे जानेवाले कोई हो भी सकते हैं कि वह तुम कह रहे हो, मेरे राम! और चोर की बात सच लगती है, मन कितना बँटा हुआ है, मनचाही और अनचाही दोनों तरह की हजार चीजों में। दूसरे कुछ पतियायें भी, पर अपने ही भीतर परतीति नहीं होती कि मैं किसी का हूँ या कोई मेरा पर दूसरी ओर यह भी सोचता हूँ कि क्या बार–बार विचित्र–से अनमनेपन में अकारण चिंता किसी के लिए होती है,वह चिन्ता क्या पराये के लिए होती है, वह क्या कुछ भी अपना नहीं है? फिर इस अनमनेपन में ही क्या राम अपनाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाते आये हैं, क्या न–कुछ होना और न कुछ बनाना ही अपनाने की उनकी बढ़ी हुई शर्त नहीं है?

तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ? अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने संकरे–से–दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जगलों में **हिरा** गया हूँ। जानता हूँ, इन्हीं जंगलों के आसपास किसी टेकड़ी पर राम की पर्णकुटी है, पर इन उलझाने वाले शब्दों के अलावा मेरे पास कोई राह नहीं। शायद सामने उपस्थित अपने ही मनोराज्य के युवराज, अपने बचे–खुचे स्नेह के पात्र, अपने भविष्यत् के संकट की चिंता में राम के निर्वासन का जो ध्यान आ जाता है, उनसे भी अधिक एक बिजली से जगमगाते शहर में एक पढ़ी–लिखी चंद दिनों की मेहमान लड़की के एक रात कुछ देर से लौटने पर अकारण चिंता हो जाती है, उसमें सीता का ख्याल आ जाता है, वह राम के मुकुट या सीता के सिंदूर के भीगने की आशंका से जोड़े न जोड़े, आज की दरिद्र, अर्थहीन, उदासी को कुछ ऐसा अर्थ नहीं दे देता, जिससे जिंदगी ऊब से कुछ उबर सके?

और इतने में पूरब से हल्की **उजास** आती है और शहर के इस शोर भरे **बियावान** में चक्की के स्वर के साथ चढ़ती–उतरती **जंतसार गीति** हल्की–सी सिहरन पैदा कर जाती है।' 'मोरे राम के भीजे मुकट्वा' और अमचूर की तरह विश्वविद्यालयी जीवन की नीरसता में सूखा मन कुछ जरूर ऊपरी सतह पर ही सही भीगता नहीं, तो कुछ नम तो जरूर ही हो जाता है, और महीनों की उमड़ी–घुमड़ी उदासी बरसने–बरसने को आ जाती है बरस न पाये, यह अलग बात है (कुछ भीतर भाप हो, तब न बरसे), पर बरसने का यह भाव जिस ओर से आ रहा है, उधर राह होनी चाहिए। इतनी असंख्य कौसल्याओं के कंठ में बसी हुई जो एक अरूप ध्वनिमयी कौसल्या है, अपनी सृष्टि के संकट में उसके सतत् उत्कर्ष के लिए आकुल, उस कौसल्या की ओर, उस मानवीय संवेदना की ओर ही कहीं राह है, घास के नीचे दबी हुई। पर उस घास की महिमा अपरंपार है, उसे तो आज वन्य पशुओं का राजकीय संरक्षित क्षेत्र बनाया जा रहा है, नीचे ढकी हुई राह तो सैलानियों के घूमने के लिए, वन्य पशुओं के प्रदर्शन के लिए, फोटो खींचनेवालों की चमकती छवि यात्राओं के लिए बहुत ही रमणीक स्थली बनायी जा रही है। उस राह पर तुलसी और उनके मानस के नाप पर बड़े–बड़े तमाशे होंगे, फुलझड़ियाँ दगेंगी, सैर–सपाटे होंगे, पर वह राह की ही रह जायेगी, केवल चक्की का स्वर, श्रम का स्वर ढलती रात में भीगती रात में, अनसूया वात्सल्य का स्वर राह तलाशता रहेगा – किस ओर राम मुड़े होंगे, बारिश से बचने के लिए? किस ओर? किस ओर? बता दो सखी।

बोध प्रश्न

7. निबंध में वर्णित लक्ष्मण का दुपट्टा निम्नलिखित में से किस भाव का प्रतीक है।

   क) वीरता ख) जागरूकता

   ग) त्याग घ) सहनशीलता

8. इस निबंध में राम के किस रूप को प्रमुखता दी गयी है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

9. इस निबंध में कौशल्या के भाव लेखक की किस भावना से जुड़े हैं? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

   ....

   ....

स्वस्तिः शुभ, **आप्लावितः** डूबा हुआ, **पतियानाः** विश्वास करना, **परतीतिः** विश्वास, **हिरा गयाः** खो गया, **उजासः** प्रकाश, **वियाबानः** जंगल, **जतमार गीतिः** चक्की पीसते वक्त स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत।

6.3 निबंध का सार

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा हैं' आत्मपरक तथा ललित निबंध है। इस निबंध में निबंधकार के अतिरिक्त कुछ और भी सदस्य हैं जो उसे इस निबंध को लिखने की मानसिकता में पहुँचा देते हैं। वे सदस्य हैं – निबंधकार का पुत्र, निबंधकार की पत्नी तथा उनके घर पर मेहमान के रूप में महानगर दिल्ली से आई युवती कृष्णा जो वहाँ किसी कॉलेज में पढ़ाती है।

घटना इस प्रकार हुई कि निबंधकार के एक सुपुत्र और उनके घर मेहमान के रूप में राजधानी दिल्ली से आयी युवा अध्यापिका दोनों उनकी अनुमति से रात्रि में आयोजित एक संगीत समारोह में चले गये। उन्हें कहा गया था कि घंटे अथवा डेढ़ घंटे में अवश्य लौट आएँ। वे नहीं लौटे। आधी रात हुई और वह भी बीत गयी। पत्नी काफी नाराज हुई। यह चल ही रहा था कि आकाश में घिरे बादल बरसने लगे। खूब तेज बारिश होने लगी। प्रतीक्षा करते–करते किसी तरह पत्नी सो गयीं। फिर बारिश भी बंद हो गयी, किंतु पुत्र और मेहमान लड़की तब भी नहीं आये। अब तो लेखक का मन बहुत ही उद्विग्न हो उठा। वे तरह–तरह की कल्पनायें करने लगे। चिंता के उन्हीं क्षणों में अपनी दादी और नानी द्वारा गाये जाने वाले एक लोकगीत की निम्नलिखित पंक्तियाँ लेखक के मस्तिष्क में कौंध गयीं।

''मोरे राम के भीजै मुकुटवा,

लछिमन के पटुकवा

मोरी सीता के भीजै सेनुरवा

त राम घर लौटहि।''

लोकगीत की इन पंक्तियों की स्मृति ने मन को एक बारगी झकझोर दिया। पिता का मन आज समझ पाया कि माता–पिता को अपनी संतान की कितनी चिंता होती है। प्रत्येक माता पिता के लिए उनके बच्चों का कहीं भी बाहर जाना ऐसी ही व्याकुलता कारण होता है जैसे पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ राम के वन को चले जाने पर माता कौशल्या का व्याकुल होना।

राम, लक्ष्मण और सीता को प्रत्येक माँ अपने बालकों की भाँति मानती है। जीवन में घटी छोटी–से–छोटी घटना का संबंध रामकथा की किसी घटना से लोकचित जोड़ देता है। यहाँ भी यही हुआ कि संगीत सभा में गये और देर रात तक न लौटने वाले अपने बच्चों की चिंता में पिता का मन जैसे माँ कौशल्या का मन हो गया देश में और दुनिया में लाखों–करोड़ों माताएँ ऐसी है जिनके बालक बड़े होने पर बाहर चले जाते हैं और वे उनकी प्रतीक्षा में आँसू बहाती रहती हैं। कौशल्या की भाँति व्याकुल होकर यह सोचती रहती हैं कि वर्षा के दिनों में उनके बालक कहीं भीग न जाएँ। वनवासी राम का मुकुट कहीं भीग न जाए। उनके धनुर्धर भाई का कहीं दुपट्टा भीग न जाए उन्हें चिंता है कि कहीं उनकी लाड़ली सीता के मस्तक का सिंदूर बारिश में भीग न जाए।

राम के मुकुट, लक्ष्मण के पटके और सीता के सिंदूर के भीगने का वर्णन करने वाले लोकगीत की पंक्तियाँ अपने पुत्र तथा साथ गयी युवती की प्रतीक्षा करने वाले पिता के मन को लोकमन का प्रतिनिधि बना देती हैं। उनका मन श्री राम की वनयात्रा की कहानी में खो जाता है। वनयात्रा की यह कहानी किसी अनाम और अज्ञात लोककवि की मानसिक सृष्टि है। लोकमन में जुड़ी श्री राम के वनवास की मर्मस्पर्शी कथा को लोककवि ने एक नया रूप दे दिया। राम जन–जन के पुत्र हो गये। लोकगीत में लोकमन का राम से एक संबंध स्थापित हो गया। इस संबंध की व्याख्या में निबंधकार का ममता भरा मन वैश्विक विस्तार प्राप्त कर गया।

इस लोकगीत में तीन बातें मुख्य हैं। राम के मस्तक का मुकुट, लक्ष्मण की कमर में बँधा हुआ दुपट्टा और सीता की माँग का सिंदूर। वर्षा हो रही है। मुकुट, दुपट्टा और सिंदूर भीगे रहे होंगे। काश! राम घर लौट आते ताकि तीनों की इस भिगो–भिगो देने वाली वर्षा से रक्षा हो सके।

इसके पश्चात् निबंधकार राम, लक्ष्मण और सीता से जुड़ी इन तीनों बातों की प्रतीकात्मक व्याख्या करता है। उसके अनुसार मुकुट प्रतीक है उदार–चरित्र और महान व्यक्ति के ऐश्वर्य का, जो लोकमन उसे प्रदान करता रहा है। उत्कृष्ट व्यक्ति संसार में निर्वासन की व्यथा भोगता है, फिर भी लोकमन उसका अभिषेक करता है। वनवासी होने पर भी उसे मुकुट पहनाता है और उस मुकुट को भीगने से बचाना चाहता है। इस मुकुट की रक्षा के निमित्त ही राम के साथ लक्ष्मण वन में गये। निबंधकार उनके कमरबंद दुपट्टे को प्रहरी की जागरूकता का प्रतीक मानता है। उदात्त गुणों के ऐश्वर्य के प्रतीक मुकुट की रक्षा–भावना कभी सोने न पाए। कभी मुकुट वर्षा के पानी से भीग न जाए तीसरा प्रतीक है सीता की माँग का सिंदूर। सिंदूर प्रतीक है– नारी के सौभाग्य का, पतिसुख का। सीता तो चौदह वर्ष के वनवास के बाद पुनः निर्वासित हुई थीं। निर्वासित रहो जीवन भर। सीता भले ही भीगती रहें, पर उनका मांगलिक प्रतीक सिंदूर न भीगने पाए। मानव जीवन और विशेषतः नारी के जीवन की कैसी अभिशाप कथा है यह। लोकेशन कितना भीरु है कि नायकों की व्यथामय जीवन–यात्रा में उसके लिए मंगलकामना करता है। उनके प्रति यह मंगलकामना, यह चिंता वास्तव में उसकी अपने प्रति और अपनों के प्रति चिंता तथा मंगलकामना है। अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए निबंधकार ने लोकजीवन तथा साहित्य में बिखरे हुए सूत्रों का सहारा लिया है।

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' के रचनाकार का भावाकूल मन राम की वनयात्रा से जुड़े अनेक मार्मिक प्रसंगों में भीगता–भिगोता हुआ सुबह के चार बजा देता है। तब कहीं संगीत में रात भर भीगने के पश्चात् सुपुत्र का आगमन होता है, कृष्णा भी आ जाती है। उनके आने के पश्चात् भी मन राम की वनयात्रा के कंटकाकीर्ण पथ में अटका रहता है।

लोकमन से जुड़ी राम संबंधी स्मृतियाँ का क्रम चलता रहता है। मुकुट, कमरबंद और सिंदूर को भीगने से बचाने की चिंता में मन अब भी भागता रहता है। बाहर की बारिश

थम चुकी है । दिन का उजाला भी हो चुका है पर भीतर अब भी बारिश हो रही हैं। कौशल्या अब भी व्याकुल है कि उनके बालक किसी पेड़ के नीचे खड़े भीगते होंगे। वह पेड़ कहाँ हैं? राम कब लौटकर घर आएँगे? बारिश कब रुकेगी? ऐसी ही भावप्रवण प्रश्नों के साथ निबंध समाप्त हो जाता है और पाठकों को भी अपने मन में सदा रहने वाले कोमल तथा उदात्त भावों से भिगो–भिगो जाता है।

6.4 संदर्भ सहित व्याख्या

इस निबंध में ऐसी कई पंक्तियाँ हैं जो अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, लेकिन व्याख्या के द्वारा जिनके अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। आइए, यहाँ हम दो गद्याशों की व्याख्या प्रस्तुत कर रहे हैं, शेष महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या इकाई पढ़कर आप स्वयं करने की कोशिश कीजिए।

उद्धरण 1

पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढ़लती रात में उभर आया और सोचने लगा, आने वाली पीढ़ी, पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में वह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा से बड़ा संकट झेल लेगी।

संदर्भ : उपर्युक्त गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र द्वारा रचित ललित निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा हैं से प्रस्तुत किया गया है। अपने पुत्र और एक मेहमान कन्या के संगीत सभा से देर रात तक न लौटने पर निबंधकार के मन में उक्त विचार उठते हैं। कवि को राम वनवास से संबंधित लोकगीत का भी स्मरण हो आता है।

व्याख्याः अपने पुत्र और मेहमान कन्या की प्रतीक्षा करते हुए लेखक यह महसूस करता है कि पिछली पीढ़ी के मन में अगली पीढ़ी के प्रति जो ममता होती है उसे वह समझ नहीं पाती। लेखक स्वयं उस ममत्व से उत्पन्न पीड़ा को आज समझ पाया है क्योंकि पुत्र वियोग ने उसे उसी मानसिकता में पहँचा दिया है। यह पीड़ा अपनी संतान या प्रियजन के उस संभावित संकट की कल्पना से उत्पन्न होती है जो प्रियजन को अनुपस्थिति में आशंका के रूप में हमारे मन में जन्म लेती है। यह वास्तव में वह ममता ही है जो अनिष्ट की आशंका मात्र से व्यक्ति को चिंताग्रस्त बना देती है। इस ममता के कारण ही पुरानी पीढ़ी वह विश्वास नहीं कर पाती कि उनकी संतान अब योग्य और समर्थ है तथा संकट का सामना कर सकती है। वह यही समझती है कि मालूम नहीं उसकी संतान पर क्या गुजर रही होगी।

विशेष :

1. जिस लोकगीत का संदर्भ उपर्युक्त गद्यांश से पूर्व निबंध में आया है उसमें व्यक्त भाव के दर्द को लेखक अपनी इसी मनःस्थिति में समझ पाता है।
2. गद्यांश की भाषा सहज और मर्मस्पर्शी है।

उद्धरण 2

मन फिर घूम गया कौशल्या की ओर, लाखों–करोड़ों कौसल्याओं की ओर, लाखों–करोड़ों कौसल्याओं के द्वारा मुखरित एक अनाम–अरूप कौशल्या की ओर, इन सब के राम वन में निर्वासित हैं। पर क्या बात है कि मुकुट अभी भी उनके माथे पर बंधा है और उसी के भीगने की इतनी चिंता है?

संदर्भ : उपर्युक्त गद्यांश श्री विद्यानिवास मिश्र के निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' से प्रस्तुत किया गया है। इन पंक्तियों में एक पिता की मनः स्थिति का वर्णन है जो घनी अंधेरी रात में संतान के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा है ऐसे समय मनमें राम वनवास

से संबंधित लोकगीत गूंज उठता है उस लोकगीत में वन में बारिश से राम के मुकुट, लक्ष्मण के कमरबंद और सीता की मांग के सिंदूर के भीगने की चिंता व्यक्त की गयी है।

व्याख्या : लोकगीत में माता कौशल्या की ममता और संतान के प्रति भावाकुल चिंता का वर्णन है। श्री राम की मां कौशल्या ने संभवतः ऐसी चिंता की होगी। निबंधकार का मन अपनी संतान के प्रति की गयी चिंता में कौशल्या की चिंता का रूप देखता है। वह सोचता है कि जिन–जिन माताओं के बच्चे घर से बाहर गये हैं, वे सब माताएँ कौशल्याएँ हैं। प्रत्येक माँ के मन में एक कौशल्या बैठी है जो अपने बच्चों की प्रतीक्षा करती है। इन करोड़ों माताओं के नाम और रूप कुछ भी हो सकते हैं, किंतु भावनाएँ सबकी कौशल्या के समान हैं। लेखक यह भी विचार करता है कि राम अयोध्या को त्यागकर वन में चले गये फिर उनके मुकुट की भीगने की चिंता क्यों होती है? अभी तक भी क्या राम के मस्तक पर मुकुट बँधा है? घर और नगर से भी निकाल दिये गये राम के सिर पर मुकुट और उस मुकुट के भीगने की यह चिंता कैसी चिंता है?

विशेष :

1. इन पंक्तियों में लेखक ने लोकगीत में वर्णित एक असंगत प्रतीत होने वाली बात को लेकर प्रश्न उठाया है। वस्तुतः यहाँ लोक मानस का विश्वास ही कौशल्या के शब्दों में व्यक्त हुआ है। मुकुट लोकमन में राम की उत्कृष्टता का प्रतीक है और यही भावना यहाँ व्यक्त हुई है मुकुट के भीगने का तात्पर्य यह है कि वन में भी राम की श्रेष्ठता वैसी ही बनी रहे।
2. संतान के वियोग के दर्द को लेखक ने राम वन की कथा से जोड़कर व्यापक अर्थ दिया है। लेखक ने अपनी बात अत्यंत प्रभावपूर्ण भाषा में कही है।

अभ्यास

निम्नलिखित गद्यांश की संदर्भ सहित व्याख्या कीजिए

1. जिसका ऐश्वर्य से अभिषेक हो रहा था, वह निर्वासित हो गया। उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यही कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है। इसीलिए जब कीमत अदा कर ही दी गयी, तो उत्कर्ष कम से कम सुरक्षित रहे, यह चिंता स्वाभाविक हो जाती है।

संदर्भ :

....

....

राम वनवास का संदर्भ :

....

....

व्याख्या : संकेत : राम को राजा का पद प्राप्त हो रहा था, लेकिन उन्हें निर्वासन भोगना पड़ा। इसी प्रकार सामाजिक उत्कृष्टता के लिए भी व्यक्ति को राम की तरह कष्ट भोगने पड़ते हैं। लेकिन इस कष्ट की घड़ी में भी सामाजिक उत्कृष्टता के मूल्य बचे रहें।

....

....

....

....

विशेष :

....

....

6.5 अंतर्वस्तु

आपने निबंध का सावधानीपूर्वक अध्ययन कर लिया होगा आप यह तो समझ ही गये होंगे कि यह निबंध विचार–प्रधान नहीं है, परन्तु इस निबंध में विचारों की उपेक्षा भी नहीं है। इस निबंध में एक निजी घटना के कारण रचनाकार के मन में जो विचार और भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, उनसे ही इस निबंध की अंतर्वस्तु का निर्माण हुआ है। आइए, संक्षेप में निबंध के विचारपक्ष और भावपक्ष पर विचार करें।

6.5.1 विचार पक्ष

इस निबंध की शुरुआत लेखक के जीवन की एक निजी घटना से होती है एक शाम लेखक का पुत्र और उसके घर आयी मेहमान कन्या, लेखक के एक मित्र के साथ संगीत का कार्यक्रम सुनने जाते हैं। उनके लौटने में काफी देर हो जाती है, जिससे लेखक की पत्नी और स्वयं लेखक उद्विग्न हो जाते हैं । अनिष्ट की आशंका से ग्रस्त लेखक के मन में एक लोकगीत गूँज उठता है।

"मोरे राम के भीजै मुकुटवा

लछिमन के पटुकवा

मोरी सीता के भीजै सेनुरवा

त राम घर लौटहिं।"

इस लोकगीत में कौशल्या की भावनाओं को वाणी दी गयी है जो वे वनवास के दौरान जंगल में भटकते राम, सीता, और लक्ष्मण के दुख की आशंका से ग्रस्त हैं। कौशल्या कल्पना करती हैं कि "मेरे राम का मुकुट भीग रहा होगा, लक्ष्मण का दुपट्टा भीग रहा होगा, मेरी सीता की माँग का सिंदूर भीग रहा होगा, मेरे राम घर लौट आते। लेखक के मन में पहली बार इस लोकगीत में व्यक्त दर्द का अनुभव हुआ। जब अपना कोई प्रियजन या अपनी संतान हमसे दूर होती है, तब उसके अमंगल को आशंका से चित्त उद्विग्न रहता है। यहाँ भी कौशल्या अपने पुत्रों और पुत्रवधू के दुःख की आशंका से ग्रस्त है। यहीं दुःख लोकगीत में व्यक्त हुआ है।

यहाँ लेखक एक महत्वपूर्ण बात कहता है। जब संतान आँखों से दूर होती है, तो माता–पिता संतान के संभावित दुःख के कल्पना मात्र से उद्विग्र रहते हैं। संतान के प्रति उनके मन की ममता ही उनके दुःख का कारण है। ममता में पड़कर ही वे संतान के विषय में या तो समय–असमय आशंका से ग्रस्त रहते हैं या उन्हें बच्चा ही समझते और संकट में अपनी रक्षा करने में असमर्थ मानकर कष्ट अनुभव करते रहते हैं। इसी ममत्व के कारण वे यह नहीं देख पाते कि संतान अब समर्थ हो चुकी है और अपने संकट का स्वयं सामना कर सकती है। दूसरी ओर बच्चे भी माता–पिता की ममता और उसके कारण उत्पन्न पीड़ा को नहीं समझ पाते।

मिश्रजी इसी क्रम में विचार करते हुए एक अन्य पक्ष को रेखांकित करते हैं। इस लोकगीत में गीतकार ने केवल राम की माता कौशल्या के दुःख को ही व्यक्त नहीं किया है बल्कि उन सभी माताओं के दुःख को व्यक्त किया है जिनकी संतान राम की तरह निर्वासन भोग रही है। यही कारण है कि राम–कथा के राम तो कभी के अयोध्या लौट चुके, परंतु लोकमानस के राम अभी भी लोकगीतों में निर्वासन भोग रहे हैं और उनका

मुकुट भीग रहा है। यह विचित्र बात है, क्योंकि राम को जब वनवास दिया गया था, तब उन्हें वल्कल वस्त्र धारण करने पड़े थे और राजसी वस्त्रों का त्याग करना पड़ा था, लेकिन लोकमानस तो उन्हें राजा राम ही मानता रहा और वनवास में भी राम के मुकुट भीगने की कल्पना करता रहा।

यहाँ फिर निबंधकार के मन में एक अन्य विचार उभरता है। राम को उस समय वनवास दिया गया, जब उनका राजा के रूप में अभिषेक किया जाने वाला था। जिन्हें ऐश्वर्य का अधिकारी होना था, उन्हें निर्वासन का दुःख भोगना पड़ा। राम समष्टि या सामूहिकता की चेतना की उत्कृष्टता के प्रतीक हैं। मनुष्य की इसी उदात्त और ऊर्ध्वोन्मुख चेतना को प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही थी, राम के राज तिलक द्वारा। लेकिन ऐसा कब होता है? उदात्तता और श्रेष्ठता को तो वैसे ही लांछित और निर्वासित होना पड़ता है, जैसे राम को होना पड़ा। शायद यही सनातन नियम है। यहाँ मिश्रजी एक और बात कहते हैं। राम का भले ही निर्वासन हो गया, लेकिन उत्कर्षता या श्रेष्ठता (या श्रेष्ठ जीवन मूल्य) की रक्षा तो अवश्य हुई। कुछ ऐसा ही भाव इस लोकगीत में भी है। मुकुट राम की इसी उत्कृष्टता का प्रतीक है लक्ष्मण का दुपट्टा मनुष्य की जागरूकता का प्रतीक है और सीता का सिंदूर स्त्री के सतीत्व और महान त्याग का प्रतीक है। राम लक्ष्मण और सीता भले ही भीगे अर्थात् उन्हें चाहे जितना कष्ट क्यों न झेलना पड़े, लेकिन उनका उत्कर्ष, हमेशा सुरक्षित रहे। मनुष्य रूप में ईश्वर चाहे जितने भी कष्ट झेले किंतु मनुष्य के रूप में उनके ईश्वर होने का ज्ञान सदैव प्रकाशमान रहे।

लेकिन राम की व्यथा से कहीं ज्यादा कष्टपरक है, सीता की व्यथा। रचनाकार ने सीता के दोहरे निर्वासन की ओर इंगित करते हुए कहा है कि वनवास से लौटकर राम तो राजा हो जाते हैं, लेकिन सीता को पुनः निर्वासन का दुःख झेलना पड़ता है। राम उसे ऐसे समय त्यागते हैं जब सीता गर्भवती है। उसके दुःख की कोई सीमा नहीं है। लेकिन सीता का यह दुःख लेखक के अनुसार राम की श्रेष्ठता को ही प्रमाणित करता है क्योंकि राम ने जिन मूल्यों की रक्षा के लिए सीता का परित्याग किया था, सीता अपने त्याग द्वारा उन्हें प्रमाणित करती है। सीता का यह विछोह राम को भी गहरी व्यथा में पहुँचा देता है।

इस प्रकार रचनाकार एक निजी घटना के माध्यम से लोकगीत में अंतर्निहित भावों के कई नये अर्थों को उजागर करता है और इस तरह राम वनवास की कथा को एक नया अर्थ देता है। राम, सीता और लक्ष्मण के वनवास में लोकमानस की अपनी भावनाओं का प्रतिबिंब भी है। वे सभी माताएँ कौशल्याएँ ही हैं जिनकी संतान उनके आँचल से दूर निर्वासन भोग रही है। उनके दुःख की कल्पना करते हुए इन कौशल्याओं को राम की माता कौशल्या के दुःख का स्मरण हो आता है और इस तरह लोक–मानस राम के निर्वासन में अपने दुःख का प्रतिबिंब पाता है।

6.5.2 भाव पक्ष

डॉ. विद्यानिवास मिश्र का यह निबंध भाव प्रधान कहा जा सकता है। यह निबंध रचनाकार ने अपनी एक ऐसी मानसिक दशा को व्यक्त करते हुए लिखा है, जो किसी भी ऐसे माता–पिता की मानसिक दशा हो सकती है जो अपनी संतान के बिछोह में उसके अनिष्ट की आशंका से चिंतित है। ऐसी मानसिक अवस्था में व्यक्ति बहुत व्यवस्थित ढंग से विचार नहीं करता, बल्कि तरह–तरह के विचार जो उसके मन में ऐसे समय उठते हैं, वे उसके व्याकुल मन के ही प्रतिबिंब होते हैं। यद्यपि यह बात पूरी तरह से निबंध पर लागू नहीं होती। वस्तुतः यह सब तो इस निबंध की पृष्ठभूमि में हैं। लेखक अपने पुत्र और मेहमान की प्रतीक्षा करते हुए जब अधिक उद्विग्न हो जाता है और उसी स्थिति में ''मेरे राम का भीजे मुकुटवा'' गीत उसके दिमाग में गूँज उठता है, तो रचनाकार के

मन में विचारों का एक नया प्रवाह शुरू हो जाता है। ध्यान देने की बात यह है कि ऐसी स्थिति में भी लेखक के सामने वे ही मनोभाव प्रधान रहते हैं जो संतान के प्रति चिंता के कारण माता–पिता के मन में उत्पन्न होते हैं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने इस निबंध में लोकमानस की व्याख्या भी की है । ऐसा क्यों है कि लोकगीतकार जंगल में निर्वासन भोगते राम के सिर पर मुकुट होने की कल्पना करता है। वस्तुतः यहाँ लोकमानस और कौशल्या का मन एकाकार हो गया है। संतान चाहे कितनी ही दरिद्र और विपन्न हो, माता–पिता हमेशा उन्हें श्री और शक्ति सम्पन्न देखना चाहते हैं। राम को भले ही निर्वासित कर दिया गया हो, लेकिन माता कौशल्या और जनता के मन में तो उनका राजतिलक हो चुका है। जनता किस तरह पौराणिक चरित्रों और कथाओं को अपनी भावनाओं और इच्छाओ के अनुकूल ढाल लेती हैं, इसे डॉ.विद्यानिवास मिश्र ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से समझाया है।

डॉ. मिश्र ने राम वनवास की कथा में निहित मानवीय भावनाओं का उज्ज्वल पक्ष हमारे सामने रखा है ऐश्वर्य से वंचित अपनी संतान के लिए किसी माता–पिता की पीड़ा और कौशल्या की पीड़ा दोनों एक–सी अपने से दूर गयी संतान के दुःखों की कल्पना मात्र माता–पिता को कितना उद्वेलित करती होगी, उस स्थिति को कौशल्या की पीड़ा से समझा जा सकता है। इसीलिए लेखक विश्व की सभी माताओं की कौशल्या के रूप में कल्पना करता है क्योंकि संतान के दूर होने पर ही उसके प्रति ममता का हमें गहरा बोध होता है और तभी हम दूसरों की पीड़ा को भी समझ पाते हैं। यह पीड़ा सिर्फ अपनी संतान के प्रति ही नहीं होती, दूसरों की संतान के प्रति भी हो सकती है।

6.6 लेखकीय व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति

हमने पिछली इकाइयों में यह बताया था कि ललित निबंध में लेखकीय व्यक्तित्व का प्रभाव अन्य निबंधों की तुलना में अधिक सुगमता से पहचाना जा सकता है। ललित निबंधकार प्रायः अपने निबंध "मैं" शैली में लिखता है, जिसके कारण स्वयं उसके जीवन की घटना, स्थिति, भाव या विचार प्रत्यक्ष रूप में ही सामने उभर कर आते हैं। इस निबंध की शुरुआत भी लेखक के जीवन की एक निजी घटना से होती है। निबंध में स्वयं लेखक, उसकी पत्नी, पुत्र, मित्र और मेहमान का उल्लेख आता है।

यह निजी प्रसंग जहाँ निबंध में लेखकीय निजता का समावेश कर देता है, वहीं उसमें आत्मीयता का तत्व भी आ जाता है। निजता और आत्मीयता निबंध को संवेदनशील बनाती हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि निजता और आत्मीयता का तात्पर्य यह नहीं है कि लेखक सिर्फ अपने बारे में लिख रहा है। अगर ऐसा होता तो निबंध का उतना महत्व कभी नहीं हो सकता था। वस्तुतः निज की घटना के माध्यम से लेखक जिन बातों का उल्लेख करता है वह केवल लेखक के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि इस निबंध के पाठकों के लिए ही महत्वपूर्ण हैं। वस्तुतः यह निबंध आत्मपरक तो है परंतु लेखक आत्मनिष्ठ नहीं हुआ है और अपनी बात को कहते हुए वह निजबद्धता से सावधानीपूर्वक बचा है।

इस निबंध को पढ़ने से हमारे सामने यह तथ्य भी उजागर हो जाता है कि लेखक की रुचि प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य में बहुत गहरी है और यह विशेषता उसके व्यक्तित्व का अपरिहार्य अंग है। इसी तथ्य के साथ यह ध्यान देने की बात है कि जितनी रुचि लेखक की प्राचीन भारतीय साहित्य में है उतनी ही लोक संस्कृति में भी है। यही कारण है कि "मोरे राम का भीजे मुकुटवा" लोकगीत की विशद व्याख्या जहाँ भारतीय संस्कृति के प्राणतत्व–मनुष्य की श्रेष्ठता की भारतीय परिकल्पना को प्रकट करती है वहीं लोक मानस से लेखक के गहरे जुड़ाव को भी उजागर करती है। यहाँ लेखक के व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू हमारे सामने उभरता है और वह है, पौराणिक चरित्रों और कथाओं की लोकवादी व्याख्या का प्रयास। राम वनवास की कथा की जो व्याख्या इस

निबंध में दी गयी है और जिस ढंग से जन मानस के अपने दुःख–दर्द से उसे जोड़ा गया है, वह लेखक की गहरी संवेदनशीलता और सूझबूझ का परिचायक है।

यह निबंध लेखक की लोक चेतना को भी उजागर करता है। अपने पुत्र के लिए चिंतित होना स्वाभाविक है, लेकिन उस चिंता को अन्य के दुःख दर्द से जोड़ देना और उसे एक व्यापक अर्थ देना लेखक की लोक–हृदय की पहचान का परिचय देता है। यही कारण है कि लेखक निजी दर्द को मानवीय चिंता का साकार रूप देने में सफल हुआ है।

बचपन में दादी–नानी जांते पर यह गीत गाती, मेरे घर से बाहर जाने पर विदेश में रहने पर वे यही गीत विह्वल होकर गातीं और लौटने पर कहतीं–"मेरे लाल को कैसा वनवास मिला था"। जब मुझे दादी–नानी की इस आकुलता पर हंसी भी आती, गीत का स्वर बड़ा मीठा लगता। हाँ, तब उसका दर्द नहीं छूता। पर इस प्रतीक्षा में एकाएक उसका दर्द उस ढलती रात में उभर आया और सोचने लगा आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए और अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गए उत्तरों से मिलाइए।

10. "मोरे राम के भीजै मुकुटवा" लोकगीत में कौशल्या की किस भावना की अभिव्यक्ति हुई है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

    ....

    ....

11. इस निबंध में लेखक के व्यक्तित्व की कौन–कौन सी विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं? किन्हीं तीन विशेषताओं के नाम लिखिए।

    क) ....

    ख) ....

    ग) ....

12. इस निबंध में लेखक ने मुख्य रूप से किन–किन बातों पर विचार किया है, उनमें से किन्हीं दो को बताइए।

    ....

    ....

अभ्यास

1. 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' निबंध में यह बार–बार कहा गया है कि राम भले ही भीग जाएँ उनका मुकुट न भीगने पाए। इससे क्या तात्पर्य है?

   ....

   ....

   ....

2. 'मेरे राम का मुकट भीग रहा है' के आधार पर विद्यानिवास मिश्र कि व्यक्तित्व का विश्लेषण कीजिए।

   ....

   ....

   ....

6.7 संरचना शिल्प

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' नामक यह निबंध अब तक पढ़े गये निबंधों की तुलना में जटिल है। इसमें लेखक के भाव और विचार अधिक गुंफित रूप में आते हैं। दूसरे उसमें विचारों का तारतम्य नहीं है, बल्कि कई विचार एक साथ उभरते हैं। इसलिए उनके बीच में वैसी संगति या तार्किकता नजर नहीं आती जैसी इससे पहले के निबंधों में दिखाई देती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भाषा और शैली के स्तर पर यह दुरूह निबंध है। सच्चाई तो यह है कि अंतर्वस्तु के स्तर की जटिलता के बावजूद भाषा और शैली का सौंदर्य पूरी तरह से अभिव्यक्त हुआ है। इस निबंध की भाषा–शैली कई दृष्टियों से अन्य निबंधकारों से भिन्न है, आइए, हम इन बातों पर विचार करें।

6.7.1 भाषा

यह निबंध भी ललित निबंध है। इसलिए लेखक अपनी भाषा और शैली के प्रति अत्यंत सजग है। चूँकि यह निबंध लेखक ने आत्मपरक शैली में लिखा है और लेखक की आत्मीयता, संवेदनशीलता तथा लोकमानस के प्रति उसका गहरा लगाव व्यक्त हुआ है, इसलिए भाषा भी उसी के अनुकूल भावप्रवण, मर्मस्पर्शी और उदात्त है। जहाँ वैचारिक पक्ष अधिक उभरा है, वहाँ भी भाषा में सरसता बनी रही है। लेखक के बात कहने का ढंग जहाँ निजता लिये हुए है, वहीं उसमें आत्मीयता का स्पर्श भी झलकता है, जो सीधे पाठक के हृदय को छूता है।

तार टूट जाता है, मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, यह भीतर से कहाँ पाऊँ? अपनी उदासी से ऐसा चिपकाव अपने संकरे से दर्द से ऐसा रिश्ता, राम को अपना कहने के लिए केवल उनके लिए भरा हुआ हृदय कहाँ पाऊँ? मैं शब्दों के घने जंगलों में हिरा गया हूँ।

इस निबंध की भाषा में एक तरह का काव्य का सा आनंद है। लेखक किसी स्थिति, भाव या विचार का वर्णन करते हुए उसे इस रूप में चित्रित कर देता है जिससे पाठकों के सामने उनका एक बिंब खड़ा हो जाता है। उदाहरण के लिए राम द्वारा निर्वासित सीता की दशा का यह वर्णन देखिए। यह मात्र शाब्दिक वर्णन नहीं है, बल्कि एक बिंब है जो सौत की पीड़ा को हमारे सामने मूर्त कर देता है।

सीता जंगल की सूखी लकड़ी बिनतीं है, जलाकर अंजोर करती है और जुड़वां बच्चों का मुँह निहारती है। दूध की तरह अपमान की ज्वाला में चित्त कूद पड़ने के लिए उफनता है और बच्चों की प्यारी और मासूम सूरत देखते ही उस पर पानी के छींटे पड़ जाते हैं, उफान दब जाता है।

इस निबंध की भाषा यद्यपि तत्सम–प्रधान है, लेकिन आवश्यकतानुसार इसमें तद्भव, देशज और उर्दू शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। अपनी बात को प्रभावशाली बनाने के लिए या उसके अन्य पक्षों को स्पष्ट करने के लिए मिश्रजी हिंदी, संस्कृत आदि काव्य–ग्रथों से अथवा लोक–काव्य से उद्धरण भी देते हैं। वैसे तो उनकी भाषा सहज और स्पष्ट है, लेकिन कहीं–कहीं विचारों की जटिलता के कारण क्लिष्ट भी नजर आती है। जैसे निम्नलिखित वाक्य :

उत्कर्ष की ओर उन्मुख समष्टि का चैतन्य अपने ही घर से बाहर कर दिया गया, उत्कर्ष की मनुष्य की ऊर्ध्वोन्मुख चेतना की यहीं कीमत सनातन काल से अदा की जाती रही है

उपर्युक्त वाक्य को ध्यानपूर्वक और संदर्भ को दृष्टि में रखकर पढ़ा जाय तो इसे समझने में कठिनाई नहीं होगी।

मिश्र के निबंध में कुछ शब्द प्रयोग खटकने वाले भी हैं। जैसे मुटरी का फहरना। मुटरी को फहराया नहीं जा सकता।

6.7.2 शैली

ललित निबंध की शैली का निजीपन और उसका सौंदर्य हम इस निबंध में भी देख सकते हैं। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध से इनकी शैली की यह भिन्नता है कि इसमें अधिक आत्मपरकता और भावप्रवणता है। द्विवेदीजी के निबंध में उनका विद्व त रूप भी झलकता है जबकि मिश्रजी के निर्वेध में उनका सहदय कवि रूप अधिक झलकता है। द्विवेदीजी के निबंधों में प्रायः एक ही विचार विकसित होता हुआ दिखाई देता है जबकि मिश्रजी के निबंध में भावना की एकरूपता होती है, साथ ही निबंध के दौरान कई विचार उठते हुए भी दिखाई देते हैं। शैली का यह अंतर दोनों का निजी वैशिष्ट्य है। मिश्रजी भी अपनी बात को प्रभावशाली,आत्मीय और भावप्रवण रूप में प्रस्तुत करते हैं, यद्यपि निबंध पढ़ते हुए उनके विस्तृत अध्ययन और ज्ञान का बार–बार परिचय मिलता है। विशेष रूप से उनके निबधों में आने वाले उद्धरणों से इसका संकेत मिलता है लेकिन यह सब उनके यहाँ अत्यंत सहज रूप में आते हैं। उनमें बनावट या विद्वता, प्रदर्शित करने का भाव नहीं है। वस्तुतः उनके निबंध हमारे विचारों को उतना उद्वेलित नहीं करते जितना हमारे हृदय को। वे हमें एक खास तरह के लालित्य में डूबो देते हैं। यही उनकी शैली की विशेषता है।

6.8 प्रतिपाद्य

'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है निबंध का केंद्रीय भाव तो मनुष्य मन का वात्सल्य है, लेकिन इसका विस्तार कई अन्य भावनाओं और विचारों को भी अपने में समेटे हुए है। मनुष्य की बाहरी दशा में चाहे जितना भी परिवर्तन क्यों न हो, उसके आंतरिक मनोभावों में परिवर्तन नहीं होता। आज से हजारों साल पहले, जिस प्रकार राम, सीता, लक्ष्मण के वन जाने पर कौशल्या का मन तड़पता होगा, क्या आज भी अपनी संतान के लिए माता–पिता का मन नहीं तड़पता है? मनुष्य के आंतरिक मनोभावों की एकता का यह सूत्र ही उसे आज भी रामकथा से जोड़े हुए है, इसीलिए वह आज भी दर्द से विकल होकर गा उठता है "मोरे राम का भीजे मुकुटवा"।

इसी क्रम में लेखक एक अन्य प्रश्न उठाता है। जब राम को निर्वासित किया गया तो उनके राजसी वस्त्र उतार दिये गये. उनका मुकुट भी, लेकिन इस लोकगीत में राम को मुकुट धारण किये हुए कल्पित किया गया है। वस्तुतः यह जन–मानस में राम का ईश्वरत्व या उत्कृष्टता का भाव है, जिसे जनता सुरक्षित देखना चाहती है।

तीसरी बात लेखक ने इस निबंध में यह कही है कि राम का निर्वासन वस्तुतः उनका ऐश्वर्य से निर्वासन, भी है और इस रूप में जिनकी संतान भी ऐश्वर्य से वंचित कर दी गई है, उनका दर्द भी राम–वनवास में व्यक्त हुआ है। माता–पिता हमेशा अपनी संतान की उत्कृष्टता सुख और मंगल की कामना करते हैं। मुकुट उनकी इसी कामना का प्रतीक है।

इस प्रकार यह निबंध राम–वनवास की कथा के माध्यम से मनुष्य मन के वात्सल्य भाव के कई पक्षों को उजागर करता है।

जहाँ तक निबंध के शीर्षक का प्रश्न है, वह अत्यंत उपयुक्त है, क्योंकि लेखक ने जो भी बात कही है वह किसी न किसी रूप में इस शीर्षक में व्यक्त बात की व्याख्या करते हुए ही कही है।

बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए।

13. 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, किस शैली में है?

    क) व्यंग्य शैली   ख) वर्णनात्मक शैली

    ग) आत्मपरक शैली   घ) विवेचनपरक शैली

14. निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत, बताइए।

क) यह निबंध विचार–प्रधान है। (सही / गलत)

ख) इस निबंध की भाषा तत्सम–प्रधान है। (सही / गलत)

ग) शैली भाववादी और आत्मपरक है। (सही / गलत)

घ) निबध का केन्द्रीय विषय राम का चरित्र–चित्रण है। (सही / गलत)

ङ) निबंध की भाषा सरस, भावप्रवण और प्रभावशाली है। (सही / गलत)

15. निबंध का केंद्रीय भाव क्या है? एक वाक्य में उत्तर दीजिए।

....

....

अभ्यास

1. मनुष्य को बाहरी दशा में चाहे जितना भी परिवर्तन क्यों न हो उसके आंतरिक मनोभावों में परिवर्तन नहीं होता? इस निबंध के आधार पर उपयुक्त पंक्ति व्याख्या कीजिए?

....

....

....

....

....

....

2. निबंध की भाषागत विशेषताओं पर पाँच पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

....

....

....

....

6.9 सारांश

- इस इकाई में आपने डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबध मेरे राम का मुकुट भीग रहा है का अध्ययन किया है। यह एक ललित निबंध है। इस निबंध में लेखक ने राम–वनवास पर लिखे गये एक लोकगीत के माध्यम से मनुष्य के अपने बच्चों के प्रति ममत्व भाव की व्याख्या की है। इस निबंध में उन्होंने मनुष्य के आंतरिक मनोभाव की रागात्मकता पर भी प्रकाश डाला है और मनुष्यत्व की उत्कृष्टता को भी रेखांकित किया हैं। निबंध के इन सभी महत्वपूर्ण बिंदुओं की व्याख्या आप स्वयं कर सकेंगे।
- इस निबंध में डॉ. विद्यानिवास मिश्र के व्यक्तित्व की कई विशेषताओं की अभिव्यक्ति हुई है। इनमें उनकी निजता, आत्मीयता, उदात्तता तथा भारतीय संस्कृति और साहित्य के अध्येता के रूप आदि का परिचय मिलता है आप स्वयं इन विशेषताओं को पहचान सकते हैं।

- इस निबंध की भाषा सरल, सहज और भावप्रवण है शब्दावली तत्सम प्रधान है यद्यपि आवश्यकतानुसार अन्य देशज और तद्‌भव शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। शैली की दृष्टि से यह निबंध भाव और आत्मपरक शैली में लिखा गया है। अब आप स्वयं इस निबंध की भाषा और शैली की विशेषताएँ बता सकते हैं।
- निबंध का केंद्रीय भाव है, मनुष्य के वात्सल्य भाव की व्याख्या। लेखक ने मनुष्यत्व की उत्कृष्टता और ऐश्वर्य से निर्वासन के प्रश्न पर भी विचार किया है। निबंध के केन्द्रीय भाव और मंतव्य का विवेचन आप स्वयं कर सकते हैं।

6.10 शब्दावली

वैश्विक विस्तार : विश्वव्यापी विस्तार अर्थात् जहाँ मन संपूर्ण संसार को अपने में समाहित समझे।

श्री : संपन्नता

आत्मनिष्ठ : व्यक्ति के स्व से आबद्ध।

निजबद्धता : व्यक्ति के निजीपन से बँधा हुआ।

बिंब : किसी विचार, भाव या स्थिति का मूर्त चित्र जो शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, बिंब कहते हैं।

6.11 उपयोगी पुस्तकें

शुक्ल, रामचंद्र : चिंतामणि (पहला भाग), इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद

द्विवेदी, हजारीप्रसाद : साहित्य–सहचर, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद

शर्मा, रामविलास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी अलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

मिश्र, विद्यानिवास : मेरे राम का मुकुट भीग रहा है, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

शर्मा, रामविलास : भारतेंदु युग और हिंदी भाषा की विकास परंपरा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

शर्मा, रामविलास : महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

त्यागी, सुरेशचन्द्र (सं) : कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर': व्यक्ति और साहित्य, आशिर प्रकाशन, सहारनपुर

डॉ. धीरेंद्र वर्मा एवं अन्य : हिंदी साहित्य कोश (भाग एक एवं दो), ज्ञानमंडल, वाराणसी

6.12 बोध प्रश्न/अभ्यासों के उत्तर

1. निबंधकार का पुत्र और उनके यहाँ आई मेहमान लड़की के संगीत के कार्यक्रम में गये हैं उनके समय पर न लौट पर के कारण लेखक उद्विग्न है।
2. राम के वनवास के दौरान माता कौशल्या के मन में राम, सीता और लक्ष्मण को लेकर जो चिंता रही होगी, उसे ही इस गीत में व्यक्त किया गया है।

3. लेखक गीत में निहित दर्द को इसलिए समझ सका क्योंकि वह स्वयं भी उसी तरह की मानसिकता से गुजर रहा संतान के संभावित कष्ट की कल्पना दोनों के यहाँ विद्यमान है।
4. ग
5. घ
6. सीता के चरित्र पर अँगुली उठाये जाने पर राम सीता को निर्वासित कर देते हैं।
7. ख
8. राम के वनवासी रूप को प्रमुखता दी गयी है।
9. लेखक भी अपनी संतान के संभावित कष्ट की कल्पना से चिंतित है।
10. इस गीत मे कौशल्या, राम, लक्ष्मण और सीता के कष्टों की कल्पना करके दुखी है और कामना करती है कि वनवास के दौरान उन्हें कोई कष्ट न हो और वे सकुशल घर लोट आये।
11. कवि ह्रदय (क) आत्मीयता (ख) प्राचीन साहित्य और संस्कृति से गहरा लगाव
12. (क) मनुष्य की अपनी संतान के प्रति ममता (ख) मनुष्यत्व की उत्कर्षता
13. ग
14. (क) गलत (ख) सही (ग) सही (घ) गलत (ङ) सही
15. निबंध का केंद्रीय भाव मनुष्य के वात्सल्य भाव की व्याख्या है।

अभ्यास

1. गद्यांश की व्याख्या के लिए उपभाग 6.5.1 देखिए।
2. उपभाग 6.5.1 देखिए।
3. भाग 6.8 देखिए।
4. उपभाग 6.7.1 देखिए।

विषय	हिंदी
प्रश्नपत्र सं. एवं शीर्षक	P3: कथेतर साहित्य
इकाई सं. एवं शीर्षक	M28: हिन्दी व्यंग्य और हरिशंकर परसाई
इकाई टैग	HND_P3_M28

निर्माता समूह	
प्रमुख अन्वेषक	**प्रो. गिरीश्वर मिश्र** कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : misragirishwar@gmail.com
प्रश्नपत्र समन्वयक	**प्रो. सूरज पालीवाल** अध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : surajpaliwal@yahoo.com
इकाई लेखक	**डॉ. रमेश अनुपम** एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग ईमेल : rameshanupam110@gmail.com
इकाई समीक्षक	**डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित** प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ.प्र) ईमेल : suryadixit123@gmail.com
भाषा संपादक	**प्रो. सूरज पालीवाल** अध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, साहित्य विद्यापीठ महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र) 442001 ईमेल : surajpaliwal@yahoo.com

पाठ का प्रारूप

1. पाठ का उद्देश्य
2. प्रस्तावना
3. समाज
4. राजनीति
5. धर्म
6. साहित्य और संस्कृति
7. निष्कर्ष

1. पाठ का उद्देश्य :

इस पाठ के अध्ययन के उपरांत आप-

- हरिशंकर परसाई हिन्दी के प्रमुख व्यंग्य लेखक हैं, यह जान सकेंगे।
- हरिशंकर परसाई के लेखन में विद्‌यमान सामाजिक दायित्व बोध को जान सकेंगे।
- हरिशंकर परसाई की लेखन प्रक्रिया को जान सकेंगे।
- हरिशंकर परसाई की व्यंग्य प्रधान भाषा और उसकी गंभीरता से परिचित हो सकेंगे।
- हरिशंकर परसाई के लेखन में मनुष्य और समाज को बेहतर बनाने की प्रवृत्ति को जान सकेंगे।

2. प्रस्तावना

हरिशंकर परसाई हिन्दी के उन महत्वपूर्ण लेखकों में से एक हैं, जिन्होंने आजादी के पश्चात् अपने गम्भीर व्यंग्य लेखन से न केवल हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है वरन् उसे एक नई दिशा भी प्रदान की है। मार्क्सवादी विचारधारा के प्रति अटूट आस्था रखने वाले हरिशंकर परसाई जीवनपर्यन्त मुक्तिबोध को अपना सच्चा गुरु मानते रहे हैं। अपने असंख्य निबंधों, कहानियों, सवाल-जवाबों एवं स्तम्भों के माध्यम से हरिशंकर परसाई ने स्वतंत्र भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक विसंगतियों को अपने लेखन का माध्यम बनाया है। अपने लेखन के माध्यम से उन्होंने हिन्दी के पाठकों को राजनैतिक दृष्टि से सचेत बनाने में भी अपना गम्भीर योगदान दिया है। हरिशंकर परसाई हिन्दी के पहले लेखक हैं, जिन्होंने 'जीजा-साली मार्का हास्य' से व्यंग्य को अलग किया और उसे एक नया तेवर प्रदान किया ।

हरिशंकर परसाई के हिन्दी साहित्य में आगमन से पूर्व व्यंग्य के नाम पर 'हास्य व्यंग्य' की परम्परा ही सर्वत्र प्रचलित थी। हास्य व्यंग्य के नाम पर जी.पी. श्रीवास्तव, डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी, गोपाल प्रसाद व्यास, बेढब बनारसी जैसे लेखकों का ही अधिक बोलबाला था। इन लेखकों का सर्वाधिक प्रिय विषय, जीजा साली और पत्नी मार्का हास्य व्यंग्य था, जिसमें हास्य व्यंग्य के नाम पर केवल घिसे पिटे हास्य का ही बोलबाला अधिक था।

हरिशंकर परसाई ने जीवन और समाज की विडम्बना तथा करुणा को अपने लेखन का आधार बनाया एवं हिन्दी व्यंग्य को एक नई दिशा प्रदान की। आजादी के पश्चात् के भारत की विसंगतियों को जितना अधिक हरिशंकर परसाई ने जाना और समझा है उतना हिन्दी के किसी अन्य लेखक ने नहीं। परसाई ने इन्हीं विसंगतियों को अपने लेखन का विषय बनाया। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक मसलों पर अपनी रचनाओं के माध्यम से उन्होंने गम्भीर सवाल खड़े किये तथा हिन्दी के विशाल पाठक वर्ग को अपने देश और समाज के बारे में सोचने के लिए विवश किया। हिन्दी गद्‌य के ठाठ को हरिशंकर परसाई ने अपने लेखन के माध्यम से पुनः प्रतिष्ठित किया। हरिशंकर परसाई का गद्‌य रुदन और गाल फुलाने वाला गद्‌य नहीं है, बल्कि एक नये तेवर, एक नये मिज़ाज और दूर तक मार करने वाली मिसाइल की तरह का गद्‌य है। इसलिए हरिशंकर परसाई का गद्‌य हिन्दी पाठकों को झकझोर कर रख देने वाला गद्‌य है।

हरिशंकर परसाई समाज के प्रति अपने दायित्व को, एक सजग लेखक की भाँति समझते थे, इसलिए वे समाज की विसंगतियों पर अपने व्यंग्य के माध्यम से प्रहार करने से नहीं चूकते। इसके लिए उन्हें अनेक बार कीमत भी चुकानी पड़ी। उन्हें साम्प्रदायिक संगठनों का कोप भाजन बनना पड़ा। हरिशंकर परसाई स्वतंत्र लेखन को ही सर्वोपरि मानते थे, इसलिए जीवन पर्यन्त उन्होंने कभी कोई नौकरी स्वीकार नहीं की। उस समय जब दिल्ली हिन्दी साहित्य

का गढ़ था और तमाम पत्रकार, लेखक दिल्ली की ओर प्रस्थान कर रहे थे। हरिशंकर परसाई ने मध्यप्रदेश के जबलपुर में रहते हुए अपने लेखन से दिल्ली के गढ़ को भी चुनौती देने में संकोच नहीं किया। हरिशंकर परसाई ने जबलपुर से ही 'वसुधा' नामक स्तरीय साहित्यिक पत्रिका का प्रकाशन-संपादन भी लम्बे समय तक किया है। हिन्दी लघु पत्रिकाओं के इतिहास में 'वसुधा' का अपना एक अलग महत्व है।

हिन्दी व्यंग्य परम्परा के जनक और अग्रज लेखक हरिशंकर परसाई के समग्र अवदान का विवेचन तथा मूल्यांकन ही इस पाठ का प्रमुख उद्देश्य है जिससे हम जान सकेंगे कि हरिशंकर परसाई हिंदी के सुप्रसिद्ध व्यंग्य लेखक है तथा हिन्दी व्यंग्य साहित्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान है।

3. समाज :

हरिशंकर परसाई के लेखन का सर्वाधिक प्रिय विषय भारतीय समाज ही है। अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज की विसंगतियों पर उन्होंने सर्वाधिक प्रहार किये हैं। 'अकाल उत्सव' हरिशंकर परसाई का एक ऐसा ही निबन्ध है। देश या प्रदेश में अकाल पड़ा हो तो गरीबों की स्थिति सर्वाधिक दयनीय हो जाती है। लेकिन दूसरी ओर व्यवस्था के प्रपंच के चलते कुछ लोग इसे उत्सव की तरह मनाते हैं। कुछ अधिकारी-कर्मचारियों के लिए यह उत्सव की तरह होता है।

'अकाल उत्सव' में हरिशंकर परसाई लिखते हैं - 'बड़ी प्रार्थना होती है। जमाखोर और मुनाफ़ाखोर सालभर अनुष्ठान कराते हैं। स्मगलर महाकाल को नरमुण्ड भेंट करता है। इंजीनियर की पत्नी भजन गाती है, 'प्रभु कष्ट हरो सबका' भगवन, पिछले साल अकाल पड़ा था तब सक्सेना और राठौर को आपने राहत कार्य दिलवाया था। प्रभु इस साल इधर भी अकाल कर दो और इनको राहत कार्य का इंचार्ज बना दो। तहसीलदारिन, नायबिन, ओवरसीअरन सब प्रार्थना करती हैं।'

हरिशंकर परसाई का एक अन्य निबंध है 'चूहा और मैं'। इस निबंध में वे लिखते हैं 'आखिर एक दिन मुझे समझ में आया कि चूहे को खाना चाहिये। उसने इस घर को अपना घर मान लिया है। वह अपने अधिकारों के प्रति सचेत है। वह रात को मेरे सिरहाने आकर यह कहता है- क्यों बे, तू आ गया है। भर-पेट खा रहा है, मगर मैं भूखा मर रहा हूँ। मैं इस घर का सदस्य हूं। मेरा भी हक है। मैं तेरी नींद हराम कर दूंगा।'

इसी निबंध में हरिशंकर परसाई आगे लिखते हैं 'मगर मैं सोचता हूं आदमी क्या चूहे से भी बदतर हो गया है? चूहा तो अपनी रोटी के हक के लिए मेरे सिर पर चढ़ जाता है, मेरी नींद हराम कर देता है? इस देश का आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा।'

यह है परसाई के गद्य का एक बेमिसाल नमूना। हरिशंकर परसाई अपने क्रोध और बेचैनी को किस प्रकार अपनी पक्षधरता को छिपाये बिना प्रकट करते हैं, उसका एक प्रत्यक्ष नमूना। भारत के करोड़ों दरिद्रजनों के दुखों और पीड़ा को जिन्हें दुर्भाग्य से आज भी भर-पेट भोजन भी नसीब नहीं है। इस विषय को लेकर हिन्दी के कितने लेखक और कवि दुखी होते हैं यह अपने आप में विचारणीय प्रश्न है।

हरिशंकर परसाई इस निबंध के अंत में एक तल्ख पर बेहद जरुरी टिप्पणी करने से नहीं चूकते हैं कि इस देश का आम आदमी कब चूहे की तरह आचरण करेगा। कब अपने अधिकार के लिए लड़ने के लिए उठ खड़ा होगा।

इस प्रकार हरिशंकर परसाई ने अपने अनेक निबंधों में समाज में प्रचलित विसंगतियों पर जमकर प्रहार किया है।

4. राजनीति :

राजनीति की गहरी समझ हरिशंकर परसाई के पास थी। वे दृष्टि सम्पन्न तथा राजनैतिक रुप से सजग लेखक थे। सामान्य जनों की पीड़ा और चिंता उन्हें सदैव विचलित करती थी। वे आम आदमी के पक्षधर लेखक थे। उन्होंने अपनी इस पक्षधरता को कभी छिपाने का प्रयत्न भी नहीं किया। 'ठिठुरता हुआ गणतंत्र' हरिशंकर परसाई की सुप्रसिद्ध रचना है, इसमें वे भारतीय राजनीति पर प्रहार करते हुए लिखते हैं-

'गणतंत्र दिवस में हर राज्य की झाँकी निकलती है। जो अपने राज्य का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती। 'सत्यमेव जयते' हमारा मोटो है, मगर झाँकियां झूठ बोलती हैं। इनमें विकास कार्य, जनजीवन, इतिहास आदि रहते हैं। असल में हर राज्य को उस विशिष्ट बात को यहाँ प्रदर्शित करना चाहिये जिसके कारण पिछले साल वह राज्य मशहूर हुआ। गुजरात की झाँकी में इस साल दंगे का दृश्य होना चाहिये, जलता हुआ घर और आग में झोंके जाते बच्चे। पिछले साल मैंने उम्मीद की थी कि आंध्र की झाँकी में हरिजन जलाते हुए दिखाये जायेंगे। मगर ऐसा नहीं दिखा। यह कितना बड़ा झूठ है कि कोई राज्य दंगे के कारण अंतर्राष्ट्रीय ख्याति पाए, लेकिन झाँकी सजाए लघु उद्योगों की।'

आजादी के बाद की भारतीय राजनीति की जितनी अधिक समझ हरिशंकर परसाई को थी उतनी संभवतः हिन्दी के किसी अन्य लेखक को नहीं, इसलिए उन्होंने अपने निबंधों में भारतीय राजनीतिज्ञों पर जमकर प्रहार किये। राजनीति पर लिखे गये हरिशंकर परसाई के निबंधों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण निबंध है 'भेड़े और भेड़िये'। हमारे तथाकथित प्रजातंत्र पर इससे सुंदर कटाक्ष, इतना तीव्र प्रहार हिन्दी के किसी अन्य लेखक के गद्य में नहीं मिलेगा। परसाई लिखते हैं - 'एक बार वन पशुओं को लगा कि वे सभ्यता के उस स्तर पर पहुंच गये हैं जहाँ उन्हें एक अच्छी शासन व्यवस्था अपनानी चाहिए। और एक मत से तय हो गया कि वन प्रदेश में प्रजातंत्र की स्थापना हो। शीघ्र ही एक समिति बैठी, शीघ्र ही विधान बन गया और शीघ्र ही एक पंचायत के निर्माण की घोषणा हो गयी, जिसमें वन के तमाम पशुओं के द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि हो और जो वन प्रदेश के लिए कानून बनाये और शासन करे। पशु समाज में इस 'क्रांतिकारी' परिवर्तन से हर्ष की लहर दौड़ गयी कि सुख, समृद्धि और सुरक्षा का स्वर्ण युग अब आया और वह आया। जिस वन प्रदेश में हमारी कहानी ने चरण धरे हैं, उसमें भेड़ें बहुत थीं- निहायत नेक, ईमानदार, कोमल, विनयी, दयालु, निर्दोष पशु जो घास तक को फूंक-फूंक कर खाता है।'

आगे परसाई पुनः लिखते हैं 'भेड़ों ने सोचा अब हमारा भय दूर हो जायेगा। हम अपने प्रतिनिधियों से कानून बनायेंगे कि कोई जीवधारी किसी को न सताये, न मारे। सब जियें और जीने दें। इधर भेड़ियों ने सोचा कि हमारा अब संकट काल आया। अगर उन्होंने कानून बना दिया कि कोई पशु किसी को न मारे, तो हम खायेंगे क्या?

इस निबंध का अंत देखिये - 'और अब पंचायत का चुनाव हुआ तो भेड़ों ने अपनी हित रक्षा के लिये भेड़ियों को चुना और पंचायत में भेड़ों के हितों की रक्षा के लिए भेड़िये प्रतिनिधि बनकर गये। और पंचायत में भेड़ियों ने भेड़ों की भलाई के लिए पहला कानून यह बनाया - हर भेड़िये को सबेरे नाश्ते के लिए भेड़ का एक मुलायम बच्चा दिया जाय, दोपहर के भोजन में एक पूरी भेड़ तथा शाम को स्वास्थ्य के ख्याल से कम खाना चाहिए, इसलिए आधी भेड़ दी जाए।'

इस पूरे निबंध में भेंड़ और भेड़िये के रूपक को समझना कठिन नहीं है। यह सर्वविदित है कि भारतीय समाज में भेंड़ें कौन हैं और भेड़िये कौन? इसे हर कोई जानता है। हरिशंकर परसाई के व्यंग्य में क्रोध और करुणा दोनों इस कदर घुल-मिल जाते हैं कि अंतर कर पाना बहुत मुश्किल हो जाता है कि कहाँ क्रोध है और कहाँ करुणा।

5. धर्म :

हरिशंकर परसाई ने धर्म के नाम पर फैले हुए पाखंड का जमकर विरोध अपने लेखन के माध्यम से किया है। उनका यह विरोध एक तरह से उन तथाकथित पाखंडियों के प्रति है जो लोगों को धर्म के नाम पर ठग रहे हैं। परसाई का प्रसिद्ध निबंध है 'भारत को चाहिए: जादूगर और साधु'। इस निबंध में वे लिखते हैं कि जैसे जादूगरों की बाढ़ आयी है, वैसे ही साधुओं की बाढ़ आयी है। इन दोनों में संबंध जरुर है, साधु कहता है, "शरीर मिथ्या है, आत्मा को जगाओ, उसे विश्वात्मा से मिलाओ। अपने को भूलो। अपने सच्चे स्वरुप को पहचानो। तुम सत् चित् आनंद हो।"

आगे परसाई जी लिखते हैं -

"हमें इससे क्या मतलब कि तर्क की धारा सूखे मरुस्थल की रेत में न छिपे (रवीन्द्रनाथ ठाकुर) वह तो छिप गई। इसलिए जन गण मन अधिनायक! बस हमें जादूगर और पेशेवर साधु चाहिए। तभी तुम्हारा सपना सच होगा कि हे परमपिता, उस स्वर्ग में मेरा यह देश जाग्रत हो।"

भारतीय जनमानस को किस तरह साधु और जादूगर ठग रहे हैं, इसकी गहरी समझ हरिशंकर परसाई को थी। धर्म के नाम पर लोगों को किस तरह से उल्लू बनाया जा रहा है, यह हरिशंकर परसाई बखूबी जानते थे। किस तरह धर्म समाज में यथास्थिति बनाये रखने में, समाज को कूप मंडूक बनाये रखने में पूंजीवादी व्यवस्था का सहयोगी होता है, यह बात हरिशंकर परसाई जैसे दृष्टि सम्पन्न लेखक से बेहतर भला कौन समझ सकता था।

'टार्च बेचने वाले' हरिशंकर परसाई का एक प्रसिद्ध निबंध है। इस निबंध में परसाई ने धर्म के नाम पर धंधा करने वाले मठाधीशें पर जमकर प्रहार किया है। परसाई इस निबंध में लिखते हैं- 'एक शाम जब मैं शहर की सड़क पर चला जा रहा था, मैंने देखा कि घास के मैदान में खूब रोशनी है और एक तरफ मंच सजा है। लाउड स्पीकर लगे हैं। मैदान में हजारों नर-नारी श्रद्धा से झुके बैठे हैं। मंच पर सुंदर रेशमी वस्त्रों से सजे एक भव्य पुरुष बैठे हैं। वे खूब पुष्ट हैं, संवारी हुई लम्बी दाढ़ी है और पीठ पर लहराते लम्बे केश हैं।

इसके पश्चात् परसाई उस संत से पूछते हैं- 'यार तू तो बिल्कुल बदल गया। उसने गंभीरता से कहा परिवर्तन जीवन का अनन्त क्रम है। मैंने कहा - साले, फिलासफी मत बघार। यह बता कि तूने इतनी दौलत कैसे कमा ली, पाँच सालों में। उसने पूछा - तुम इन सालों में क्या करते रहे? मैंने कहा- मैं तो घूम-घूमकर टॉर्च बेचता रहा। सच बता क्या तू भी टॉर्च का व्यापारी है?

इस निबंध के अंत में उसका मित्र स्वीकार करता है कि वह भी एक तरह से टॉर्च ही बेचता है, जो बहुत सूक्ष्म है और जिसकी बहुत कीमत उसे मिल जाती है।

भारत में इस तरह के सूक्ष्म टॉर्च बेचने वालों की कमी न परसाई के ज़माने में थी और न अब है। अब तो टी.वी. के अनेक चैनलों पर भी इन टॉर्च बेचने वालों ने कब्जा जमा रखा है, जो तथाकथित भौतिकता का डर दिखाकर धर्म का टॉर्च बेचने में लगे हैं, जिनका साम्राज्य करोड़ों और अरबों में फैला हुआ है।

6. साहित्य और संस्कृति :

साहित्य और संस्कृति पर केन्द्रित अपने व्यंग्य निबंधों में हरिशंकर परसाई ने गम्भीर सवाल उठाये हैं। 'क्षणवाद का चक्कर' परसाई का एक प्रसिद्ध निबंध है, जिसमें उन्होंने छायावादी कवियों और छायावादी कविताओं की प्रवृत्तियों की जमकर खबर ली है। वे लिखते हैं -

'एक छायावादी कवि के साथ 3-4 महीने रहने का अपराध मैंने किया था। जब घटा उमड़ती, तो वे वहीं ढ़ेर होकर बैठ जाते और आत्म विभोर हो पूछते - भाई, क्या तुम मुझे बता सकते हो कि बादलों में से वह कौन आभामय झाँकता है। मैं कहता कोई नहीं है, बिजली चमक रही है। वे कहते नहीं, बिजली में कौन हँसता है? तारों में कौन झिलमिलाता है। मैं उत्तर नहीं दे पाता, तो वे मेरी संवेदनहीनता पर तरस खाकर कहते, तुम्हारी आँखें केवल स्थूल देख पाती हैं। मेरी स्थूल के भीतर सूक्ष्म सत्ता को खोजती हैं।"

परसाई ने 'शर्म! शर्म! संस्कृति' नामक निबंध में एक गम्भीर सवाल उठाया है। वे लिखते हैं - "रवीन्द्रनाथ ने कहा कि भारत महामानव सागर है, जिसके तीर पर अनेक जातियाँ बसी हैं, मगर संघ कहता है भारत एक कुआँ है, जिसमें मेंढक और साँप रहते हैं, रवीन्द्रनाथ की बात गलत है, यह संघवार्ता सही है।"

हरिशंकर परसाई उस साहित्य को समाज के लिए बेहतर नहीं मानते थे, जो केवल कल्पना लोक में ही विचरण करता हो, जिसमें मनुष्य और समाज की कोई चिंता न हो, इसलिए वे छायावादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हैं।

हरिशंकर परसाई का एक निबंध है 'कथा की आधुनिका'। इस निबंध में परसाई आधुनिक कथा लिखने वाले तथाकथित लेखकों की जमकर खबर लेते हैं, जो न स्वयं आधुनिक है और न ही उनकी कथा। परसाई लिखते हैं 'तुम्हारे इन आधुनिक लेखकों ने शरतचंद्र की सावित्री को भोजनालय की नौकरी से इस्तीफा दिलवाकर उसे किसी दफ़्तर में 'स्टेनो' या हवाई जहाज में परिचारिका बना दिया है। वे समझते हैं यह आधुनिक स्त्री हो गई। इससे ज्यादा होशियार बांग्ला का नया लेखक शंकर है। उसने सावित्री को उसी जगह स्थिर कर दी है। उसे मामूली भोजनालय से निकाल कर चौरंगी के आलीशान होटल 'शाहजहां' में कुमारी गुहा के नाम से रखवा दिया है और बाद में आत्महत्या भी करवा दी है।'

हरिशंकर परसाई को इस बात से गहरी आपत्ति है कि आधुनिक लेखक भी स्त्री को उसी पारंपरिक ढांचे में ही प्रस्तुत करने में अपनी शान समझते हैं, जिस ढांचे को कभी शरतचंद्र ने गढ़ा था। दयनीय, करुण, त्यागमयी स्त्री का ढांचा। संघर्ष करने वाली, स्वप्न देखने वाली स्त्री इन तथाकथित आधुनिक कहानियों से क्यों अनुपस्थित है, इस सवाल को परसाई ने अपने इस निबंध के माध्यम से उठाने का प्रयत्न किया है। बाद में उन्होंने स्वयं इसका उत्तर देने के लिए संभवतः 'तट की खोज' जैसे अद्भुत लघु उपन्यास की रचना भी की है, जो आधुनिक स्त्री की बनी बनाई छवि को तोड़ता है और एक संघर्षरत स्त्री के संघर्ष और जिजीविषा को प्रकट करता है।

7. निष्कर्ष :

इस प्रकार हरिशंकर परसाई स्वतंत्रता के पश्चात् के भारत को अपने व्यंग्य लेखन का आधार बनाते हैं और आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक विडम्बनाओं पर जमकर प्रहार करते हैं। हरिशंकर परसाई का लेखन भारतीय चित्त को झकझोर देने वाला अपनी तरह का अलग लेखन है। उन्होंने 'सदाचार का ताबीज' की भूमिका में स्वयं लिखा है - "मैं सुधार के लिए, बदलने के लिए लिखता हूँ, याने कोशिश करता हूँ कि चेतना में हलचल हो जाये, कोई विसंगति नजर के सामने आ जाये।" इसलिए हरिशंकर परसाई ने अपने लेखन में कभी भी यथास्थितिवाद का समर्थन नहीं किया। वे समाज को बदलने के पक्षधर लेखक थे। 'तिरछी रेखाएं' की भूमिका में हरिशंकर परसाई ने लिखा है - 'सच्चा व्यंग्य जीवन की समीक्षा है।" कभी मैथ्यू आर्नल्ड ने भी कविता के महत्व को प्रतिपादित करते हुए कहा था 'सच्ची कविता जीवन की आलोचना है।" उनके लिए व्यंग्य लेखन एक गम्भीर सृजन कर्म था। अपने समय और समाज में धंसकर, एकाकार होकर उन्होंने जो कुछ भी लिखा है उससे हमें अपने समय और समाज को देखने समझने में मदद मिलती है। उनका सम्पूर्ण लेखन हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है। आजादी के पश्चात् के भारत को समझने के लिए हरिशंकर परसाई के सम्पूर्ण लेखन से बढ़कर और कोई दूसरा माध्यम नहीं हो सकता है।

इकाई 10 यात्रा-वृत्तांत (तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 प्रमुख यात्रा-वृत्तांत

10.3 यात्रा-वृत्तांत की विशेषताएँ

10.4 यात्रा-वृत्तांत और अन्य विधाएँ

10.4.1 संस्मरण और रिपोर्ताज

10.4.2 यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज

10.5 यात्रा-वृत्तांत-लेखन में राहुल सांकृत्यायन का स्थान

10.6 राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत का पठन

10.7 तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर : विश्लेषण

10.7.1 प्रतिपाद्य

10.7.2 भाषा-शैली

10.8 सारांश

10.9 शब्दावली

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- यात्रा-वृत्तांत के बारे में जान सकेंगे;
- यात्रा-वृत्तांत की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे;
- यात्रा-वृत्तांत की अन्य विधाओं से भिन्नता के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे;
- राहुल सांकृत्यायन की रेडिङ् की यात्रा के वर्णन का आस्वादन कर सकेंगे और
- प्रस्तुत यात्रा-वृत्तांत के माध्यम से लेखक के साहस और जिज्ञासा का अनुमान लगा सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

यात्रा-साहित्य मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि करता है। लेखक अपनी यात्रा-कृतियों द्वारा देश-विदेश के दृश्यों और रीति-रिवाजों आदि से गहरा परिचय करवाता है। साथ ही इससे मनोरंजन भी होता है। यात्रा-वृत्तांत मनोरंजन और ज्ञानार्जन के अतिरिक्त युवाओं को यात्रा के लिए प्रेरित भी करता है। दरअसल, अनेक ऐसे सांसारिक अनुभव हैं जो बिना यात्रा के अर्जित नहीं किए जा सकते। इसलिए यात्रा-वृत्तांतों को लिखने की परंपरा चल पड़ी है। इनके अध्ययन से पाठक घर बैठे लेखक के अर्जित ज्ञान का अनुभव करता है। इस तरह

इतिहास और भूगोल के विषय में जहाँ उसके ज्ञान का विस्तार होता है वहीं उसकी रुचि भी परिष्कृत होती है।

राहुल सांकृत्यायन की तिब्बत संबंधी यात्राओं का उद्देश्य वहाँ की ऐतिहासिक सामग्री की खोज एवं बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन है। तिब्बत यात्रा का उद्देश्य वहाँ के साहित्य के गंभीर अध्ययन तथा उससे भारतीय एवं बौद्ध धर्म संबंधी ऐतिहासिक सामग्री एकत्र करना है। अपनी ल्हासा यात्रा का महत्व बताते हुए राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है कि, "150 के लगभग चित्रपट तथा तिब्बत, मंगोलिया, सायबेरिया तक में छपी और लिखी पुस्तकों का संग्रह किया।" इस तरह तिब्बत संबंधी यात्राओं का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म संबंधी पुस्तकों का संग्रह करना था। इसके अलावा राहुल ने अपनी यात्राओं के दौरान पुरातात्विक महत्व की सामग्री की खोज पर भी ध्यान केंद्रित किया।

मनुष्य ने अभिव्यक्ति के लिए नए-नए रूपों की तलाश की। रूप की इसी तलाश और प्रयोग से आधुनिक गद्य की अनेक विधाओं का जन्म हुआ। कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक के अलावा आत्मकथा, जीवनी, डायरी, संस्मरण, रिपोर्ताज भेट-वार्ता व्यंग्य जैसी अनेक विधाओं का विकास हुआ। यात्रा-वृत्तांत भी इन्हीं में से एक है जिसमें मनुष्य के भोगे हुए यात्रा के अनुभव को कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। यहाँ कल्पना के लिए ज्यादा गुंजाइश नहीं होती। इसमें बीते हुए यथार्थ का वर्णन होता है। यात्रा के दौरान जिन व्यक्तियों से मुलाकात होती है उनका चित्रण स्वाभाविक रूप में होता है। यात्रा में स्थान बदलने की क्रिया महत्वपूर्ण होती है। यात्रा के अनेक कारण हो सकते हैं। कभी जीविकोपार्जन के लिए तो कभी शैक्षणिक दृष्टि से, ज्ञान-विज्ञान की नवीनतम उपलब्धियों से अवगत होने के लिए व्यक्ति एक स्थान से दूसरे स्थान का चक्कर लगाता रहता है। प्रकृति के सुंदर मनोहरी रूप ने भी मनुष्य को अपनी ओर खींचा। फलतः उसने नदियों, पहाड़ों और जंगलों की ओर रुख किया। प्रकृति से जुड़ना भी मनुष्य की जिज्ञासा का परिणाम है। प्रकृति की सुंदर छवि को निहारने के लिए वह दुर्गम स्थलों की यात्रा पर निकल पड़ा। जीवन के बदलते स्वरूप ने भी यात्रा को बढ़ावा दिया। सांस्कृतिक आदान-प्रदान और राजनीतिक कार्यों के लिए मनुष्य को इधर-उधर जाना पड़ा। समय के साथ-साथ यात्रा-वृत्तांत में भी परिवर्तन हुआ। शुरू में इसे साहित्यिक विधा के रूप में मान्यता प्राप्त करने लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। लेकिन आज यह साहित्य की महत्वपूर्ण विधा बन गई है और आलोचकों का ध्यान खींचने में भी सफल सिद्ध हुई है।

यूं तो मनुष्य अनादि काल से यात्रा करता आ रहा है। अपने संपर्क में आने वालों को वह इन यात्राओं के बारे में निश्चित रूप से सुनाता रहा होगा किंतु भारतीय साहित्य में यात्रा-वृत्तांत लिखने की कोई सुदीर्घ परंपरा नहीं मिलती। आधुनिक साहित्य में ही इसका सूत्रपात हुआ हिंदी में यात्रा-वृत्तांत लिखने की शुरुआत भारतेंदु युग से मानी जा सकती है। 'सरयू पार की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा' आदि शीर्षकों से लिखे गए यात्रा-वृत्तांतों में भारतेंदु ने बहुत ही सजीव और रोचक वर्णन किया है। तब आलोचकों ने इन यात्रा-वृत्तांतों को निबंध के अंदर समाविष्ट कर लिया था क्योंकि यात्रा-साहित्य के रूप में कोई स्वतंत्र विधा विद्यमान नहीं थी लेकिन भारतेंदु के बाद यात्रा-वृत्तांत की अखंड परंपरा चल पड़ी और आज यह एक समृद्ध गद्य-विधा के रूप में दिखाई पड़ रही है।

10.2 प्रमुख यात्रा-वृत्तांत

भारतेंदुकालीन यात्रा-वृत्तांतों में मुख्यतः जिनका उल्लेख होता है उनके नाम हैं - पं. दामोदर शास्त्री का 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' (1885), देवी प्रसाद खत्री का 'रामेश्वर यात्रा' (1893) और

'बदरिकाश्रम यात्रा' (1900), शिव प्रसाद गुप्त का 'पृथिवी प्रदक्षिणा' (1914), स्वामी सत्यदेव परिव्राजक का 'मेरी कैलाश यात्रा' (1915) और 'मेरी जर्मन यात्रा' (1926), कन्हैयालाल मिश्र का 'हमारी जापान यात्रा' (1931) और पंडित रामनारायण मिश्र का 'यूरोप यात्रा में छः मास' (1932)। इन यात्रा-वृत्तांतों के माध्यम से हिंदी में बसने वाली विशाल जनता के विकसित होते हुए मानसिक क्षितिज की सूचना मिलती है। मध्यकालीन रूढ़ियों एवं रीतियों से प्रभावित पंडित मंडली का समुद्रपारीय विरोध जगजाहिर है किंतु इन संस्कारों से मुक्त होकर जिन विद्वान यायावरों ने यूरोप समेत अन्य देशों की यात्राएँ कीं, वह निश्चित रूप से उनकी उदारता, कर्मठता और ज्ञान के प्रति सहज ललक का परिचायक है। शिक्षा के विकास और यातायात के साधनों में वृद्धि के साथ-साथ यात्रा के प्रति लोगों का रुझान भी बढ़ता गया। हिंदी के कुछ लेखकों में ऐसे भी नाम शामिल हैं जिन्हें जन्मजात सैलानी प्रकृति के यायावर कहा जाता है। राहुल सांकृत्यायन, रामवृक्ष बेनीपुरी, यशपाल, अज्ञेय, भगवतशरण उपाध्याय, दिनकर, नागार्जुन और भदन्त आनंद कौशल्यायन जैसे नाम यायावरी के क्षेत्र में काफी मशहूर हैं। इन्होंने यात्रा-साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में 25 मास (राहुल सांकृत्यायन), पैरों में पंख बांधकर, उड़ते-उड़ते चलो (रामवृक्ष बेनीपुरी), लोहे की दीवार के दोनों ओर (यशपाल), अरे यायावर रहेगा याद, एक बूँद सहसा उछली (अज्ञेय), कलकत्ता से पेकिंग, सागर की लहरों पर (भगवतशरण उपाध्याय), देश-विदेश (दिनकर), गोरी नजरों में हम (प्रभाकर माचवे) यात्रा-साहित्य की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं। परवर्ती लेखकों में मोहन राकेश कृत 'आखिरी चट्टान तक', ब्रजकिशोर नारायण कृत 'नंदन से लंदन', प्रभाकर द्विवेदी कृत 'पार उतरि कहँ जइहैं', डॉ० रघुवंश कृत 'हरी घाटी' तथा धर्मवीर भारती लिखित 'यादें यूरोप की' आदि रचनाएँ काफी चर्चित रही हैं। शुरुआती दौर में यात्रा-वृत्तांत स्वभावतः परिचयात्मक और स्थूल वर्णन प्रधान थे। विदेश जाने वाले यात्री पानी के जहाज का ऐसा वर्णन करते थे, मानो किसी राजप्रसाद का हाल बता रहे हों। उनके वर्णन में आमतौर से बाल सुलभ उल्लास और उत्साह रहता था, फलस्वरूप उनकी दृष्टि आकारों पर इतनी अधिक थी कि अंतरंग प्रायः उपेक्षित हो जाता था। भारतेंदु ने अपने यात्रा संस्मरण बहुत ही रोचक शैली में लिखे लेकिन उन्हें निबंध के रूप में ही मान्यता प्राप्त हुई। मौलवी महेश प्रसाद का ग्रंथ 'मेरी ईरान यात्रा' सरल भाषा और आत्मीय शैली में लिखी गई है। शुरू के लेखकों में विषय का मोह और महत्व अधिक था। विदेश यात्राएँ प्रायः यात्रा-वृत्तांत का आधार बनती थीं। भगवानदीन दुबे ने सरस्वती में कई ऐसे यात्रा-वृत्त प्रकाशित किए।

हिंदी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन ने यात्रा-वृत्तांतों में इतिहास, भूगोल, समाज एवं संस्कृति की अंदरूनी तहों तक पहुँचने की कोशिश की है, हालाँकि उनकी शैली में इतिवृत्तात्मकता अधिक है। दरअसल, यात्रा-वृत्तों में हम दृश्यों, स्थितियों और उनके अनुकूल-प्रतिकूल लेखक की मानसिक प्रक्रियाओं के साथ-साथ परिचित होते चलते हैं। इसलिए लेखक की रुचि, संस्कार, संवेदनशीलता और मानसिकता के अनुरूप यात्रा-वृत्तांतों का स्वरूप भी अलग-अलग ढल जाता है।

पिछले पच्चीस-तीस वर्षों में हिंदी का यात्रा-साहित्य काफी समृद्ध हुआ है। हमारे यहाँ के साहित्यकारों को जैसे-जैसे विदेश यात्रा का अधिक से अधिक मौका मिला है, यात्रा-वृत्तांत में उसी अनुपात में वृद्धि होती गई है। बलराज साहनी, कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर और रामदरश मिश्र के नाम यात्रा-वृत्तांत के संदर्भ में महत्वपूर्ण हैं। रूसी सफरनामा (बलराज साहनी), खंडित यात्राएं (कमलेश्वर), ज्योतिपुंज हिमालय (विष्णु प्रभाकर) और तना हुआ इंद्रधनुष (रामदरश मिश्र) आदि इस विधा की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ मानी जा सकती हैं।

यात्रा-वृत्तांत लेखक के साथ सहयात्रा करते हुए पाठक कहीं कविता, कहीं संस्मरण, कहीं कहानी तो कहीं चित्र-दर्शन का अनुभव करता चलता है। कमलेश्वर, विष्णु प्रभाकर और रामदरश मिश्र के यात्रा-वृत्तांतों में कथा रस का पूरा आनंद मिलता है। आज के यात्रा-वृत्तांत में वस्तु वर्णन, दृश्यांकन, बिंबविधान और मनःस्थिति रेखांकन की क्षमता बढ़ गई है। देश-विदेश की सांस्कृतिक उपलब्धियों का साक्षात्कार इनके माध्यम से आसानी से किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1) राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांतों के नाम बताइए।

....

2) जहाँ शुरु के यात्रा-वृत्तांत .... थे, आजकल के यात्रा-वृत्तांतों में लेखक की... .... का प्रमुख उद्देश्य है।

10.3 यात्रा-वृत्तांत की विशेषताएँ

साहित्य को किसी बँधे-बँधाए साँचे में तो नहीं बाँधा जा सकता फिर भी उसकी प्रत्येक विधा की अपनी कुछ खास विशेषताएँ होती हैं जो उन्हें एक-दूसरे से अलग करती हैं और उन्हें एक विशेष पहचान देती हैं। यात्रा-वृत्तांत में स्थान और तथ्यों के साथ-साथ आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता और रोचकता का विशेष महत्व होता है।

स्थानीयता

यात्रा-वृत्तांत में लेखक का उद्देश्य स्थान-विशेष के संपूर्ण वैभव, प्रकृति, रस्मों-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, मनोरंजन के तरीके तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का चित्रण करना होता है। यह लेखक पर निर्भर करता है कि वह इनमें से किस तत्व को ज्यादा प्रमुखता देता है। किसी प्रदेश-विशेष की यात्रा में उसे जो चीज़ सबसे ज्यादा प्रभावित करती है, आमतौर से उस तत्व को वह प्रधानता देता है। इसलिए उसके चित्रण में कहीं विवरण तो कहीं भावों की प्रधानता होती है। कभी-कभी वह तुलनात्मक पद्धति का सहारा भी लेता है। प्रकृति-सौंदर्य के चित्रण में उसकी शैली भावात्मक हो उठती है। यदि वह स्थान-विशेष को जल्दी में देखता है तो उसकी शैली वर्णनात्मक हो जाती है। अपने देश या प्रांत की अन्य प्रांत या विदेश से तुलना करते समय लेखक तुलनात्मक शैली का सहारा लेता है।

तथ्यात्मकता

यात्रा-वृत्तांत में लेखक की कोशिश होती है कि यात्रा के दौरान उसने जो कुछ देखा है उससे संबंधित तथ्यों का विवेचन कर दे। लेकिन ऐसा करते समय वह भूगोल और इतिहास-लेखन की शैली का सहारा न लेकर कथा-साहित्य की सहज, सरल भाषा शैली को अपनाता है जिससे वृत्तांत में रोचकता बनी रहे।

आत्मीयता

याता-वत्तांत में आत्मीयता का भाव होना जरूरी है। यात्रा के दौरान लेखक स्थानों, स्मारकों, दृश्यों आदि को इतिहास और भूगोल के रूप में नहीं देखता, बल्कि वह उनसे आत्मीय संबंध स्थापित करता है ताकि पाठक को पढ़ते समय अपनापन और सच्चाई की अनुभूति हो सके। इसमें लेखक यथातथ्य वर्णन से बचने की लगातार कोशिश करता है ताकि वृत्तांत, उबाऊ, नीरस और इतिहास न बनने पाए। दृश्यों अथवा स्थितियों के साथ आत्मीय रिश्ता

ही पाठक को वृत्तांत से जोड़ने में सहायक सिद्ध हो सकता है। आत्मीयता ही उसे गाइड बनने से रोकती है।

वैयक्तिकता

यात्रा-वृत्तांत में वैयक्तिकता की जरूरत अन्य विधाओं की तुलना में कहीं ज्यादा महसूस की जाती है। खान-पान, वेश-भूषा, पारिवारिक सुख-सुविधा का अहसास यात्रा के दौरान कुछ ज्यादा ही होता है क्योंकि व्यक्ति उस समय अपने आत्मीय जनों से दूर होता है। यात्रा के दौरान आदमी अपरिचित लोगों के बीच रहता है जहाँ उसकी शक्ति और प्रतिभा से लोग वाकिफ नहीं होते, ऐसे में लेखक को अपने व्यक्तित्व से दूसरों को परिचित एवं प्रभावित करना होता है। इसलिए यात्रा-वृत्तांत में लेखक के व्यक्तित्व की प्रभावशाली छाप मौजूद रहती है।

रोचकता

यात्रा-वृत्तांत का सबसे अनिवार्य गुण रोचकता है। यह पाठक को पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। यात्रा-वृत्तांत में रोचकता लाने के लिए लेखक किसी स्थान से जुड़ी लोक-कथा, दंत-कथा आदि का उल्लेख करता है। कभी-कभी वह अचानक होने वाली घटनाओं का वर्णन करता है तो कभी रोचक शीर्षक के समावेश से वृत्तांत की ओर पाठक का ध्यान आकृष्ट करता है। यानी रोचकता को लेखक एक तकनीक के तौर पर इस्तेमाल करता है। इसमें मिथकों, प्रतीकों, अलंकारों और मुहावरों का भी प्रयोग किया जाता है। चित्रात्मक वर्णन भी इस विधा की एक खास विशेषता है। संवेदनशीलता न केवल स्वाभाविक बनाती है बल्कि इसे एक साहित्यिक कृति का रूप भी देती है।

इस प्रकार, यात्रा-वृत्तांतों में देश-विदेश के प्राकृतिक-दृश्यों की रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन संदर्भ, प्राचीन एवं नवीन सौंदर्य-चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र यायावर लेखक के मानस में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक ऊष्मा से दीप्त हो जाते हैं। लेखक अपनी बिंबविधायिनी कल्पना-शक्ति से उन्हें पुनः मूर्त करके पाठकों की जिज्ञासा-वृत्ति को तुष्ट कर देता है।' (हिंदी का गद्य साहित्य, रामचंद्र तिवारी)

कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा के समय यायावर का साहस, उसकी संघर्षशीलता, स्वच्छंदता और अचानक आने वाली प्रतिकूल परिस्थितियों से निपटने की क्षमता उसे एक वीर नायक की-सी गरिमा प्रदान करती है और पाठक उसे प्यार करने लगता है।

10.4 यात्रा-वृत्तांत और अन्य विधाएँ

10.4.1 संस्मरण और रिपोर्ताज

संस्मरण और रिपोर्ताज यात्रा-वृत्तांत से मिलती-जुलती विधा मानी जाती है। कभी-कभी इन तीनों को एक ही मान लिया जाता है। इसलिए यहाँ इनका अंतर स्पष्ट करना जरूरी लगता है। संस्मरण में जहाँ स्थायी अथवा अमिट स्मृतियों का आकलन होता है, वहाँ यात्रा-वृत्तांत में सामयिक स्मृतियों को रेखांकित किया जाता है। इसमें वर्णित स्थान की भौगोलिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि विद्यमान होती है जबकि संस्मरण में इसके बिना भी काम चल जाता है। यात्रा-वृत्तांत में स्थानीयता, तथ्यात्मकता और वर्णन कौशल की प्रमुखता होती है जबकि संस्मरण में ऐसी अनिवार्यता नहीं होती।

10.4.2 यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज

जहाँ तक यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज में भिन्नता का प्रश्न है तो रिपोर्ताज लेखक को भी घटनाओं की जानकारी के लिए यात्रा करनी पड़ती है लेकिन उसका उद्देश्य यात्रा-वत्तांत की तरह सौंदर्यपरक और उन्मुक्त संवेदना की अभिव्यक्ति नहीं होता। रिपोर्ताज जहाँ घटनाओं का विवरण प्रस्तुत करता है वहां यात्रा-वृत्तांत स्थिति और सौंदर्यपरक रचना के रूप में हमारे सामने आता है। रिपोर्ताज प्रायः अकाल, बाढ़, युद्ध, दंगे आदि आकस्मिक या महत्वपूर्ण घटना को पूरी संवेदना के साथ सामने लाते हैं। इन घटनाओं और उनसे जुड़े तथ्यों को एकत्र करने के लिए ही रिपोर्ताज लेखक घटना स्थल की यात्रा करता है। यानी उसकी यात्रा साधन है, साध्य नहीं। इसके विपरीत यात्रा-वृत्तांत लेखक की यात्रा उसके लिए साध्य होती है साधन नहीं। इसके केंद्र में यात्रा होती है, स्थान विशेष का वैभव होता है लेखक की प्रकृति विद्यमान रहती है। इस तरह यात्रा-वृत्तांत की रचना व्यक्ति या लेखक की प्रकृति और प्रवृत्ति पर बहुत हद तक निर्भर करती है।

बोध प्रश्न 2

1) यात्रा-वृत्तांत की तीन प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

....

....

....

....

....

2) यात्रा-वृत्तांत किन-किन उद्देश्यों से लिखे जा सकते हैं?

....

....

3) यात्रा-वृत्तांत और रिपोर्ताज में समानता और अंतर बताइए।

....

....

10.5 राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांत

यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि हिंदी लेखकों में राहुल सांकृत्यायन ने जितनी यात्राएँ की हैं उतनी किसी अन्य ने नहीं। उन्होंने यात्रा-वृत्तांत भी काफी लिखे हैं।

ध्यान देने की बात यह है कि राहुल की यात्राएँ मनोरंजन के लिए नहीं होती थीं बल्कि उनके पीछे एक महत् दर्शन छिपा होता था। सन् 1926 में उन्होंने पहली लद्दाख यात्रा की थी। इस संबंध में उन्होंने लिखा है - "मेरी लद्दाख यात्रा नाम से सन् 1939 में प्रकाशित यह वृत्तांत पहल कदमी का आख्यान नहीं और न किसी प्रकृति-निहारक कवि का वायवी दास्तान, बल्कि मेरठ से मुल्तान, डेरा गाजी खान, पुणछ रियासत, कश्मीर जोजला दर्रा होते हुए लद्दाख मार्ग की एक विजुअल रिपोर्ट।" राहुल का यह यात्रा-वृत्तांत हिंदी साहित्य में अपना अनूठा सम्मान रखता है और इसमें दृश्यों का सजीव चित्रण भाषा के माध्यम से अनुपम आनंद की सृष्टि करता है।

यायावरी राहुल के जीवन का एक मिशन था। इसके पीछे उनकी जिज्ञासा वृत्ति थी। उनके यात्रा-वृत्तांतों में उस देश या स्थान के इतिहास-भूगोल की सम्यक जानकारी मिलती है। साथ ही लोकजीवन के आत्मीय चित्र भी उनके यहाँ आसानी से मिल जाते हैं। राहुल के यात्रा-वृत्तांतों में सामान्य जन, उनके रीति-रिवाज, धर्म आदि का बेबाक वर्णन मिलता है। उनमें सहज भाषा, मुहावरे और रेखाचित्र की मोहकता के साथ उस क्षेत्र के जीवन, परिवेश यानी आर्थिक-सामाजिक-सांस्कतिक परिस्थितियों को उजागर करने की अद्‌भुत क्षमता है।

राहुल सांकृत्यायन जन्मजात घुमक्कड़ थे और वे आजीवन घुमक्कड़ बने रहे। लगभग 40 वर्षों तक उन्होंने निरंतर यात्राएँ की। तिब्बत, रूस और हिमालय उनकी यात्राओं के आकर्षण-केंद्र थे। यात्राओं ने ही उन्हें एक लेखक के रूप में पहचान दी। उनका कहना है कि, ''कलम के दरवाजे को खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया, इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।'' उन्होंने अपनी यात्राओं के विविध, विचित्र व रोचक अनुभव यात्रा-वृत्तांतों में पिरोए हैं। उनके प्रमुख यात्रा-वृत्तांत हैं - तिब्बत में सवा वर्ष, मेरी यूरोप-यात्रा, मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में, रूस में पच्चीस मास, एशिया के दुर्गम भूखंडों में, लंका, चीन में क्या देखा, हिमालय-परिचय, जापान, दार्जिलिंग-परिचय आदि। डॉ० रघुवंश के अनुसार - ''राहुल जी ने यात्रा-साहित्य के लिए विभिन्न माध्यम अपनाए हैं, शायद उनसे अधिक इस विषय पर इतने विविध रूपों पर किसी ने नहीं लिखा है।'' दूसरे स्थान पर उन्होंने लिखा है कि, ''यात्रा का बहुत बड़ा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है जो चलता चला जाए, कहीं रुके नहीं, कोई बंधन उसे कसे नहीं और वह जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, रमणीय है अथवा संवेदनीय है, उसका संग्रह करता चले।''

कहने का तात्पर्य यह है कि यात्रा-वृत्तांत में रचनात्मकता का विशेष महत्व है। राहुल के यात्रा-वृत्तांत पढ़ते हुए इसका भरपूर अनुभव होता है। राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य गुण एवं परिमाण (संख्या) दोनों दृष्टियों से प्रचुर एवं उच्चकोटि का है। देवीशरण रस्तोगी ने लिखा है कि, ''यात्रा-वर्णन लिखने वाले साहित्यिकों में राहुल का नाम सबसे आगे आता है। देश-विदेश के अनुभवों का जब वह वर्णन करते हैं तो उनकी शैली और अधिक रसात्मक हो जाती है। वास्तव में इस रसात्मकता का आधार उनका अनुभव रहता है।'' इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन का यात्रा-साहित्य एक बड़े उद्‌देश्य को लेकर लिखा गया है जिसमें वर्णित भूभाग का इतिहास-भूगोल, संस्कृति, धर्म, दर्शन, साहित्य, ज्ञान विज्ञान सभी का विविधआयामी चित्रण मिलता है।

यात्रा-वृत्तांत वर्णन प्रधान एवं प्रकृतिपरक गद्य-विधा है। प्रकृति वर्णन तो आमतौर से सभी विधाओं में पाया जाता है लेकिन यात्रा-वृत्तांत का मूल ढाँचा ही इस पर खड़ा होता है। इसमें कथातत्व लगभग न के बराबर होता है। यात्रा ज्ञान और शिक्षा का प्रमुख साधन है। इससे मनुष्य की बुद्धि का विस्तार होता है। उसका अनुभव संसार समृद्ध होता है। घुमक्कड़ी के बादशाह माने-जाने वाले राहुल सांकृत्यायन के अनुसार - 'मेरी समझ में दुनिया की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है घुमक्कड़ी। घुमक्कड़ी से बढ़कर व्यक्ति और समाज के लिए कोई हितकारी नहीं हो सकता। क्योंकि लेखक यात्रा-वृत्तांत में वर्णित अपने अनुभवों से लोगों को ज्ञान-विज्ञान की एक दृष्टि प्रदान करता है और इस तरह साहित्य और समाज के लिए उसका लेखन महत्वपूर्ण योगदान साबित होता है।

साहित्य में उन्हीं को यात्रा-वृत्तांत का दर्जा दिया जा सकता है जिनमें लेखक की अपनी प्रकृति भी प्रतिबिंबित होती हो। यात्रा-वृत्तांत में लेखक की फक्कड़ता, घुमक्कड़ी वृत्ति, उल्लास, सौंदर्यबोध और ज्ञानार्जन की उत्कट-अभिलाषा परिलक्षित होनी चाहिए। लेखक के मन पर बाह्य जगत की जो भी प्रतिक्रिया होती है, जो भावनाएँ मन में उठती हैं, उसे वह गहराई के साथ व्यक्त करता है। इसीलिए यात्रा-वृत्तांत में संवेदना और अभिव्यक्ति का एक

कलात्मक संतुलन देखा जा सकता है। इसमें सौंदर्य भावना के साथ-साथ किसी वस्तु के अंदर तक प्रवेश करने की जो बेचैनी होती है, वही लेखक को सफल यात्रा-वृत्तांतकार बनाती है अर्थात् जिज्ञासा और शोधवृत्ति का यात्रा-वृत्तांत में विशेष महत्व होता है।

10.6 राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत का पठन

अब तक आपने यात्रा-वृत्तांत की विशेषताओं के बारे में पढ़ा। इस इकाई में हम ल्हासा से रे-डिङ् की उनकी यात्रा के उद्देश्य और अनुभवों के बारे में पढ़ेंगे। वे कुछ अमूल्य हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में तिब्बत की यात्रा पर निकले हैं। उनके अनुभवों और यात्रा के परिणामों के बारे में उन्हीं के शब्दों में पढ़ेंगे। आइए, हम मूल पाठ का अध्ययन करें।

ल्हासा से उत्तर की ओर

प्रिय आनन्दजी,

ल्हासा
30.7.34

मालूम हुआ कि इधर दसवीं से तेहरवीं शताब्दी तक के कितने ही विहार हैं, जिनमें रे-डिङ् में जो निश्चित ही थोड़ी-सी तालपत्र की पुस्तकों के होने की बात बतलाई गई है, और संभावना औरों में भी है। वस्तुतः यही कारण है इधर आने का।

जब पुस्तक के लिए आना था, तो उसके लिए विशेष तैयारी करनी जरूरी थी। यद्यपि सभी पुराने मठों के लिए पुस्तकें दिखाने आदि के लिए भोट-सरकार से चिट्ठी मिलने वाली है, किंतु अभी उसमें कुछ देर थी, इसीलिए यह दो सप्ताह की यात्रा उसके बिना ही करनी पड़ रही है। हाँ, भोट के वर्तमान राजा रेड़ि-रिम्पो-छे ने एक पत्र अपने रे-डिङ्, नट के लिए दे दिया है और शिकम की महारानी के भाई र-क-सा कुशो ने तग्-लुङ् के लिए चिट्ठी दी है। इसी तरह दो-तीन और चिट्ठियाँ मिल गई हैं। चिट्ठियों के बाद दूसरा प्रश्न था साथी सवारी का। कु-सिन्-शर के स्वामी साहु पूर्णमान ने अपने छह खच्चरों तथा खच्चर वाले को दे दिया। सवारी का प्रश्न तो इस प्रकार हल हो गया। रहा साथियों का - गे-शे के सिवा एक फोटोग्राफर की भी आवश्यकता थी। हमारा रोलैफ्लैक्स कैमरा पुस्तकें छापने से इनकार करता है। सौभाग्य से ल्हासा के फोटोग्राफर श्री लक्ष्मीरत्न ने चलना स्वीकार कर लिया। किंतु अभी एक और साथी को जैसे बने जरूर ही ले जाना था, क्योंकि हम ऐसे प्रदेश में जा रहे हैं, जहाँ संख्या और पिस्तौल-बंदूक ही हमारी रक्षा कर सकती है। हमारे खच्चरों के सरदार सो-नम्-ग्यल्-छन् (पुण्य-ध्वज) खाम् (पूर्वी-तिब्बत) के हैं, जहाँ की कहावत है - तुम अपने ही भरोसे पर जी सकते हो। उन पर पूरा भरोसा है। अपने राम तो हथियार बाँध ही नहीं सकते। हाँ, तो चौथे साथी जो मिले, उनका जन्म अम्-दो का है, जहाँ पर गोली-गट्ठा लेकर नब्बे-सौ आदमी मिल कर ही मंजिल तै कर सकते हैं, किंतु वे भी तलवार के धनी नहीं हैं। गेन्-दुन्-छों-फेल् (संघ धर्मवर्धन) यही उनका नाम है - अच्छे चित्रकार हैं तथा इतिहास और न्यायशास्त्र में अच्छा प्रवेश रखते हैं। कह-सुनकर उनके कंधे से भी एक सात गोली का पिस्तौल एवं कारतूसों की माला लटकाई गई। श्री लक्ष्मीरत्न को लोग नाती-ला के नाम से जानते हैं। उनकी नानी इन्हें नाती कहा करती थीं, ल्हासा पहुँचने पर फरिश्तों ने इस नाम को यहाँ पहुँचा दिया, फिर ला (-जी) जोड़कर भोटवासियों ने उन्हें नाती-ला बना दिया। बुढ़ापे तक अब उन्हें नाती-ला ही रहना है। हाँ, तो नाती-ला को बहुत एतराज था - 'हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य स्मृति ज्ञानकीर्ति के नाम

से फर्जी बनवाई मिट्टी की छोटी मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती!' कहने पर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा कराने से इंकार कर दिया। खैर किसी तरह वे भी पिस्तौल लटकाने को राजी हुए।

सो-नम्-ग्यल्-छन् (उच्चारण सोनम् ग्यंज) ने कहा, कि छठे मास की 18वीं तिथि (30 जुलाई) ही को चलना अच्छा है, बीस को थम्-व (शून्य) आ जाएगा, और आगे भी साइत* अच्छी नहीं। इस प्रकार तैयारी करते-करते आज साढ़े आठ बजे ल्हासा से निकले। साथ में फेम्बो में चराई के लिए कुसिन्-शर् के बाकी छह खच्चर तथा उनका दूसरा आदमी था।

ल्हासा के बाद पहला घर तब्-ची का आया। यहीं भोट-सरकार की टकसाल तथा सैनिक कार्यालय है। पहले सिपाही भी थे, किंतु इधर अनावश्यक होने से उन्हें छुट्टी मिल गई है। तब्-ची से आगे पहाड़ की जड़ में हरे-भरे खेतों के बीच एक घर मिला। फिर दाहिनी ओर की कोने वाली उपत्यका में सहस्रों हरे-भरे खेतों की सीढ़ियों को छोड़ते, हम बाईं ओर नदी पार हो हल्की चढ़ाई चढ़ने लगे। एक फलहीन किंतु सुंदर बाग आया और तब्-ची से तीन मील आने पर बिजली-बत्ती की मा (लोक्-शुइ-आ-मा) हमें मिली। एक मामूली-से घर में पानी द्वारा पहिया घूम रहा है, और बिजली पैदा हो रही है। पानी तो इतना काफी है, कि उससे सारे ल्हासा को रोशन करके भी बिजली बच रह सकती है। उससे जरा ही ऊपर पानी पार कर कुछ नए, किंतु टूटे-फूटे मकान मिले। मालूम हुआ, बिजली देवी के लिए पहले अच्छे-अच्छे मकान बने थे, किंतु उन्हें वे पसंद न हुए और वे नष्ट हो गए, अब उनके लिए टूटी मँड़इया मिली है। असल में तो चाहिए था ज्योतिषी को फाँसी दे देना, क्योंकि उसने ऐसी बुरी साइत बताई। कुछ दूर और ऊपर चढ़ने पर एक वृक्ष-रहित आखिरी गाँव मिला, और फिर गो-जोत (गो-ला), उससे चार-पाँच मील इस पार एक भी गाँव नहीं है। अब चढ़ाई भी कुछ कठिन थी और ऊँचाई के कारण हवा के पतलेपन से जानवरों का दम भी अधिक फूल रहा था। उपत्यकाएँ और उनकी बेटी-पोतियाँ सभी घन-नील-वसन* थीं, सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियाँ (याक) काला दाग-सा बन रही थीं। यद्यपि दूर-दूर पर सफेद भेड़ों के झुंड चर रहे थे, किंतु न हिलने-डुलने के कारण वे जहाँ-तहाँ पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे। पिछले दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिए रास्ता बनाया गया था - बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाई के कहने के मुताबिक तो उस पर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासा में दलाई लामा के लिए तीन मोटरों का आना मालूम है। उसी अपशकुन से - कुछ लोग कहते हैं - दलाई लामा को शरीर-त्याग करना पड़ा, और उनके कृपापात्र कुम्-भे-ला को, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्व से हाथ धो एक कोने में निर्वासित होना पड़ा।

रास्ता कुछ तो अच्छा जरूर है। गो-ला (यही इस जोत का नाम है) के ऊपर चढ़ कर पीछे की ओर मुड़ कर देखने पर ल्हासा नगरी सुदूर दिखाई पड़ी। दूरबीन से देखने पर वह कुछ और स्पष्ट हुई, किंतु उससे भी विचित्र, दूर, क्षितिज के अंत तक, सहस्रों पर्वत-शिखर थे, जो तिब्बत देश को सहस्रशीर्षा पुरुष बना रहे थे। दूसरी ओर देखने पर नीचे की उपत्यका में अनगिनत खेत बतला रहे थे कि फन्-यल् वस्तुतः 'हित का देश' है।

अब हरी उतराई शुरू हुई। जोत पर हम डेढ़ बजे पहुँचे थे, तब से साढ़े चार बजे तक उतराई ही उतराई रही। बिना वृक्षों के कुछ घर छोड़ कर हम और उतरे, और पा-या पहुँच गए। हमारे साथी संघ-धर्मवर्धन तभी से दिमाग लड़ा रहे हैं, कि पा-या का अर्थ क्या है। किंतु हमारा कहना है, पा-या का अर्थ पाया ही है - इतनी मेहनत से पाया, और बिना चोरों की गोली का शिकार हुए पाया।

नालन्दा (तिब्बत)

31.7.34

पा-या से साढ़े आठ बजे रवाना हुए। अब हमारे ही छह खच्चर साथ थे। एक लाल पहाड़ी के पार करते ही कितने स्तूपों से युक्त लड्.-थड्. (बैलों का मैदान) विहार दिखाई पड़ा। पा-या से यह स्थान दो मील से अधिक न होगा। हममें से किसी को यह बात मालूम न थी, अन्यथा कल यहीं आकर ठहरे होते। तिब्बत के प्राचीन मठों के अनुसार यह मठ पहाड़ के ऊपर न होकर मैदान में है। हमारे दीपंकर श्रीज्ञान (982-1054 ई०) के प्रशिष्य* पो-तो-पा-रिन्-छन्-ग्सल् (1027-1104 ई0) के शिष्य लड्-थड्-पा-दों-र्जे-सेड्-गे (बज्रसिंह) ने इस विहार को बनवाया था। लड्-थड्-पा बड़ा ही गंभीर था। उसके बारे में कहा जाता है, कि उसे जन्मभर में सिर्फ तीन बार हँसी आई थी। संसार के दु:ख को वह हर वक्त अनुभव करता था, उसके लिए हँसना हराम था। तीन बार में दो बार की ही बात हमें मालूम हो सकी - (1) एक छोटा बच्चा एक गेहूँ के दाने को उठाकर खाना चाहता था। प्रयत्न करने पर भी वह उसे नहीं उठा सकता था। उसी समय उसकी नाक का पोटा बह कर दाने से लगा। दूसरे ही क्षण साँस के साथ दाना बच्चे के मुँह पर आ गया वह बड़ा प्रसन्न हो गया। यह देखते ही लड्.-थड्.-पा को भी हँसी आई। (2) किसी मंदिर की पूजा में एक बड़ा फीरोजा चढ़ा हुआ था। एक चूहा उसे चुराकर अपने बिल में ले जाना चाहता था, लेकिन वह उठाने में सफल न होता था। चूहा जाकर अपने दूसरे साथी को बुला लाया। फिर पहले चूहे ने अपने पैरों से फीरोजे को छाती में दबाया। साथी ने उसकी पूँछ को मुँह से खींच कर मदद दी। और इस प्रकार फीरोजा लेकर वे अपने बिल में चले गए। चूहे की इस सफलता को देखकर लड्.-थड्.-पा को भी हँसी आ गई।

पुराने विहारों की जैसी दुरवस्था आमतौर से तिब्बत में दिखाई देती है, वैसी ही इसकी भी है। जब हमारे खच्चर आँगन में गए, तो हमने समझा, शायद वह ठहराव होगा। किंतु बाद में मालूम हुआ कि यही लड्.-थड्. का बनवाया विहार है। बारहदरी में घुसते ही दीवार पर लिखा कर-छग (बीजक) दिखाई पड़ा। फिर हम मंदिर के भीतर गए। अस्तव्यस्त बहुत-सी मूर्तियाँ रखी हुई हैं। सामने पिछली दीवार तथा बाईं ओर की दीवारों में क्रमश: मैत्रेय और बुद्ध की पीतल की मूर्तियाँ हैं। दोनों मूर्तियों के शरीर-मंडल सुंदर और पुराने हैं। मैत्रेय की बाईं ओर एक विचित्र-सी भारतीय लामा की मूर्ति देखी। पूछने पर मालूम हुआ, यह भारतीय सिद्ध फ-दम्-पा-सड्. स्-ग्येस् (सप्तिता बुद्ध, मृत्यु 1118 ई०) हैं। बहुत जीर्ण-शीर्ण मूर्ति है। सामने नीचे कुछ और भी छोटी-बड़ी पीतल की मूर्तियाँ हैं, जिनमें अधिकांश भारत से लाई गई हैं। यह उनकी नाक, भौंह, कम चौड़ा मुँह, सुंदर छाती और कमर बतला रही है। ढूँढ़ने पर भी उन पर अक्षर नहीं मिले। एक ओर बहुत-सी पुरानी, भोट-अक्षर में लिखी हुई पुस्तकें बे परवाह से रखी हुई हैं। पीछे के बने देवालयों तथा पुराने स्तूपों को देखकर हम लौट आए। धर्मवर्धन ने बीजक से खास-खास बातों का नोट लेना शुरू किया। नाती-ला ने फोटो लिये। अभी मंदिर के अंधेरे में पड़ी सिद्ध फ्-दम्-पा की मूर्ति का भी फोटो लेना था। किट्सन-लैंप के सहारे उसका भी फोटो लिया गया। बाहर के स्तूपों और सारे विहार के भी फोटो लिये। इसी वक्त किसी आदमी ने जाकर गाँव के जमींदार से - वस्तुत: तो यहाँ का जमींदार भोट-सरकार का है, और खेती का काम उसकी ओर से कोई नौकर करवाता है - कह दिया। जवाब तलब किया गया। हमारे साथी ने जाकर भोटराज रे-डिड्. रिम्पो-छे की लाल लाख की मुहर से अंकित चिट्ठी दिखला दी। मामला वहीं समाप्त हो गया।

मध्याह्न के भोजन के बाद हमारा काफिला नालन्दा के लिए रवाना हुआ। भारत के नालन्दा के नाम पर जहाँ लंका में एक नालन्दा है, वहाँ तिब्बत भी उससे वंचित नहीं है। प्राय: दो घंटा चलने पर हम नालन्दा पहुँचे। यद्यपि स्थान निचले मैदान से कुछ ऊपर चढ़कर है

किंतु यहाँ भी मैदान-सा ही है। उसके निचले भाग पर बहुत-से परित्यक्त खेत हैं। कुछ खंडहर भी कहीं-कहीं खड़े हैं। नालन्दा बहुत ही सुंदर जगह पर है, और आजकल पिछले पहाड़ों के हरित-वसन हो जाने से तो वह और भी अनुपम हो गई है। यह विहार 15वीं शताब्दी के आरंभ में ही बन गया था। निर्माता रोङ्-तांन् शक्य-ग्र्यल्-छन् अपने समय के अच्छे दार्शनिक थे और चोङ्-ख-पा (1357-1419 ई0) के विद्वान् शिष्य म्खस्-ग्रुब (1385-1432 ई०) के प्रतिद्वंद्वी थे। किसी समय नालन्दा तिब्बत की नालन्दा थी। चोङ्-ख-पा के अनुयायियों के डे-पुङ् आदि विहारों की भाँति यह एक अच्छा विद्या-केंद्र था। प्रदेशों के क्रम से कई खम्-जन् और छात्रावास भी हैं। ढाई हजार के रहने लायक घरों में पाँच सौ ही भिक्षु रहते हैं, जिनमें भी पढ़ने वाले पचास से अधिक नहीं। पहले हम ब्यु-बद्-ल-ब्रङ् गये। यहाँ एक बड़ा लम्बा-चौड़ा बीजक लगा हुआ है, जिसके सामने से रक्षा के साथ भी निकलना आसान काम नहीं है। पूछने पर बतलाया गया, म्छांग्-स्पुल-रिम्पो-छे से तालपत्र की पुस्तकों के बारे में पूछें। आने पर देखा, लामा प्राय: दो दर्जन भिक्षुओं को विनय पढ़ा रहे हैं। पूछने पर सहृदयतापूर्वक बतलाया, यहाँ तालपत्र की पुस्तकें नहीं हैं। हाँ, स-छेक्कुन-द्ग-स्त्रिङ् -पो (1098-1158 ई0 के समय का बना एक चित्रपट है। चित्रपट के निकालने में अभी देर थी, इसलिए हम पुरातन मंदिर चू-ला-खङ् (विहार) देखने गये। पुजारी जरा देर में आए। भीतर बुद्ध की विशाल मूर्ति है, जिसके सामने रोङ्-स्तोन् की प्रतिमा है। फोटो लिया। बाहर और कुछ छात्रावासों को देखते सारे विहार के फोटो के लिए बगल की पहाड़ी पर चढ़ चले। बहुत करने पर भी सारा विहार एक फिल्म में न आ सका। लौटने पर चार बज गए थे। अभी पुराने चित्रपट का भी फोटो लेना था, इसलिए आज नालन्दा ही में रात्रिवास को ठहरे। फोटो ले लेने पर रहने के लिए अच्छे स्थान का प्रबंध ही हो गया। उक्त लामा का - जो कि स्वयं अवतार हैं - बड़ा प्रेमपूर्ण बर्ताव था।

शाम को कुछ मिनटों के लिए शास्त्रार्थ वाले बगीचे (छोस्-रा) में भी हो आए। बीस-पचीस आदमी कुल। खूब ताली पीटते, शोरगुल करते शास्त्रार्थ हो रहा था। यहाँ तालपत्र की पुस्तकें तो नहीं देखने में आईं, किंतु नालन्दा का दर्शन और रात्रिवास अवश्य ही संतोष का विषय है।

ग्य-ल्ह-खङ्

1.8.34

नालन्दा से सवेरे बिदाई ली। बादल थे, किंतु बूँदाबाँदी नहीं थी। एक छोटी-सी जोत पार कर फिर खेतों के पास आ गए। नालन्दा में बतलाया गया था, कि पा-छब् दो घंटे का ही रास्ता है, किंतु हमें चलते-चलते चार घंटे लग गए। मार्ग अठारह मील से कम का न होगा। हमारा रास्ता अधिकांश पश्चिम की ओर था, जिससे बादल फाड़ कर समय-समय पर आती सूर्य की तीक्ष्ण किरणें कष्ट नहीं देती थीं। बारह बजे हम पा-छब्-लो-च-व-त्रि-म-ग्रगस्की (ज0 1055 ई0) की समाधि पर पहुँचे। यह लो-च-व तिब्बत के तीन सबसे बड़े विद्वान् अनुवादकों में है। आशा थी, कि शायद यहाँ कोई तालपत्र ही पुस्तक हो, किंतु यहाँ तो एक मामूली स्तूप है, जिसके भीतर कहा जाता है, महान् अनुवादक का शरीर है। पास में मठ है, जिसमें बाईस-चौबीस भिक्षुणियाँ वास करती हैं।

पा-छब् में बहुत ठहरना नहीं पड़ा। कुछ ही मिनटों बाद हम फिर चल पड़े, और डेढ़-दो मील बाद पर्वत के कोने में छिपा ग्य-ल्ह-खङ् (भारतीय देवालय) आ गया। सम्-ये की तरह स्तूपों को, जो भारत में आठवीं शताब्दी के आसपास ही बनते थे। देख कर ही मालूम होने लगा कि यह तो आठवीं-नवीं शताब्दी के बाद का विहार नहीं हो सकता। मैत्रेय देवालय के सामने दों-रिङ् (महास्तम्भ) और उसके लेख को देखकर और भी विश्वास हो चला कि यह विहार - या कम-से-कम उसका कुछ भाग स्रोङ्-चन्-गम्बो के समय का बना है। आज पास के

गाँव में घुड़दौड़ थी। मठ के सभी भिक्षु तमाशा देखने गए थे। सामान बाहर ही रख दिया। तब तक हमने दों-रिङ्. के लेख की छाप लेनी चाही। राय साहब मनोरंजन घोष ने पटना में छापे का सामान बाँध दिया था, किंतु अभी तक छाप लेने का मौका नहीं आया था। पहले प्रयत्न में जैसी छाप आई, उस पर ही संतोष करना चाहिए। यद्यपि लेख में लिखने वाले का नाम नहीं है, किंतु ल्हासा में ऐसे दों-रिङ्. पुराने राजाओं के ही हैं, इससे अनुमान है, यह स्तम्भ भी तिब्बत के किसी राजा का ही है। पास का मैत्रेय देवालय शड्-सत्र-नम्-दों-जें-द्रङ्-फ्युग् ने बनाया था, जो आचार्य शांतरक्षित के शिष्य सम्राट् खि-स्रोङ्-ल्दे-ब्चन् (802-845 ई0) का समकालीन था। पाषाण-स्तम्भ* पर चाहे किसी का लेख हो, उसमें लिखने वाले ने बौद्धजनों को दस अच्छी बातों का उपदेश दिया है, जिनमें मुख्य बुद्ध में एकांत निष्ठा रखना, धर्म का मन में ख्याल रखना, मूलदृष्टि (अनात्मवाद आदि) को चित्त में रखना आदि हैं। थोड़ी देर बाद मैत्रेय देवालय का पुजारी आ गया। आज उसी के यहाँ रहने का निश्चय हुआ। रहने के लिए विशाल सभामंडप मिला। मंदिर में मैत्रेय की विशाल मूर्ति है। कहते हैं, तुर्कों के युद्ध के समय मंदिर में आग लगा दी गई थी। समझ में नहीं आता, तुर्क कब इधर आये। मंदिर में हस्तलिखित तीन कन्-जुर और तीन तन्-जुर हैं, जो एक के ऊपर एक छल्ली बाँधकर रखे हुए हैं। मंदिर के एक कोने में द्विभुज, लोकेश्वर बुद्ध और एकादशमुख लाकेश्वर की पाषाण-मूर्तियाँ हैं। पाषाण की मूर्तियाँ भोट देश में अति दुर्लभ हैं। ये मूर्तियाँ भारतीय मालूम होती हैं। मैत्रेय के दर्शन के बाद हम प्रधान मठ को देखने गए। पुस्तकों, मूर्तियों और कमखाब की छत्तों से मालूम होता है, कि किसी समय वह विहार बहुत रौनक पर था। विद्यार्थियों के रहने के लिए बहुत से मकान हैं। स्तोद्, स्मद्-दो-ड-सङ्. (महाविद्याल) तथा शास्त्रार्थ की बगीची के होते हुए भी विहार अब श्रीहीन है। भिक्षु 180 के करीब बतलाए जाते हैं। एक अवतारी लामा और दो मखन्-पो (आचार्य) भी हैं। हम मिल आए, किंतु निराश होना पड़ा। तीन पुराने चित्रपट देखे जिन्हें रिन् छोन्-बसम्-ग्रुब ने बनवाया था। भारत से आई कुछ मूर्तियाँ यहाँ के विहार में हैं। संभव है, कुछ और भी महत्वपूर्ण वस्तुएँ हों, किंतु उसके लिए अधिक दिन और अधिक परिचय की आवश्यकता है।

कल कोई विशेष बात न थी, इसीलिए लिखने की इच्छा न हुई। मेघ के रिमझिमाते ही में हम लोग ग्य-ल्ह-खङ्. से चल दिए। हाँ, वहाँ कूड़े में से कुछ हस्तलिखित पुस्तकों के पन्ने लिये। उनमें एक पोथी शतसहस्रिका की बारह पोथियों में से थी। दो छोटी-छोटी जोतें पार करनी पड़ीं, फिर कुछ दूर तक जौ-गेहूँ के हरे खेतों में से चलना पड़ा। मामूली ढलुआ चढ़ाई थोड़ी-सी (प्रायः सवा मील), बाद शन्-बुम्-पा मठ में पहुँचे। दीपंकर के शिष्य डोम्-तोन् के प्रशिष्य श-र-बा का यह निवासस्थान था। एक घेरे में बहुत से स्तूप हैं, जिनमें से एक श-र-बा का शरीर भी है। इसी की बगल में एक छोटा-सा स्तूप है जिसके महत्व के बारे में कहा जाता है कि संसार में चाहे हिम-प्रलय हो जाय, किंतु इस स्तूप पर बर्फ नहीं पड़ेगी। एक और सम्मेलन घर है, किंतु वहाँ भी कोई विशेष वस्तु नहीं मिली। आजकल यह विहार भिक्षुणियों (?) का है, जिनकी संख्या पूछने पर एक वृद्धा भिक्षुणी ने कहा - तीन-बीस, सोलह-सत्रह अर्थात् 76-77। हमने आशा की थी, शायद यहाँ हमारे काम की कोई चीज़ हो। ढाई बजे हम लोग फिर रवाना हुए। चढ़ाई थी और एक छोटी जोत। यहीं दूसरी ओर के पहाड़ पर हमने नाती-ला को एक दुद्-मो-नग्-मो (काली भूतनी) दिखलाई। हमने कहा, देखो - (1) इसके वस्त्र बिल्कुल काले हैं, जैसे इस मुल्क के स्त्री-पुरुषों के नहीं हुआ करते, (2) इसका आकार अधिक लम्बा-चौड़ा है, (3) इसके पास भेड़ें या चमरियाँ नहीं हैं और (4) न आसपास हरी घास है। लेकिन नाती-ला भी अब हमारी भाषा को समझने लगे हैं। पाँच बजे के करीब हम रे-डिङ्. अथवा कन्-सू और मंगोलिया के रास्ते पर पहुँच गए। एक गाँव में रहने का स्थान न मिलने पर अगले गाँव में एक गरीब के घर में जगह मिली। गाँव का नाम फन्-दा है। 'यथा नाम तथा गुण' तो नहीं मालूम होता।

पो-तो दीपंकर के प्रशिष्य पो-तो-पा का निवास यहाँ से तीन-चार मील से अधिक नहीं है, किंतु रास्ता अलग होने से जाने की सलाह नहीं हुई। आज पौने नौ बजे चले। थोड़ी दूर पर पहाड़ के किनारे सात स्तूप कुछ छोटे स्तूपों के साथ दिखाई पड़े। यह भी दीपंकर की परंपरा के एक विद्वान का है - नाम है स्नेड्-सर् स्तूप। इधर के पहाड़ों पर कुछ झाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं, जो यहाँ के लिए नई चीज़ है। झाड़ियाँ अधिकतर जंगली गुलाब की हैं। तीन-चार मील चलने के बाद मानव-बस्ती खतम हो गई। हाँ, चमरियाँ तो जोत के पास तक मिलीं। रास्ते में एक जगह अपने बाएँ, पहाड़ पर एक कस्तूरी मृग को भागते देखा। ठीक मध्याह्न में हम जोत के ऊपर पहुँचे। इस जोत पर डाकुओं का भय बहुत अधिक रहता है, किंतु हमारे साथियों के पास दो पिस्तौलें और एक बंदूक भी हैं। उतराई में हम पैदल चलना अधिक पसंद करते हैं, इससे खच्चर की पीठ कटने का डर भी कम रहता है। दो बजे तक हम उतरते ही गए। फिर बाईं ओर की पहाड़ी रीढ़ को पार कर लेने पर स्तग्-लुङ्की नदी आ गई। मठ अभी डेढ़ मील पर था। रास्ता उतराई का था। सब लोग पैदल चलने लगे। संघ धर्मवर्धन के खच्चर की लगाम उसके पैर में आ गई। हमारे खच्चर वाल सो-नम्-ग्यंजे को गुस्सा हो आया धर्मवर्धन पर, किंतु उसे निकाला उसने खचरी पर। पहले से भी सो नम्-ग्यंजे को शिकायत थी, कि धर्मवर्धन क्यों नहीं काम करते, किंतु बचपन से ही अभ्यास न होने के कारण वे मेहनत करने में असमर्थ हैं। मठ के पास पहुँचने पर हम लोग उसे धार के इस पार छोड़ लामा के पास गए। शिकम की महारानी के भाई र-क-स कुशो का पत्र होने पर भी एक बहुत ही दरिद्र जगह हमें बतलाई गई। इसे हम अपना अपमान समझ रहे थे इसी समय ख्याल हुआ - खच्चरों के आने में देर क्यों हो रही है? थोड़ी देर में सो-नम्-ग्यंजे आया, बोला - मैं साथ नहीं चलूँगा, मैं ल्हासा लौटूंगा। हमने भी समझाया किंतु वह नहीं माना। एक खच्चर लेकर चल दिया। पीछे मालूम हुआ, वह ल्हासा की ओर न जाकर अपने जन्म-स्थान खम् की ओर जा रहा है। इस प्रकार डाकुओं से भरे इस प्रदेश में पाँच खच्चरों को हमारे मत्थे मार वह चलता बना। आज खच्चरों को बाँधने और खिलाने का काम नाती-ला और धर्मवर्धन पर पड़ा। यात्रा में भी कुछ कमी करनी पड़ेगी। यहाँ से रे-उङ्. के लिए दो आदमी मिलने वाले हैं। देखो, कल क्या होता है।

उक्त घटना ने कुछ चिंतित बना दिया था। ऐसे ही समय विहार-दर्शन को गए। प्रधान विहार 1180 ई0 में स्तग्-लुङ्-थङ्-पा-दों-ग्लिङ्-रस्-पा ने बनवाया था। एक आँगन के गिर्द विशालकाय बुद्ध-मूर्तियों के गृह हैं। मूर्तियाँ सुंदर हैं। अनेक कन्जूर, तन्जूर की सुंदर हस्तलिखित पुस्तकें ईंटों की छल्ली की तरह रखी हैं। जब पढ़ना नहीं, तो दूसरी तरह रखने की आवश्यकता क्या? आखिर कुछ समय बाद जीर्ण मंदिर के गिरने पर ये पुस्तकें भी नष्ट हो जाएँगी, किंतु क्या दाम से भी यह लोग एक-दो प्रतियाँ दे सकेंगे?

ल्ह-खङ्-गुदोङ्.

4.8.34

आज जब सोये पड़े थे और घर में भी अँधेरा था, तभी सो-नम्-ग्यंजे आ पहुँचा। पूछने पर बतलाया, कि उसके सामान को रास्ते में से कोई उठा ले गया, जब कि उसे फेंककर पीछे की ओर भागते खच्चर को पकड़ने लौटा। यह भी कहा कि रात को वह पहाड़ में सोया था। उसकी इन बातों पर विश्वास न होता था, बल्कि और संदेह बढ़ता जाता था, कि कहीं मार कर सामान लूटने के लिए तो नहीं आया है। हमारे पास पाँच सौ रुपए के पैसे भी हैं, और कुछ दूसरे सामान भी। ऐसा संदेह करने का कारण था - सो-नम्-ग्यंजे के जन्म-स्थान के लोगों का यही स्वभाव। उसके देश में लूट-मार लोगों का पेशा है। यद्यपि सो-नम्-ग्यंजे का चार-पाँच वर्ष का रिकार्ड बहुत अच्छा रहा है, तो भी हम उसे अर्धविक्षिप्त समझते थे। वह कहता भी था - मैं तो नदी में छलाँग मार कर जान दे दूँगा। इस प्रकार आज रास्तेभर हम

लोग शंकित और सजग ही चलते रहे।

स्तग्-लुड्. मठ से प्रायः डेढ़ मील तक साधारण ढालू भूमि पर चलकर, रूखे पत्थरों को जोड़ कर बनाए एक पुल से हम धार के बाएँ हो लिये। रास्ते में पहाड़ के वक्ष में ढके एक मठ का फोटो लिया। जिस जगह हम चल रहे थे, वह ल्हासा (12,000 फुट) से अधिक ठंडा है, तो भी आज के पहाड़ जंगली गुलाब और करौंदे की झाड़ियों से खूब ढंके थे। छोटी-छोटी घास तो वर्षा के कारण होगी, किंतु बिच्छू-घास तो बारहमासी है, जिसकी यहाँ बहुतायत है। चारों ओर हरियाली की अद्भुत शोभा है। हमारे काफिले में दो नौकरों की बढ़ती हुई। उन्हें हमने पौने तीन साङ्. (प्रायः 9 आने) रोज पर रखा है।

12 बजे हम लोग फुन-दो में, ब्रह्मपुत्र की उस शाखा के तट पर पहुँचे, जो ल्हासा होकर गुजरी है। यहाँ आदमियों के लिए लोहे के साँकल पर चमड़े से बँधी लकड़ियों का झूला है। सामान के लिए चमड़े की नाव (क्वा) है, जानवरों को तैर कर पार होना पड़ता है। हम लोग दो घंटे के इंतजार के बाद क्वा से उतर सके। मंगोलिया और कन्-सू (चीन) की ओर का यह प्रधान रास्ता है। यहाँ भी लकड़ी की नाव का इंतज़ाम करना चाहिए था।

छ-ला पार करने के बाद ही पुरुषों के बालों में भेद दिखलाई पड़ता है। यह लोग खाम् वालों की भाँति सामने के बालों को कैंची से कटवाते हैं। जहाँ से इस पत्र को लिख रहा हूँ, वहाँ से आधे दिन के रास्ते पर ला-गृञिस (जोत-युगल) है, जिसके पार होते ही हम होर-प्रांत में पहुँच जाते हैं, भोट देश के होते हुए भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों की पोशाक में बहुत फर्क है।

सवा दो बजे रवाना हुए। अब हम ल्हासा वाली नदी की बाईं शाखा के दाहिने से चल रहे थे। यह धार पिछली धार से बहुत बड़ी है। खैरियत यही है, कि इसे हमें पार नहीं करना होगा। इधर के पहाड़ों पर तो और भी अधिक झाड़ियाँ और हरियाली हैं। खेती के लायक जमीन होने पर भी खेत देखने में नहीं आते। नदी के पार एकाध जगह सरसों के पीले फूल दिखलाई पड़ते थे। हाँ, जगह-जगह पहाड़ों पर चरती-चमरियों के चलायमान काले दाग जरूर थे। दो-एक जगह परित्यक्त ऊँचे घरों की पत्थर की दीवारें बतला रही थीं, कि किसी समय इधर अब से अधिक बस्ती थी। नदी की उपत्यका काफी चौड़ी है। दो-तीन जगह हमें होर-प्रांत वाले मक्खन-विक्रेताओं की लदी चमरियाँ मिलीं। दो-तीन जगह तीर्थाटक* भिखमंगे भी मिले। होर की दो-तीन तीर्थाटिकाओं* के फोटो लेने का भी हमने प्रयत्न किया।

पाँच बजे हम उस स्थान पर पहुँचे, जहाँ रे-डिङ्. का रास्ता मंगोलिया के रास्ते से अलग होता है। यहाँ एक मंदिर है, जिसे रिग्स्-ग्सुम्-ग्गोन्-पो का ल्ह-खङ्. (देवालय) कहा जाता है। लोग कहते हैं, इसे स्रोङ्.-व्चन् स्गम्-पो ने बनवाया था। स्थान तो महत्वपूर्ण जरूर है, तो भी देवालय उतना पुराना नहीं होगा। हाँ, यह ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी से इधर का भी नहीं हो सकता। मंदिर के भीतर बुद्ध की दो सुंदर मूर्तियाँ हैं। कुछ और मूर्तियों के अतिरिक्त एक एकादशमुख* अवलोकितेश्वर की भी मूर्ति है। ल्ह-खङ्. (देवालय) पहाड़ के उस कोने पर है, जहाँ से मंगोलिया का रास्ता मुड़ता है। बगल के गृहपति ने स्वागतपूर्वक हमें अपना सबसे अच्छा कमरा दिया। इस कमरे में आसन और चाय की चौकियों के अतिरिक्त दीवारों पर कितने ही चित्रपट और एक कोने में सजा कर रखी पद्मसंभव* की मूर्ति। किट्सन्-लैम्प के सहारे हमने एक फोटो लेने का प्रयत्न किया। आ जाए, तब है।

यहाँ से रे-डिङ्. पाँच मील के करीब है। कल सवेरे ही वहाँ पहुँच जाएँगे।

रे-डिङ्.

5.8.34

हमारी घड़ी से साढ़े सात बजे और नाती-ला की घड़ी से पौने आठ बजे हम लोग रवाना हुए। आकाश मेघाच्छन्न था। छोटी-छोटी फुहारें पड़ रही थीं। ला-ग्ञिस की ओर से आने वाली धार को पार कर हम बड़ी धार की दाहिनी ओर से ऊपर की ओर चढ़ने लगे। आज का भी पहाड़ झाड़ियों और घास से ढका था। नदी की दूसरी ओर चमरी चराने वाले डोक्-पा लोगों के तम्बुओं से धुआँ निकल रहा था। रास्ते में दो-चार जौ के खेत भी देखे। पुराने परित्यक्त* खेतों की मेड़ों से मालूम होता था, कि किसी समय इधर अधिक खेत थे। प्रायः तीन मील चलने के बाद देवदार के एक-आध छोटे वृक्ष दिखाई पड़ने लगे। मीलभर रहने पर तो पहाड़ में हजारों हरे-हरे देवदार थे। इधर देवदार काटने की सख्त मनाही है, इसीलिए यहाँ इतने वृक्ष दिखाई पड़ते हैं। सर्दी के बारे में पूछने पर मालूम हुआ, कि यहाँ की यह बड़ी नदी भी ऊपर से जम जाती है, और आदमी तथा जानवर इस पार से उस पार आसानी से जा सकते हैं। उस वक्त देवदार की हरियाली को छोड़ कर और कहीं हरियाली देखने में नहीं आती। ल्हासा से यह स्थान अधिक ऊँचा है, इसमें तो संदेह नहीं, लेकिन आश्चर्य यह है कि यहाँ के पहाड़ों पर जितनी हरियाली दिखलाई पड़ती है, उतनी ल्हासा वाले पहाड़ों पर नहीं।

हमने एक मानी पार की, फिर देखा, हमारे साथी तो एक छोटी चट्टान पर पत्थर के टुकड़ों को मार रहे हैं, और साथ ही कहते जा रहे हैं -- ''चा-फु,मा-फु'' (चाय प्रदान करो, मक्खन प्रदान करो)। मालूम होता है, सभी श्रद्धालु यात्री यहाँ पर चा-फु, मा-फु कहते हैं, तभी तो इस छोटी सी चट्टान पर पचासों गोल-गोल गड्ढे हो गए हैं। पहले तो गोल गड्ढों को देखकर मेरा माथा ठनका - कहीं ल्हासा के पुरातन लेख वाले शिला-स्तम्भ की भांति यहाँ भी तो किसी पुराने लेख को कूटा नहीं जा रहा है, लेकिन पीछे यह देखकर संतोष हुआ कि इस चट्टान पर लेख नहीं है। एक घुमाव को पार करते ही देवदार के घने जंगल में रेडिङ् गुम्बा सामने आ गई।

हमारे साथियों ने अपनी पिस्तौल और बंदूक हाथ में ले ली, क्योंकि हथियार को बिना हाथ में लिए इस गुम्बा के भीतर जाना निषिद्ध* है। पश्चिम वाले विशालकाय स्तंभ के पास पहुँच कर हमने रे-डिङ् रिम्पो-छे की चिट्ठी भीतर गुम्बा के अफसर दे-छङ् के पास भेजी। थोड़ी देर में बुलावा आया, और ल-ब्रङ् ब्ल-मऽ-फो-ब्रङ् (लामा का महल) के एक कमरे में रहने के लिए स्थान मिला।

अब हमें सबसे पहले उस काम की फिक्र हुई जिस काम के लिए इतनी दूर, इतनी परेशानी के साथ आए हैं। धर्मवर्धन ने जाकर पूछा, तो मालूम हुआ कि रे-डिङ् रिम्पो-छे ने पत्र में सिर्फ ठहरने के लिए अच्छा स्थान देने को लिखा है। मुझे तो इस बात पर पहले विश्वास न होता था। और विश्वास करने को जी क्यों चाहता? इतनी तकलीफ झेलकर, पद-पद पर चोरों के खतरे वाले इस प्रदेश में तो इसलिए आए थे, कि रे-डिङ् में हमें दीपंकर श्रीज्ञान के हाथ के ताल के पत्ते देखने को मिलेंगे। देखने को ही नहीं, बल्कि हम तो फोटो लेने के सारे सामान के साथ आए थे। क्या हमारा यह सारा प्रयत्न व्यर्थ जाने को है? उस चिट्ठी के भीतर एक दूसरे अफसर के लिए भी चिट्ठी थी, जो एक दिन पूर्व ल्हासा चला गया। साथियों को ख्याल हुआ, शायद उसमें कुछ हो। उपस्थित अफसर दूसरे की चिट्ठी को फाड़ने से डरता था, किंतु हम लोग समझते थे, उसमें भी हमारे ही बारे में कुछ लिखा होगा। रिम्पो-छे महाशय ने हमें सिर्फ पत्रवाहक थोड़े ही बनाया होगा। आखिर उसे भी खोला गया, पर उसमें हमारे बारे में कुछ भी नहीं था। वह उनका व्यक्तिगत पत्र था। वास्तव में मुझे तो दूसरे पत्र के खोल लिए जाने पर मालूम हुआ, कि यहाँ के अफसर को एक अलग भी पत्र था। यदि यह पहले मालूम हुआ होता, तो मैं दूसरे पत्र को खोलने की सलाह न देता। अब जरा पत्र का इतिहास सुन लो। पिछली यात्रा में जब रे-डिङ् रिम्पो-छे से-रा विहार में पढ़ते

थे, तभी उन्होंने मुझसे कहा था, कि उनके मठ में दीपंकर के हाथ की कुछ पुस्तकें हैं, रे-डिङ्. चलने पर वे उन्हें दिखाएँगे। उस समय रे-डिङ्. रिम्पो-छे तिब्बत के राजा नहीं हुए थे। अबकी बार जब उनसे मिला, तब यह चिट्ठी मिली। और उस चिट्ठी में पुस्तक का जिक्र नहीं। यदि मुझसे यह बात ल्हासा में ही कह दी गई होती, तो शायद मैं ऐसी खतरनाक यात्रा को न करके उस समय को किसी दूसरे मठ में लगाता। इससे तो हजार गुना अच्छा होता, यदि मैं रिम्पो-छे के पत्र को न लाया होता। संभव है, उस समय ऐसा अच्छा ठहरने का स्थान न मिलता, किंतु उससे लाभ होता।

रे-डिङ्. विहार को आचार्य दीपंकर के शिष्य ब्रोम्-स्तोन्-पा (1003-64 ई0) ने आचार्य के देहांत (1054 ई0) के बाद बनाया था। ब्रोम्-स्तोन्-पा भिक्षु न होते हुए भी आचार्य का प्रधान शिष्य था, और तिब्बत में उनके पहुँचने के वक्त से ही वह छाया की भाँति बराबर साथ रहा। उसके बनाए विहार में आचार्य की चीजों का होना जरूरी ही ठहरा। इन चीजों में ऊपर कहीं एक तालपत्र की पुस्तक का बस्ता है, जिसका आधा भाग जल गया बतलाया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ पुराने चित्रपट हैं, जिनमें दो वे हैं, जिनको चित्रकार ने दीपंकर को देखकर बनाया था, और जिनका वर्णन दीपंकर के पुराने जीवन-चरित्र में भी आता है। अफसर भिक्षु ने दूसरी चिट्ठी के खोलने से पहले कहा था, कि सोने का चढ़ावा चढ़ाने से दीपंकर वाले दोनों चित्रपट बाहर लाए जा सकते हैं, उस वक्त फोटो ले लेना, पर दूसरी चिट्ठी में कुछ न देखकर हमने फिर चित्रपट की बात छोड़ दी।

मध्याह्न भोजन के बाद एक पथ-प्रदर्शक के साथ हम भिन्न-भिन्न मंदिरों के दर्शन के लिए चल पड़े। पहले पश्चिम भाग के ग्-र्-बुम् मंदिर में गए। मंदिर छोटा है, जिसमें दीपंकर, ब्रोम्-स्-तोन्-पा आदि की छोटी-छोटी मूर्तियाँ हैं। गुम्बा में भिक्षुओं की रजिस्टर्ड संख्या तो 370 बतलाई जाती है, किंतु कुत्तों की संख्या भी काफी है। ग्सेर्-बुम् (लाख सुवर्ण) मंदिर में सोना तो नहीं दिखलाई पड़ा, पर ठीक द्वार पर ही एक कुत्ता मरा पड़ा था, जिसे हटाने की जरूरत अभी लोग अनुभव नहीं कर रहे थे। वहाँ से परिक्रमा में होते हम स्गोम्-प-ल्ह-खङ्. में पहुँचे। स्गोम्-पङ्.ब्रोम्-स्-तोन्-प का (मृ. 1064 ई0) प्रशिष्य तथा श-र-ब्रा का शिष्य था, समय बारहवीं सदी। मंदिर के भीतर बहुत-सी मूर्तियाँ हैं, और दीवारों पर बहुत से चित्रपट लटक रहे हैं। दीवारों पर के पुराने चित्रों का भोट देश में मिलना मुश्किल है, क्योंकि लोग-समय पर चित्रों को नया करते रहते हैं किंतु चित्रपटों में हमें पुराने मिल सकते हैं। तिब्बत में आने के बाद आज ही हमें भारतीय चित्रपट दिखलाई पड़े। कुछ ऐसे चित्रपट इस मंदिर में भी हैं। इसके पास ही तम्-चन् का पवित्र देवदार है, जिसके ऊपर भोट का महान् देवता निवास करता है। श्रद्धालु नाती-ला ने इस देवता के ऊपर एक चाँदी का टका* चढ़ाया। अब हम चलकर पूर्वी किनारे पर आ गए। तुमको यह भी मालूम होना चाहिए कि यहाँ के कितने ही देवदारों के नाम पुराने ग्रंथों तक में दर्ज हो गए हैं। पश्चिम दिशा में चन्दन-द्कर्-पो (श्वेत चंद) और चन्दन-द्मर-पो (रक्त चन्दन) हम देख चुके थे। अब पूर्व और गुब्-सिल् और योन्-तन् (गुण) के दो देवदारों को देखा। इन पुराने देवदारों में कितने अब सूख गए हैं, पर भी उनको कायम रखा गया है। अब हम प्रधान देवालय (ग् चुग्-ब्लग्-खङ्.) की ओर चले। रास्ते में ऊपर की ओर एक तल्ले की बहुत-सी घरौंदे जैसी अस्तव्यस्त कोठरियाँ हैं। इन्हीं में यहाँ के भिक्षु रहते हैं।

प्रधान देवालय यहाँ का भी स्तग्-लुङ् के प्रधान देवालय की तरह भीतरी आँगन वाला है। हाँ इसकी दीवारें उतनी ऊंची नहीं हैं। यह आँगन भी पीछे से जोड़ा मालूम होता है, क्योंकि ब्रोम्-स्तोन् (डोम्-तोन्) का बनाया छोटा मंदिर आँगन के पूर्वोत्तर कोने पर है। दक्खिन का भाग खम्भों के वरांडे में है, जिसके पश्चिमी भागों में चौरासी सिद्धों के चित्र भीत पर उकेरे हुए हैं। चित्र बहुत पुराने नहीं हैं, तो भी उनमें कितनी ही पुरानी परंपरा है। पश्चिमी वरांडे

या बारादरी से होते हुए हम उत्तर भाग के पश्चिम वाले देवालय में घुसे। टार्च हमारे हाथ में थी। भीतर दो स्तूप और बुद्ध तथा मैत्रेय की मूर्तियाँ हैं। दीवारें तेईस-चौबीस हाथ से कम ऊँची न होंगी, और उनके सहारे कन्-जुर्-तन्-जुर् की पुस्तकें छत तक चुनी हुई हैं। यह सभी पुस्तकें हाथ से सुंदर अक्षरों में लिखी हैं। इनमें से कितनी ही सात सौ वर्ष की होंगी। किन्हीं-किन्हीं पर पहले के मालिकों के नाम भी हैं। ग्रब्-फू-पा नाम के किसी विद्वान का नाम बहुत-सी पुस्तकों में देखा जाता है। इस देवालय के पास पूर्व की ओर दूसरा देवालय है। इसमें भी स्तूपों और मूर्तियों के अतिरिक्त वैसी ही पुस्तकों की छल्लियाँ दीवार के सहारे खड़ी हैं। कुछ पुस्तकों के पन्ने तो कीड़े खा भी रहे हैं, पर खाकर खत्म करने में कीड़ों को अभी शताब्दियाँ लगेंगी। इस समय कीडों के भक्ष्य होने के सिवा इनका कोई प्रयोजन भी नहीं मालूम होता। यह इस तरह नहीं रखी गई हैं, कि इनमें से कोई पुस्तक निकाली जा सके। मैं सोच रहा था, कि भोट देश के पुराने मठों में कैद इन पुस्तकों का कभी उद्धार होगा? सोचने से तो यही मालूम होता है, कि किसी मुहम्मद बिन्-बखतियार का पैदा होना असंभव होने से शायद समय-समय पर मंदिरों को तबाह करने वाले अग्निदेव ही इनका उद्धार करें, अथवा शायद किसी समय ज्ञानपूर्वक या क्षेमपूर्वक ही इनका उद्धार हो। तीसरी बात अधिक जँचती है, किंतु अभी तो उसके लिए बहुत-क्षीण-सी 'लाली' पूर्व की ओर दिखाई पड़ती है। फिर सोचने लगा, क्या नालन्दा और विक्रमशिला में भी शताब्दियों से एकत्र ताल की पोथियों को इसी प्रकार रखा होगा, जबकि मुहम्मद बिन्-बखितयार की फौज आग और तलवार लेकर उनके द्वार पर पहुँची? पर ऐसी छल्ली बनाने में ताल की पुस्तकों का आकार बाधक था।

अन्त में सबसे कोने वाले पुराने मंदिर में गए। यह औरों की भाँति विशाल नहीं है, पर डोम्-तोन् का बनवाया होने से यह परम पवित्र है। इसके भीतर मंजुवज्र की एक छोटी-सी पीतल की मूर्ति है। यह मूर्ति खो-फु-लो-च-व (जन्म 1173 ई.) के पास थी। यही वह लो-च-व है, जो सन् 1200 में विक्रमशिला के प्रधान आचार्य शाक्य श्रीभद्र को नेपाल से भोट ले आया था। पश्चिम ओर की दीवार पर प्रायः पाँच-छह हाथ ऊपर काँच लगे दो बक्सों के भीतर दीपंकर श्रीज्ञान के वे दो चित्र हैं, जिन्हें चित्रकार ने उन्हें देखकर बनाया था। दक्षिण ओर के चित्रपट में आचार्य के बाएँ हाथ में एक तालपत्र की पुस्तक है, और दाहिना हाथ उपदेश-मुद्रा में है। चेहरे पर बुढ़ापा तथा खोपड़ी और मुँह का लम्बापन भी बतलाते हैं, कि उक्त परंपरा में कुछ सत्य का अंश है। वैसा तो तुम जानते ही हो, कि सभी धर्म के दरबार में। धर्म वस्तुतः झूठ की आयु को लम्बा करने में बड़ा सहायक होता है। इस मन्दिर में भी झूठ का एक बड़ा भारी इश्तहार है वर्तमान रे-डिङ्. लामा के (जिनकी आयु इस समय बाईस वर्ष की है) पैर का एक काले पत्थर का निशान, जो काँच के भीतर रखा हुआ है। श्रद्धालु भक्तों से कहा जाता है, कि बचपन में लामा रिम्पो-छे ने पैर को सहज स्वभाव से पत्थर पर रख दिया था और उसपर यह निशान उतर आया। यदि समन्तकूट और नर्मदा नदी की पहाड़ी पर बुद्ध के बड़े-बड़े पद-चिह्न उतर सकते हैं, तो यहाँ एक अवतारी लामा के छोटे-से पद-चिह्न के उतरने में कौन-सी असंभव बात हो सकती है? यदि बुद्ध अपने भक्तों के झूठ के इस तूफाने-बदतमीजी को देखते, तो क्या कहते?

अब हम दूसरे नम्बर वाले मन्दिर के द्वार के स्तम्भागार में आए। रे-डिङ्. के पुराने चित्रपट आजकल यहीं टाँगे गए हैं। इन चित्रपटों की संख्या दर्जन से अधिक है। सभी चित्र अजन्ता की चित्रकला से अभिन्न हैं। मुझे तो आशा न थी, कि अजन्ता से इतनी समानता रखने वाले चित्रपट यहाँ हो सकते हैं। दो में तो अजन्ता के प्रसिद्ध बोधिसत्व जैसी खड़ी तस्वीर है - वही आभूषण, वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुन्दर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर-प्रदेश। फोटो लेने की अनुमति न होने से मैं उनकी नकल भारत नहीं ला सकता, इसका बड़ा अफसोस रहा।

स्थान पर लौट कर मैंने धर्मवर्धन को एक चित्रपट की नकल करने के लिए भेजा। उन्होंने अभी शिर को भी पूरा नहीं उतारा था, कि हुक्म आया-रे-डिङ्-रिम्पो-छे के पत्र में अनुमति नहीं है, इसलिए नकल नहीं कर सकते। आज के बर्ताव से चित्त को अत्यन्त क्षोभ हुआ। रे-डिङ् के लिए बहुत खेद हुआ। यदि उन्हें मंजूर न था, तो ल्हासा में ही क्यों नहीं कह दिया? हाँ- कह कर वैसा पत्र लिखना कभी भद्रोचित नहीं कहा जा सकता। इस मठ में एक बार आग लगी थी, जिसमें ये चित्रपट बाल-बाल बचे हैं। नहीं कहा जा सकता, कि भारतीय कला की अमूल्य निधि और दीपंकर के हाथ की यह पवित्र पुस्तक (जिसमें शायद उनकी हिंदी में रचित वज्रासन-वज्रगीति भी हो) न जाने कब इन नादान रक्षकों के हाथ से सर्वदा के लिए नष्ट हो जाय। जब दूसरी ओर ख्याल करता हूँ, तो मुझे ऐसे क्षोभ का कारण भी नहीं मालूम होता। प्रभुता पाकर ऐसा भाव होना संसार में सर्वत्र देखा जाता है। पवित्र समझी जाने वाली वस्तुओं के साथ भी ऐसा बर्ताव होता ही है। मुंह पर अप्रीतिकर बात न करना भी मनुष्य का स्वभाव है। खिलाड़ी सभी बाजियाँ नहीं जीता करते, तो मुझे इस असफलता पर क्षोभ क्यों?

ब्रग्-र्ग्यब्

7-8-34

रे-डिङ् से चलते वक्त आकाश मेघाच्छन्न था। आगे चलने पर बूंदाबांदी भी शुरू हुई। रास्ते में एक-आध जगह चमरी के हलों से खेत जोते देखे, यह शायद हमारे यहाँ के माघ-पूस की जुताई की भाँति खेत को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए होगा। बारह बजे हम फिर-दो के घाट पर पहुँचे। उतरने में बहुत देर न लगी। उस दिन फुन्-दो ही में रहना था।

सतग्-लुङ् से लिए दोनों आदमियों को छोड़ना था, इसलिए एक आदमी की जरूरत थी। गंदन्-छोस् कोर के लिए साढ़े नौ साङ् (दो रुपये दस आने) तय हुआ। सीधे जाने से दो दिन का ही रास्ता है। आज लम्बी मंजिल थी और छ-ला की बड़ी जोत को पार करना था, इसलिए सात बजे ही रवाना हुए। आखिरी पाँच मील के रास्ते को छोड़ बाकी पहले ही वाला रास्ता था। नये रास्ते में रिन् छेन्-ब्रग् (रत्नशिला) मठ मिला। हमारा नया नौकर जल्दी गंदन्-छो-कोर् पहुँच कर लौटना चाहता था, इसलिए वह नाक की सीध पर आगे-आगे खच्चर ले जा रहा था। सामने एक पहाड़ पर कुछ स्तूपों सहित एक मठ देखा। उसने समझा, यही पोतो है, और हमें लेकर तीन बजे यहाँ पहुँच गया। पूछने पर मालूम हुआ, यह तो ब्रग्-र्ग्यब् (पृष्ठशिला) विहार है। उस मठ का संस्थापक ब्रग्-र्ग्यब् डोम्-तोन् के शिष्य पो-तो-प (1027-1104 ई.) का समकालीन था। इस प्रकार मठ की प्रथम स्थापना ग्यारहवीं सदी में हुई थी, पर उस समय का मठ कुछ नीचे था। आजकल इस मठ में एक अवतारी लामा रहता है। इससे पहले का तीसरा लामा बड़ा सिद्ध समझा जाता था। उसी की समाधि वाले घर में हम लोगों का आसन लगा। समाधि नहीं, एक छोटे से स्तूप के अन्दर लामा का मृत शरीर ही पद्मासनासीन रखा हुआ है। इस प्रकार के सुरक्षित रखे मृत शरीर को यहाँ वाले मर्-दोङ् कहते हैं। मर जाने पर शरीर को नमक के भीतर रख दिया जाता है। दो महीने में शरीर सूख जाता है। फिर शरीर पर एक प्रकार का लेप करके स्तूप में रख दिया जाता है। किन्हीं-किन्हीं स्तूपों में छोटे छिद्र रखते हैं, जिससे लोगों को लामा का दर्शन होता है। हमारे पास के मृत लामा के स्तूप का छिद्र काफी बड़ा है। हमने लैम्प की रोशनी में फोटो लेने की कोशिश की, सफलता हो तब।

ल्हासा

10-8-34

परसों शाम को मुझे ल्हासा लौट आना पड़ा। मैंने एक सप्ताह और बाहर ही रहने का विचार किया था। पो-तो, गंदन्-छो-कोर्, रे-वा जैसे मठ तथा भोट-सम्राटों के समय के दो पाषाण-स्तम्भों को देखना जरूरी था, किन्तु परसों सवेरे हमारे सो-नम्-ग्यंजे पर फिर पागलपन आ गया। उसने और जगह जाने से इन्कार ही नहीं कर दिया, बल्कि वह अपनी लम्बी तलवार पर हाथ रखने लगा। भोट में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता, और यह आदमी तो मन्-खम् प्रदेश का रहने वाला है, जहाँ पर लोग मृत्यु से खेल करते हैं। इन्हीं कारणों से दीर्घ और कठिन चढ़ाई चढ़ कर, प्रायः तीस-बत्तीस मील की दौड़ लगा, 8 अगस्त को मैं ल्हासा चला आया।

तुम्हारा - राहुल सांकृत्यायन

बोध प्रश्न 3

1) इस यात्रा-वृत्तांत के लेखक कौन हैं?

....

2) राहुल सांकृत्यायन जी कहाँ की यात्रा पर निकले हैं?

....

3) उनकी यात्रा का उद्देश्य क्या है?

....

4) रेडिङ् पहुँचने पर उन्हें किस तरह का सदमा पहुँचा।

....

....

5) इस यात्रा के क्षेत्र में उन्हें किस बात का अफसोस हुआ।

....

....

10.7 तिब्बत : ल्हासा से उत्तर की ओर : विश्लेषण

यह यात्रा-वृत्तांत राहुल सांकृत्यायन की प्रसिद्ध पुस्तक 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' का एक छोटा-सा अंश है। राहुल की दुर्गम एवं बीहड़ प्रदेशों की यात्राएँ इसी श्रेणी के अंतर्गत आती हैं। एशिया के दुर्गम भूखंडों में, साहसिक यात्राओं का विवरण है। ये यात्राएँ साहसिक एवं मनोरंजक हैं।

10.7.1 प्रतिपाद्य

राहुल सांस्कृत्यायन ल्हासा में दो महीने ग्यारह दिन रहे जहाँ विनय-पिटक का अनुवाद तथा विज्ञप्ति के कुछ हिस्से का संस्कृत में अनुवाद करने के अलावा उन्होंने दो महत्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों अभिसमयालंकार टीका और वादन्याय टीका को ढूँढ निकाला। तिब्बत में चित्रकला पर एक लेख लिखा तथा वहाँ के भिक्षुओं एवं गृहस्थों के अनेक प्रकार के आभूषण भी उन्होंने संग्रहीत किए। फेम्बो नामक स्थान की यात्रा का उद्देश्य बताते हुए राहुल ने लिखा है :

"मालूम हुआ कि इधर दसवीं से तेरहवीं शताब्दी तक के कितने ही विहार हैं, जिनमें रेडिङ् में तो निश्चित ही थोड़ी-सी ताल पत्र के पुस्तकों के होने की बात बतलाई गई है और संभावना औरों में भी है। वस्तुतः यही कारण है इधर आने का।"

राहुल ने अपनी यात्रा के दौरान होने वाली कठिनाइयों का विस्तार से वर्णन किया है। विहारों में पड़े प्राचीन ग्रंथों के अध्ययन एवं संग्रह के लिए वहाँ की सरकार की अनुमति लेनी पड़ी थी फिर भी कहीं-कहीं मठाधीश लोग रोक-टोक करते ही रहते थे। बीहड़ स्थानों की यात्रा करना आसान काम नहीं होता। भौगोलिक कठिनाई के साथ-साथ लुटेरों और चोर बदमाशों का खतरा बना रहता है इसलिए राहुल ने यात्रा को सुचारू रूप से सम्पन्न करने के लिए सारा इंतजाम किया था।

"अभी एक और साथी को जैसे बने (इन्-चीमिन्-ची) जरूर ही ले जाना था, क्योंकि हम ऐसे प्रदेश में जा रहे हैं, जहाँ संख्या और पिस्तौल-बंदूक ही हमारी रक्षा कर सकती है।"

राहुल ने तिब्बतियों में व्याप्त घोर अंधविश्वास को रेखांकित करते हुए लिखा है:

"नाती-ला को बहुत एतराज था - हमारी छाती पर बराबर मि-टि-कु (ग्यारहवीं शताब्दी के आचार्य स्मृति ज्ञान कीर्ति के नाम से फर्जी बनवाई मिट्टी की छोटी मूर्ति) रहती है। हमारे ऊपर गोली नहीं लग सकती। कहने पर उन्होंने पिस्तौल द्वारा परीक्षा कराने से इंकार कर दिया।"

X X X

"पिछले दलाई लामा फेम्बो पधारे थे, इसलिए रास्ता बनाया गया था - बल्कि हमारे दोस्त कादिर भाई के कहने के मुताबिक तो उस पर मोटर चल सकती है। आपको शायद ल्हासा में दलाई लामा के लिए तीन मोटरों का आना मालूम है। उसी अपशकुन से - कुछ लोग कहते हैं - दलाई लामा को शरीर त्याग करना पड़ा है और उनके कृपा पात्र कुम्-मे-लाको, जो बिजली-मोटर जैसी खुराफातें सोचा करते थे, सर्वस्व से हाथ धो एक कोने में निर्वासित होना पड़ा।"

X X X

"एक घेरे में बहुत से स्तूप हैं, जिनमें से एक श-र-बा का शरीर भी है। इसी की बगल में एक छोटा-सा स्तूप है, जिसके महत्व के बारे में कहा जाता है कि संसार में चाहे हिम प्रलय हो जाय, किंतु इस स्तूप पर बर्फ नहीं पड़ेगी।"

उपर्युक्त उद्धरणों से हमें यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि तिब्बत का समाज बहुत ही पारम्परिक और रूढ़िवादी समाज था। तिब्बती अपने धार्मिक रीति-रिवाजों का कठोरता से पालन करते थे। ज्ञान-विज्ञान के प्रति उनमें कोई आग्रह नहीं था शायद इसीलिए पुराने विहारों की तरह ही वहाँ संचित पुराने ग्रंथ भी बुरी अवस्था में पड़े थे। इनके अध्ययन और संरक्षण की कोई उचित व्यवस्था नहीं थी।

''पुस्तकों की छल्लियाँ दीवार के सहारे खड़ी हैं। कुछ पुस्तकों के पन्ने तो कीड़े खा भी रहे हैं, पर कीड़ों को खाकर खत्म करने में अभी शताब्दियाँ लगेंगी। इस समय कीड़ों का भक्ष्य होने के सिवा इनका कोई प्रयोजन भी नहीं मालूम होता। यह इस तरह नहीं रखी गई हैं कि इनमें से कोई पुस्तक निकाली जा सके। मैं सोच रहा था कि भोट देश के पुराने मठों में कैद इन पुस्तकों का कब उद्धार होगा।''

श्रद्धालुओं के बारे में राहुल ने इस यात्रा-वृत्तांत में लिखा:

''हमने एक मानी पार की, फिर देखा, हमारे साथी तो एक छोटी चट्टान पर पत्थर के टुकड़ों को मार रहे हैं और साथ ही कहते जा रहे हैं - चा-फु-मा-फु (चाय प्रदान करो, मक्खन प्रदान करो)। मालूम होता है, सभी श्रद्धालु यहाँ पर चा-फु-मा-फु कहते हैं, तभी तो इस छोटी-सी चट्टान पर पचासों गोल-गोल गड्ढे हो गए हैं।''

अपनी यात्रा के दौरान राहुल ने तिब्बतवासियों के रहन-सहन को भी बहुत करीब से जानने की कोशिश की। तभी तो उन्होंने लिखा कि, ''छ-ला पार करने के बाद ही पुरुषों के बालों में भेद दिखलाई पड़ता है। यह लोग खाम् वालों की भाँति सामने के बालों को कैंची से कटवाते हैं। जहाँ से इस पत्र को लिख रहा हूँ वहाँ से आधे दिन के रास्ते पर ला-ग्त्रिस (जोत-युगल) है, जिसके पार होते ही हम होर्-प्रांत में पहुँच जाते हैं। भोट देश के होते हुए भी वहाँ के स्त्री-पुरुषों की पोशाक में बहुत फर्क है। यह वहाँ के समाज में स्थानीय प्रभाव का चित्रण है। कहीं-कहीं राहुल को लूट-पाट करने वालों का भी भय सताने लगता है। उन्होंने लिखा है:

''उनकी इन बातों पर विश्वास न होता था, बल्कि और संदेह बढ़ता जाता था कि कहीं मार कर सामान लूटने के लिए तो नहीं आया है। हमारे पास सौ रुपए के पैसे भी हैं और कुछ दूसरे सामान भी। ऐसा संदेह करने का कारण था - सो-नम्-ग्यंजे के जन्म-स्थान के लोगों का यही स्वभाव है। उनके देश में लूटमार लोगों का पेशा है।'

इस वर्णन से न केवल स्थान विशेष की स्वाभाविक वृत्ति का पता चलता है बल्कि यात्रा करने वाले की मानसिक स्थिति के बारे में भी जानकारी हासिल होती है। वह हर पल एक तनाव से भी गुजरता है क्योंकि आगे उसे अपने लक्ष्य को पाने की तीव्र उत्कंठा होती है। राहुल ने तिब्बत के स्थानीय निवासियों के स्वभाव का चित्रण करते समय कहीं पूर्वग्रह का परिचय नहीं दिया है बल्कि कठिनाइयाँ और स्थानीय निवासियों के चरित्रांकन में एक संतुलन बनाए रखने की पूरी कोशिश की है।

राहुल ने अपने इस यात्रा-वृत्तांत में प्रकृति का साथ कहीं नहीं छोड़ा। झरने, नदी, पहाड़, जंगल-झाड़ सभी में वे रमते हुए आगे बढ़ते हैं।

''उपत्यकाएँ और उनकी बेटी-पोतियाँ सभी घन-नील-वसना थीं, सिर्फ एक ओर बेरास्ते चलती पचास-साठ चमरियाँ (याक) काला दाग-सा बन रही थीं। यद्यपि दूर-दूर पर सफेद भेड़ों के झुंड चर रहे थे किंतु न हिलने-डुलने के कारण वे जहाँ-तहाँ पड़े पत्थर ही जान पड़ते थे।''

''रे-डिङ् से चलते वक्त आकाश मेघाच्छन्न था। आगे चलने पर बूँदा-बाँदी भी शुरू हुई। रास्ते में एकाध जगह चमरी के हलों से खेत जोते देखे, यह शायद हमारे यहां के माघ-पूस की जुताई की भाँति खेत को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए होगा।''

राहुल के यात्रा-वृत्तांत में मनुष्य और प्रकृति का अटूट रिश्ता चित्रित हुआ है। कहीं-कहीं उन्हें चित्रकला के अद्‌भुत नमूने अपनी तरफ खींचते हैं - "मुझे तो आशा न थी कि अजंता से इतनी समानता रखने वाले चित्रपट यहाँ हो सकते हैं। दो में तो अजंता के बोधिसत्व जैसी खड़ी तस्वीर है वही आभूषण, वही बंकिम ध्वनि, वैसे ही कम और सुंदर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर प्रदेश। फोटो लेने की अनुमति न होने से मैं उनकी नकल भारत नहीं ला सकता, इसका बड़ा अफसोस है।"

जैसा कि यात्राओं में आमतौर से यह संभावना बनी रहती है, तिब्बत के बीहड़ों में यात्रा करते हुए राहुल को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कभी शासनतंत्र की तरफ से बाधाएँ आईं तो कभी मठाधीशों ने अध्ययन व संग्रह में रुकावटें खड़ी कीं। स्थानीय निवासियों की ओर से भी वे हमेशा सशंकित बने रहे। भौगोलिक स्थिति ने अलग से परेशान किया किंतु राहुल अपने लक्ष्य की ओर हमेशा बढ़ते रहे, उन्होंने कभी हार न मानी। स्थितियों को अपने अनुकूल बनाते हुए उन्होंने साहित्य, धर्म व दर्शन की अप्राप्य पुस्तकों का संग्रह किया। तिब्बत की यात्रा में प्राणों को हथेली पर रखकर चलना पड़ता था। राहुल ने लिखा है :

> "पो-तो, गंदन्-छो-कोर, येर-वा जैसे मठ तथा भोट सम्राटों के समय के दो पाषाण-स्तंभों को देखना जरूरी था, किंतु परसों सबेरे हमारे सा-नम्-ग्यंजे पर फिर पागलपन आ गया। उसने और जगह जाने से इंकार ही नहीं कर दिया, बल्कि वह फिर अपनी लम्बी तलवार पर हाथ रखने लगा। भोट में वैसे भी मनुष्य का प्राण बहुत मूल्य नहीं रखता, और यह आदमी तो मन्-खम् प्रदेश का रहने वाला है, जहाँ पर लोग मृत्यु से खेल करते हैं। इन्हीं कारणों से दीर्घ और कठिन चढ़ाई चढकर प्रायः तीस-बत्तीस मील की दौड़ लगाकर 8 अगस्त को मैं ल्हासा चला आया।"

राहुल की तिब्बत-यात्रा का वृत्तांत हमें वहाँ के इतिहास, भूगोल और समाज से परिचित करवाता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि यात्रा-वृत्तांतों ने दुर्गम प्रदेशों का वस्तुनिष्ठ भूगोल लिखने में काफी मदद की। राहुल ने तिब्बती समाज के बारे में लिखते हुए बहुत संयम से काम लिया है शायद इसीलिए उनके लेखन में यथार्थ ज्यादा विश्वसनीय रूप में अंकित हुआ है। उनके यात्रा-वृत्तांतों में निरपेक्ष दृष्टि, आत्मीयता एवं स्वच्छंदता के गुण विद्यमान हैं। व्यक्ति चित्रों के साथ मंदिरों, मठों और स्मारकों के चित्र उनके यहाँ भरपूर हैं। वे वस्तु एवं दृश्य वर्णन में केवल उसके वर्तमान स्वरूप का ही परिचय नहीं देते, बल्कि उसकी ऐतिहासिक सच्चाई को भी खोजने का प्रयास करते हैं। स्थान विशेष के ऐतिहासिक महत्व को रेखांकित करने में वे नहीं चूकते हैं। डॉ० रघुवंश के अनुसार, "उच्चकोटि के यात्रा-साहित्य में दृश्य-सौंदर्य, जीवन का रूप, इतिहास, पुरातत्व, अर्थनीति सब मिलकर एक रस हो जाते हैं।" तिब्बत की यात्राओं में मठों के वर्णन के प्रसंग में भी राहुल की ऐतिहासिक प्रतिभा देखने ही योग्य है। उनके यात्रा-वृत्तांतों की एक और विशेषता की ओर ध्यान आकर्षित करना जरूरी लगता है। वे स्थानों की ऐतिहासिक सम्पदा के वर्णन के साथ पुरानी दंतकथाओं, जनश्रुतियों एवं कहावतों का भी उपयोग करते हैं। इससे यात्रा-वर्णन में सरसता और रोचकता का समावेश होता है। इसमें कोई दो मत नहीं है कि राहुल के यात्रा-वर्णनों के बीच-बीच में आने वाली लोक-कथाओं ने उनके यात्रा-वृत्तांतों की रोचकता बढ़ाई है। राहुल के इस यात्रा-वृत्तांत में उनकी ऐतिहासिक, वैज्ञानिक एवं मानवीय दृष्टि का परिचय मिलता है।

10.7.2 भाषा-शैली

भाषा विचारों और अनुभवों को प्रकट करने का माध्यम है और शैली उसका एक तरीका। भाषा किसी भी साहित्यिक रचना की शक्ति होती है। भावों को प्रकट करने की पूर्ण क्षमता ही भाषा का सबसे बड़ा गुण है। भाषा में स्वाभाविक प्रवाह, सरलता, मृदुलता, लोच और गंभीरता जैसे गुण होने चाहिए। खड़ी बोली हिंदी को समृद्ध करने में जिन लेखकों का महत्वपूर्ण योगदान है, राहुल सांकृत्यायन उनमें से एक हैं। वे कई भाषाओं के जानकार थे। संस्कृत, पालि, प्राकृत, भोजपुरी में तो उन्होंने लिखा ही है, इसके अलावा रूसी, सिंहली, अंग्रेजी आदि भाषाओं पर उनका अधिकार था। राहुल हिंदी साहित्य को बहुआयामी बनाना चाहते थे। यात्रा-वृत्तांत जैसी नई विधा को साहित्यिक प्रतिष्ठा दिलाने में राहुल ने महत्वपूर्ण योगदान किया।

राहुल की रचनाओं में संस्कृतनिष्ठ हिंदी का भव्य प्रयोग मिलता है। उपन्यास, कहानी, यात्रा-वृत्तांत, आत्मकथा एवं निबंध जैसी विधाओं में उन्होंने संस्कृतनिष्ठ हिंदी का सहज प्रयोग किया है। दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति, गूढ़ भावों के निदर्शन एवं व्यक्ति चित्र प्रस्तुत करने में उन्होंने प्रायः ऐसी ही भाषा का इस्तेमाल किया है। अपने जीवन के अनुभवों को लिखते समय राहुल ने सरल हिंदी का भी प्रयोग किया है। इसके अलावा उन्होंने अंग्रेजी, अरबी, फारसी, तिब्बती, रूसी, फ्रेंच और चीनी भाषा के शब्दों का इस्तेमाल भाषा को संप्रेषणीय एवं समृद्ध बनाने के लिए किया है। वे स्थानीय बोलियों के प्रबल समर्थक थे। भोजपुरी में उन्होंने आठ नाटक लिखे! राहुल की भाषा मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों के मेल से बहुत प्रभावशाली बन गई है। अभिव्यक्ति के लिए जरूरत पड़ने पर वे नए शब्द भी गढ़ लेते थे।

पात्र, स्थिति एवं भाव के अनुकूल राहुल सांकृत्यायन भाषा का प्रयोग करते हैं। 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' में उन्होंने संस्कृतनिष्ट और सहज सामान्य दोनों तरह की भाषा का उपयोग किया है। मसलनः

> ''उपत्यकाएँ और उनकी बेटी पोतियाँ सभी घन-नील-वसना थीं।''

X X X

> ''पुराने विहारों की जैसी दुरवस्था आमतौर से तिब्बत में दिखाई देती है, वैसी ही इसकी भी है।''

X X X

> ''वही आभूषण वही बंकिम ठवनि, वैसे ही कम और सुंदर आभूषण, वैसी ही विशाल भुजाएँ और वक्ष, वैसा ही उदर-प्रदेश।''

उपर्युक्त उद्धरणों में हम राहुल की संस्कृतनिष्ठ भाषा और आलंकारिकता के प्रभाव को आसानी से देख सकते हैं। दूसरी ओर सरल-सामान्य भाषा का प्रवाह भी देखने ही योग्य है:

> ''नहीं कहा जा सकता कि भारतीय कला की अमूल्य निधि और दीपंकर के हाथ की यह पवित्र पुस्तक (जिसमें शायद उनकी हिंदी में रचित वज्रासन-वज्रगीति भी हो) न जाने कब इन नादान रक्षकों के हाथ से सर्वदा के लिए नष्ट हो जाए।''

जहाँ तक शैली का प्रश्न है राहुल ने आमतौर से वर्णनात्मक एवं विवरणात्मक शैली का प्रयोग किया है। यात्रा-साहित्य भी इन्हीं शैलियों में लिखा गया है। क्योंकि लेखक का मूल उद्देश्य यहाँ स्थान-विशेष का वर्णन करना होता है।

उदाहरण के लिए कुछ अंश प्रस्तुत हैं:

> ''आजकल वर्षा ऋतु है। भूले-भटके कितने ही बादल हिमालय के इस पार भी आ पहुँचते हैं और मैदान और पहाड़ जिधर देखो उधर ही हरी मखमली छोटी-छोटी घास बिछी हुई है।''

'तिब्बत ल्हासा से उत्तर की ओर जो 'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' का ही एक अंश है, पत्र शैली में लिखा गया है :

''प्रिय आनंद जी,

.... स्थान पर लौट कर मैंने धर्मवर्धन को एक चित्रपट की नकल करने के लिए भेजा। उन्होंने अभी शिर को भी पूरा नहीं उतारा था कि हुक्म आया - रे-डिङ्-रिम्पो-छे के पत्र में अनुमति नहीं है, इसलिए नकल नहीं कर सकते। आज के बर्ताव से चित्त को अत्यंत क्षोभ हुआ।

तुम्हारा

- राहुल सांकृत्यायन''

यहाँ लेखक ने स्थान-विशेष का वर्णन करते हुए अपनी आत्मीयता, वैयक्तिकता और भावना का भी प्रदर्शन किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस शैली में राहुल ने स्थान-संबंधी वृत्तांत प्रस्तुत करने के साथ-साथ अपनी प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं। इसमें यात्रा का उद्देश्य भी स्पष्ट हो गया है। इस शैली में लिखे गए राहुल जी के यात्रा-वृत्तांत रोचक, व्यावहारिक एवं रचनात्मक हैं तथा उनमें सहजता, सरसता और आत्मीयता का गुण विद्यमान है।

बोध प्रश्न 4

1) लेखक की यात्रा के वर्णन की व्याख्या कीजिए।

....

....

....

....

....

10.8 सारांश

'एशिया के दुर्गम भूखंडों में' लेखक की 1933 से 1937 तक की कुछ यात्राओं का संकलन है। इस पुस्तक में राहुल जी की चार यात्राएँ हैं। पहली लद्दाख, दूसरी तिब्बत, तीसरी ईरान और चौथी अफगानिस्तान से संबंधित है। तिब्बत यात्रा में ल्हासा, चाङ्, सक्य, अनम् तथा नेपाल का वर्णन है। यह लेखक की सन् 1934 में की गई तिब्बत की दूसरी यात्रा है जिसमें पत्र-शैली का सुंदर प्रयोग किया गया है।

तिब्बत-यात्रा के दौरान राहुल को जिन कठिनाइयों से गुजरना पड़ा था, उन सारे अनुभवों को उन्होंने बहुत ही आत्मीयता और तटस्थता के साथ रेखांकित किया है। इस यात्रा में उनका ज्यादा जोर इस बात पर था कि वहाँ की ऐतिहासिक, धार्मिक और दार्शनिक पुस्तकों का अधिक से अधिक अध्ययन व संग्रह कर लिया जाए। इसलिए राहुल के लिए यात्रा मिशन की तरह होती थी। इस यात्रा-वृत्तांत में तिब्बत का समाज, इतिहास, भूगोल, संस्कृति, धर्म व दर्शन अभिव्यक्ति पा सके हैं। राहुल ने वहाँ की सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों, विश्वासों एवं परंपराओं पर स्थान-स्थान पर प्रकाश डाला है। ज्ञान-विज्ञान का अभाव और कूपमंडूकता वहाँ के समाज में बहुत दिखाई देती है। एक तरह से कहा जाए तो, वहाँ के समाज के विषय में 'लकीर के फकीर' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। ज्ञानार्जन के प्रति कोई ललक वहाँ के लोगों में नहीं दिखाई देती। महत्वपूर्ण ग्रंथ सामग्री मठों में रखी हुई नष्ट हो रही है। यह सामाजिक गतिशीलता का प्रमाण नहीं माना जा सकता। लूटपाट और हत्या भी तिब्बत समाज का अहम हिस्सा है, राहुल के लेखन से तो ऐसा ही प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति का यह प्रभाव ही राहुल के यात्रा-वृत्तांतों की विशेषता है। कहीं-कहीं प्रकृति का रेखांकन भी मोहित करता है। भाषा और शैली सरल, सहज और प्रवाहपूर्ण है। इसलिए रोचकता बनी रहती है। अंत में, यह कहना गलत न होगा कि राहुल सांकृत्यायन के यात्रा-वृत्तांतों में एक यायावर की भटकन ही नहीं है बल्कि एक खोजी व्यक्ति की उत्कंठा, लगन और समर्पण भी है। हिंदी में ऐसा बहुत कम देखने को मिलता है।

10.9 शब्दावली

साइत	:	समय, मुहूर्त
उपत्यका	:	तराई, घाटी
घन नील वसन	:	नीले कपड़े वाली
प्रशिष्य	:	प्रधान शिष्य
पाषाण स्तम्भ	:	पत्थर का खंभा
कमखाब	:	रेशमी कपड़ा
चमरी	:	याक- मादा
तीर्थाटक	:	तीर्थ यात्री
तीर्थाटिका	:	महिला तीर्थ यात्री
एकादशमुख	:	ग्यारह मुँह वाले
पद्मसंभव	:	भगवान बुद्ध
परित्यक्त	:	जो छोड़ दी गई हो
निषिद्ध	:	वर्जित, मना
टका	:	रुपया

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) मेरी तिब्बत यात्रा, मेरी लद्दाख यात्रा, किन्नर देश में

2) स्थूल वर्णन प्रधान, मनःस्थिति, रेखांकन

बोध प्रश्न 2

क) यात्रा-वृत्तांत में लेखक का उद्देश्य स्थान विशेष के आचार-विचार, मनोरंजन तथा जीवन के प्रति दृष्टिकोण का चित्रण करना होता है।

ख) यात्रा के दौरान लेखक जिन स्थानों, स्मारकों, दृश्यों को देखता है, उनसे वह आत्मीय संबंध स्थापित कर लेता है।

ग) यात्रा-वृत्तांत में रोचकता लाने के लिए लेखक स्थान विशेष से जुडी लोक-कथा, या रैत कथा आदि का उल्लेख करता है।

2) क) प्रकृति का आनंद उठाने के लिए

ख) ऐतिहासिक ज्ञान अर्जित करने के लिए

ग) सामाजिक-सांस्कृतिक रुचियों एवं व्यवहारों को समझने के लिए

3) दोनों में यात्रा होती है। रिपोर्ताज में यात्रा साधन है, यात्रा-वृत्तांत में साध्य है।

बोध प्रश्न 3

1) राहुल सांकृत्यायन जी

2) रेडिङ् विहार (तिब्बत)

3) वे बौद्ध धर्म के हस्तलिखित ग्रंथों की तलाश में गए हैं।

4) वे जिन ग्रंथों की तलाश में आए थे, उनकी प्रतियाँ नहीं ला सके।

5) उन्हें इस बात का अफसोस हुआ कि मठों में ग्रंथ नष्ट हो रहे हैं, लेकिन उन्हें ग्रंथों को बचाने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा है।

बोध प्रश्न 4

1) इस प्रश्न के उत्तर में उनकी यात्रा के अनुभव की चर्चा कीजिए। व्यक्तियों और घटनाओं के बारे में उनके सजीव चित्रण की चर्चा कीजिए। इस चित्रण में उनकी भाषा शैली का भी उल्लेख कीजिए।

आपका उत्तर पूरी इकाई पर आधारित हो। लगभग एक पृष्ठ का हो।

PART-II

Subject: Hindi Compulsory

Course Code : BA 302	Author : Vibha Malik
अध्याय संख्या : 1	
हरियाणावी भाषा का विकास और लोक साहित्य	

अध्याय की संरचना

1.0 अधिगम उद्देश्य

1.2 परिचय

1.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

1.3.1 हरियाणवी भाषा का उद्भव और विकास

1.3.2 हरियाणवी भाषा की बोलियाँ

(i) बाँगरू

(ii) कौरवी

(iii) अहीरवाटी

(iv) मेवाती

(v) ब्रजबोली

(vi) बागड़ी

1.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

1.4.1 हरियाणा की सांग परम्परा

1.4.2 सांग परम्परा का उद्भव व विकास

(i) आरम्भिक काल

(ii) विकास काल

(iii) उत्कर्ष काल (स्वर्ण युग)

(iv) आधुनिक काल

1.5 स्वयं प्रगति जाँच/जांचें

1.6 सारांश

1.7 शब्दावली

1.8 स्वयं मूल्यांकन परीक्षा

1.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखें

1.10 संदर्भ ग्रंथ

1.0 अधिगम उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद निम्न में सक्षम हो सकेंगे–

- हरियाणवी भाषा की पहचान करना।
- हरियाणवी की उपलब्धियों को जानना।
- हरियाणवी लोक साहित्य को जानना।

1.1 परिचय

हरियाणवी भारत के हरियाणा प्रान्त में बोली जाने वाली भाषा है, वैसे तो हरियाणा में कई लहजे हैं साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों की भिन्नता है। लेकिन मोटे रूप से इसको दो भागों में बांटा जा सकता है। एक उत्तर हरियाणा में बोले जाने वाली तथा दूसरी दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली। उत्तर हरियाणा में बोले जाने वाली थोड़ा सरल होती है, दक्षिण हरियाणा में बोले जाने वाली ढेठ हरियाणवी कहलाई जाती है। यह हिन्दी भाषा की उपभाषा है। इसे खड़ी बोली का ही दूसरा रूप कहा जाता है। यह व्यापक रूप से उत्तर भारतीय राज्य हरियाणा के साथ–साथ दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रों में आमबोल चाल में भी प्रयुक्त होती है। वर्तमान समय में शहरों में भी अनौपचारिकता बातचीत में इसका प्रयोग होता रहा है। समय–समय पर विभिन्न विद्वानों ने हरियाणवी भाषा को विविध नामों से अभिहित किया है, जिसमें बांगरू, दक्षिणी हिन्दी, जाटू, खड़ी बोली आदि प्रमुख हैं। हरियाणवी भाषा वर्तमान में पश्चिमी हिन्दी (उपभाषा) की पाँच बोलियों में से एक प्रमुख बोली है। हरियाणावी बोली में लोक साहित्य का अपना समृद्ध भण्डार है। हरियाणवी बोली की लिपि देवनागरी है। बहला बोली होने के कारण 'न' ध्वनि प्रायः ण के रूप में प्रयुक्त होती है।

1.3 अध्ययन के मुख्य बिन्दु

1.3.1 हरियाणवी भाषा का उद्भव और विकास

हरियाणवी शब्द हरियाणा प्रदेश के निवासियों तथा उनके द्वारा बोले जानी वाली भाषा के लिए प्रयोग किया जाता है। 'हरियाणा' शब्द दो शब्दों के योग से बना है। हरि+यान । 'हरि' शब्द का मानक हिन्दी कोषगत अर्थ है – हरा, हरापन लिए पीला, पीत, पिंगल, विष्णु, इन्द्र, शिव ब्रह्मा, यम, सूर्य, चन्द्रमा, एक पर्वत, एक लोक, एक भू–भाग। 'यान' शब्द, 'सवारी, वाहन, गमन, जाना, अभियान, आक्रमण,' आदि का वाचक है।

हरियाणा में नंदी या वृषभ को राजा के समान सम्मान देते हैं। (नंदी भगवान् शंकर का वाहन है) हर (शिव) पार्वती के भक्ति के किस्से साधारण आदमी की जबान पर आज भी हैं। हर (शिव) के यान के खुरों से यह भूमि पावन होती है। इस दृष्टि के हरयाणा नाम सही बैठता है। इसलिए इस क्षेत्र का नाम हरयाना या हरयाणा सार्थक जान पड़ता है।

'हरियाना' शब्द से ही हरियाणा शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। हरियाणा शब्दों के 'वी' प्रत्यय लगाने से हरियाणवी शब्द की उत्पत्ति हुई है। विद्वान मानते हैं कि हरियाणावी भाषा आर्यों की मूल भाषा थी जो 1500 ई. पूर्व भारत में आई थी।

हरियाणा के भाषा वैज्ञानिक डॉ. जगदेव सिंह ने भी इसे बाँगरू–बाँगडू या हरियाणवी कहा है, इसका उल्लेख उनकी, "'A Descriptive Grammar of Bangru' में मिलता है।

हरियाणवी भाषा वर्तमान में पश्चिमी हिन्दी की पाँच बोलियों में से एक प्रमुख बोली है। पश्चिमी हिन्दी उपभाषा का विकास विद्वानों ने शौरसेनी से माना है, जो प्राकृत भाषा के प्रचलन के समय से एक क्षेत्रीय बोली थी। अतः स्पष्ट है कि हरियाणवी भाषा का विकास शौरसेनी भाषा से हुआ है। हरियाणा भाषा के विकास में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हरियाणवी ने संस्कृत और प्राकृत भाषाओं से शब्दों को ग्रहण किया है।

डॉ. नरेश मिश्र ने इसे बाँगरू का नाम दिया है। डॉ. नरेश मिश्र के मातानुसार, ''बाँगरू नाम एक क्षेत्र विशेष, जो ऊँची भूमि से सम्बन्धित हो उसे 'बांगर' कहते हैं, के आधार पर हुआ है। इसे जादू, देसाड़ी और हरियाणवी नाम से सम्बोधित किया जाता है। आजकल इसे हरियाणवी कहते हैं। हरियाणा का उद्‌भव भी हिन्दी को इसी बोली हरियाणवी के आधार पर हुआ है।''

डॉ. जयनारायण कौशिक के अनुसार इस क्षेत्र की भाषा के लिए बाँगरू, देसी, देसड़ी, देहलवी, ऊँची बोली, खड़ी बोली, जाटू, हरियाणवी, हरियाणी, हरयानवी आदि कई नाम दिए हैं। कुछ का सम्बन्ध भूमि की विशेषता, भाषा की प्रकृति, जाति की बहुलता से है। यहाँ हरियाणवी नाम अधिक उचित है। सरकारी प्रचार–प्रसार में भी 'हरियाणवी' नाम को ही प्रोत्साहित किया जाता है।

डॉ. जयनारायण कौशिक के अनुसार, 'बांगरू का अर्थ है, 'ऊर्ध्व भूमि'। जमना के निम्नतल की अपेक्षा, जिसे हरियाणा का 'खादर क्षेत्र' कहा जाता है, करनाल रोहतक, जींद, हिसार और भिवानी आदि जिलों के क्षेत्र 'ऊर्ध्व' हैं।

इसलिए उन्होंने इस समस्त क्षेत्र को 'बांगर' की संज्ञा प्रदान की तथा इस क्षेत्र की भाषा को 'बांगरू' कहा। बांगरू जब कहा जाता था जब 'हरियाणा' एक अलग इकाई के रूप में नहीं था। अब 'हरियाणा' एक अलग राज्य है और इसके इस क्षेत्र की भाषा दूर–दूर तक अर्थात् हरियणा के अहीरवाटी, मेवात, खादर और बांगर आदि सभी उपक्षेत्रों में अपना प्रभुत्व जमाये हुए है तब इसे हरियाणा की मुख्य भाषा मानते हुए 'हरियाणवी' नाम देना तर्कसंगत जान पड़ता है।

'बांगरू' पश्चिमी प्रदेशों की एक उपभाषा है। इसे ही हरियाणवी, हरियाणी और जाटू नामों से जाना जाता है। डॉ. सोमदत्त का भी यही मत है, 'बांगरू का अभिप्राय उस जन भाषा से लिया गया है जिसे भाषा वैज्ञानिकों ने पश्चिमी हिन्दी की एक उपभाषा बताया है, जो हरियाणवी, हरियाणी, जाटू आदि विभिन्न नामों से पुकारी जाती है।

यहाँ इस क्षेत्र की भाषा को हरियाणा की प्रमुख भाषा मानते हुए इसे 'हरियाणवी' कहना ही तर्कसंगत समझा है। हरियाणा का उद्‌भव भी इसी नाम के कारण हुआ था। इसलिए इसे 'हरियाणवी' कहना ही उचित होगा। अतः हरियाणा प्रदेश की भाषा को 'हरियाणवी' नाम ही दिया गया। हरियाणवी भाषा का सीमावर्ती भाषा व बोलियों से शैली की दृष्टि से एक भाषाई इकाई के रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं है। हरियाणवी भाषा एक लोकभाषा है। इसकी धारा निरन्तर प्रवाहमान रही है। अतः यहाँ की भाषाओं की धारा सदैव शिष्ट भाषा के समानान्तर प्रवाहित रही है। लोक भाषाओं की धारा सदैव शिष्ट भाषा के समानान्तर प्रवाहित रही है। कोई भाषा एकाएक साहित्यक रूप में प्रतिष्ठि नहीं हो जाती अपितु लोक–भाषा के सुधरे हुए रूप से ही साहित्यिक बनकर सामने आती है। यह बात हरियाणवी भाषा पर भी लागू होती है। किसी भी भाषा के विकास में लोक साहित्य का योगदान अवश्य रहता है और लोक साहित्य वहां की जनभावनाओं व लोक संस्कृति का प्रतिबिम्ब होता है। हरियाणा का लोक साहित्य भी इसका अपवाद नहीं। इसी दृष्टि से प्रादेशिक भाषा बोलियों में रचे गए साहित्य के अध्ययन से उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए डॉ. परमानन्द ने लिखा है, ''क्षेत्रीय भाषा की महत्ता को जाने बिना क्षेत्रीय संस्कृतियों व क्षेत्रीय परम्पराओं का भी विशिष्ट अध्ययन नहीं हो सकता। भाषाएं लोक व्यवहार की दर्पण होती हैं। इसके एक–एक शब्द में संस्कृति एवं ऐतिहासिक परम्पराओं को प्रतिबिम्ब रहता है।'' हरियाणा विभाग के लोक साहित्य में भी हरियाणा की संस्कृति के पूर्ण दर्शन होते हैं। हरियाणवी भाषा का यही लोक साहित्य उसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। हरियाणवी लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक सुभाषितों, भजनों, सांगों, आधुनिक काव्य, भक्ति काव्य, भक्ति साहित्य, कहानी, उपन्यासों आदि ने हरियाणवी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है व उसके शब्द भण्डार को समृद्ध किया है।

हरियाणा एक कृषि प्रधान प्रदेश है। यहां के लोग कर्मठ हैं। खानपान व रहन–सहन सरल है। यहां के रहन–सहन, पर्व, विवाह शादी, अध्यात्मिक विश्वास, हास्य–व्यंग्य व विभिन्न ऋतुओं पर गाए जाने वाले गीत हरियाणवी संस्कृति में देखे जा सकते हैं। इन लोकगीतों विभिन्न अवसरों पर नारियों द्वारा गाया जाता है। यहां एक

महत्वपूर्ण बात दिखलाई पड़ती है कि विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों की लय व तर्ज भिन्न होती है। गऊ, ब्राह्मण और गुरूजनों का आदर यहां का मुख्य आदर्श रहा है।

''माता–पिता और सन्त गऊ की कारणी सेवा चाहिए।

इन चारों के चरण पूज के सुरग लोक में जाइए।।''

हरियाणवी लोक–साहित्य में प्रचलित लोक–कथाओं में परियों की कथाएं देव विषयक कथाएं, साहस और पराक्रम की कथाएं, वृत कथाएं, जादू–टोनों से सम्बन्धित कथाएं आदि अनेक रूपों में सदियों से चली आ रही है। इन लोक कथाओं का हरियाणवी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

लोक–सुभाषितों में लोक–प्रचलित हरियाणवी मुहावरों, कहावतों, सूक्तियों, बालकों के बूझ–बूझौवलों ने भी हरियाणवी भाषा के विकास में योगदान दिया है। हरियाणवी मुहावरों व लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में रोचकता व सारगर्भिता का समावेश हुआ है।

हरियाणवी भाषा में प्रचलित व लिखित इस विविधमुखी साहित्य के साथ–साथ न्यादर सिंह बेचैन तथा मटरू लाल गोयल 'मेरठी' द्वारा रचित अल्हा छंद भी मिलते हैं। इन आल्हा छंदो ने भी हरियाणवी भाषा के विकास में अपनी गहरी छाप छोड़ी है।

हरियाणवी भाषा के विकास में हरियाणा में रचित विविध प्रकार के भजन–साहित्य का भी योगदान रहा है। क्योंकि हरियाणा मूलतः धर्म में विश्वास रखने वाला राज्य है। झज्जर जिलमें में जन्मे पण्डित बस्तीराम को हरियाणवी भक्ति साहित्य, में तुलतसीदास कहा जाता है। इसी प्रकार शंकर दास, मान सिंह आदि भजन गायमों ने अपने भजन–साहित्य द्वारा हरियाणवी भाषा को आगे बढ़ाया है। उसकी शब्द–सम्पदा को समृद्ध किया है। आज भी विभिन्न धार्मिक अनुष्ठनों के अवसर पर हरियाणवी भजनों की गूँज सुनाई पड़ती है।

हरियाणवी भाषा में सांग परम्परा भी एक मजबूत परम्परा रही है। हरियाणा में लिखे जाने वाले सांगों का हरियाणवी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण सहयोग रहा है। यद्यपि हरियाणा में सांग परम्परा का आरम्भ तेरहवीं शताब्दी से माना जाता है, किन्तु पण्डित दीपचन्द ने सर्वप्रथम हरियाणवी सांग को साहित्यिक रूप प्रदान किया। आगे चलकर पं. लखमीचन्द ने अपने सांगों के माध्यम से हरियाणवी भाषा को हरियाणा से बाहर निकालते हुए पूरे देश तक पहुँचाया।

अतः हरियाणावी भाषा का उद्‌भावना प्राचीन आर्य भाषाओं से हुआ है तथा समय के साथ–2 अन्य भाषाओं के आदान–प्रदान से अनेक रूप धारण करती हुई आगे बढ़ी है, किन्तु इसकी मूल आत्मा आज भी शाश्वत है। हरियाणा भाषा की भौगोलिक सीमाएं एक ओर दिल्ली, मेरठ, बुलंदशहर, एवं सहारनपुर के भू–भाग की स्पर्श करती है तो दूसरी और अलवर, भरतपुर तक और तीसरी और गंगानगर व अबोहर–फाजिल्का का तक प्रदेश से जा

टकराती है। इस प्रकार बांगरू, खादर अहीरवाटी, मेवाती पर तथा दिल्ली प्रदेश तक हरियाणवी भाषा की भौगोलिक सीमाएं है।

हरियाणवी भाषा की बोलियाँ

हरियाणा की बोलियों के समुच्चय को हरियाणवी का नाम दिया गया है। सरकार ने हरियाणा राज्य का नाम 'हरियाणा' स्वीकार किया है तथा यहाँ की लोक–भाषा का नाम 'हरियाणावी' रखा गया है। हरियाणवी भाषा का क्षेत्र हरियाणा राज्य की सीमाओं से बाहर भी है। ब्रिटिश सरकार ने जब सन् 1911 में दिल्ली को भारत की राजधानी बनाया तो दिल्ली की सुरक्षा हेतु हरियाणवी भाषा–भाषी गाँवों की भी दिल्ली प्रांत में ही रखा। इन ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की बोली हरियाणवी ही है। उधर यमुना पार मेरठ तक हरियाणवी की कौरवी बोली का वर्चस्व है तो हरियाणा से सटे राजस्थानी क्षेत्र भरतपुर तक हरियाणवी का भाव है।

पश्चिमी हिन्दी बोलियों के रूप में हरियाणा प्रदेश में हरियाणवी उपबोलियों में मुख्यतः निम्नलिखित बोलियाँ मानी जाती है।

(i) बाँगरू

(ii) कौरवी

(iii) अहीरवाटी

(iv) मेवाती

(v) ब्रज बोली

(vi) बागड़ी बोली

1. बाँगरू

हरियाणा की प्रमुख 'बाँगरू' मानी जाती है। डॉ. ग्रियसन ने इसे 'बाँगरू' यास 'बाँगड़ू' नाम दिया है। ग्रिर्यसन ने बाँगरू को पश्चिमी हिन्दी की उपभाषा माना है। ये पंजाब के दक्षिण–पूर्वीय भू–खण्ड तथा दिल्ली प्रदेश में बोली जाती है और उत्तर–पश्चिमी की ओर पंजाबी से उत्तर–पूर्व में खड़ी बोली से, दक्षिण–पश्चिमी में राजस्थानी से और दक्षिण–पूर्व में ब्रज से घिरी हैं। इन सीमावर्ती बोलियों का प्रभाव बाँगरू पर भी पड़ा है।

डॉ. ग्रिर्यसन ने इस धरती को ऊबड़–खाबड़ और शुष्क जानकर इसे 'बाँगर' की संज्ञा दी। यहाँ के लोग जो बोली बोलते हैं, उसे 'बाँगरू' के नाम से जाना जाता है।

'बाँगरू' जीन्द, रोहतक, सोनीपत, भिवानी, करनाल, कैथल क्षेत्रों में बोली जाती है। बांगरू के तीन रूप देखे जाते हैं।

1. बाँगरू (खादरी)

2. बाँगरू (शुद्ध खादरी)

3. बाँगरू (खादरी)

अम्बाला जिले की तहसील अम्बाला, खरड़ रोपड़ तथा कुछ भाग नारायणगढ़ एवं जिला करनाल के नगर शाहबाद मारकण्डा तक में बोला जाने वाला रूप है।

बाँगरू (शुद्ध बाँगरू) जिला करनाल के दक्षिण भाग में तथा जींद के आस–पास वाले प्रदेश में बोला जाने वाला रूप ही है।

2. कौरवी

कौरवीहरियाणा की महत्वपूर्ण बोली है। यह बोली सम्पूर्ण अम्बाला एवं मेरठ कमिश्नरियों की बोली है। गंगा, यमुना बीच के सहारनपुर, मुजफ्फरनगर आदि के सम भू–भाग एवं गंगा के पूर्व में बिजनौर, करनाल, रोहतक, दिल्ली आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है। उत्तर में देहरादून, और अम्बाला पूर्व में मुरादाबाद और रामपुर, दक्षिण में बुलन्दशहर और गुड़गांव के अधिकांश लोग यहीं बोली बोलते हैं। मेरठ लिं की बागपत तहसील को टकसाली कौरवी का क्षेत्र स्वीकार किया गया है। कौरवी बोली पश्चिमी में पंजाबी, उत्तर में सहारपुर की खड़ी बोली तथा दक्षिण में बांगरू बोली से घिरी हुई है।

3. अहीरवाटी

अहीरवाटी भी हरियाणवी की एक प्रमुख बोली है। यह बोली, जैसा कि नाम से विदित है कि अहीर जाति–बहुत क्षेत्र में बोली जाती है। साहित्य में अमीरों की बोली अपभ्रंश नाम से प्रसिद्ध है। डॉ. कृष्णचन्द्र यादव की मान्यता है कि आरम्भ में अमीरों की अपभ्रंश बड़ी सीधी–सादी एवं बोलचाल की भाषा थी, किन्तु थोड़े समय पश्चात् अमीरों ने इसे बड़ा उन्नत कर लिया। इस बोली का विस्तार हरियाणा, दिल्ली व राजस्थान में है। हरियाणा में इसका प्रमुख क्षेत्र रेवाड़ी, कोसली, नारनौल, महेन्द्रगढ़, पटौदी तथा झज्जर जिले का खेड़ी खातीवास से सटा क्षेत्र है। भिवानी तथा गुड़गाँव के कुछ क्षेत्रों में भी इस बोली का प्रयोग किया जाता है। दिल्ली के नजफगढ़ क्षेत्र के मोचनपुर के आस–पास रहने वाले अहीर जाति के लोग भी अहरीवाटी बोली बोलते हैं।

अतः स्पष्ट है कि अहरीवाटी बोली बांगरू, बागड़ी तथा मेवाती बोलियों से घिरी हुई है। डॉ. रामपत यादव का मत है कि अहरीवाटी में ब्रज का माधुर्य तथा राजस्थानी व हरियाणवी का ओज भी है।

4. मेवाती

हरियाणा में मेवाती भी एक प्रमुख बोली है। जैसा कि नाम से ही विदित है कि यह बोली मेवात क्षेत्र में बोली जाती है। मेवात हरियाणा, राजस्थान और उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती उस मिश्रित क्षेत्र का नाम है, जहाँ मेव जाति के लोग निवास करते हैं। डॉ. कृष्णचन्द्र यादव ने मेवात की ऐतिहासिकता पर विचार करते हुए इसे 'मत्स्य प्रदेश का स्थानापन्न माना है। उनका विचार है कि मेवात का पूरा क्षेत्र प्राचीनकाल में मत्स्य प्रदेश कहलाता था।

भारत में इम्पीरियल गजेटियर में मेवात की सेनाओं का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि दिल्ली के दक्षिण में स्थित यह भू–भाग जिसमें मथुरा और गुड़गांव जिले के कुछ भाग, अलवर को अधिकांश भाग और भरतपुर जिले का कुछ भाग शामिल है, मेवात कहलाता है।

हरियाणा राज्य में फिरोजपुर झिरका, नूह, सोहना, ताबडू पिनगवां, बीसरू, हथीन, नगीना, बावल, नीम का तिलवारा, बिछौर, उजीना आदि स्थानों के निवासी मेवाती बोली का प्रयोग करते हैं। मेवाती एक सीमांत बोली है। इसके पूर्व में ब्रज, पश्चिम में जयपुरी–मारवाड़ी, उत्तर में अहीरवाटी और दक्षिण में डांगी बोली का प्रचलन है। इस बोली का हरियाणवी भाषा में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

5. ब्रज बोली

वस्तुतः ब्रज के प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश का ब्रज, वृंदावन, मथुरा आदि हैं। किन्तु इस बोली का प्रयोग हरियाणा में भी प्राचीनकाल से होता आ रहा है। ब्रज बोली भारत के विशाल भाग एवं साहित्य में प्रयुक्त होने वाली बोली है। किन्तु हरियाणा में इस बोली का प्रचलन बहादुरगढ़, पलवल, हसनपुर, होड़ल आदि क्षेत्रों में अत्यधिक है। ब्रज बोली मधुर बोली जाने वाली बोलियों में से एक है। इस बोली में कटु व कठोर वर्णों का अभाव रहता है। इसको सुनने वाले इसके प्रति आकृष्ट हुए बिना नहीं रहते। महाकवि सूदर्शन ने अपने काव्य में ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया है।

6. बागड़ी बोली

यह बागड़ क्षेत्र की हरियाणवी भाषा की प्रमुख बोली है। बागड़ी हरियाणा के विस्तृत क्षेत्र में बोली जाने वाली बोली है। इसका राजनीतिक सीमा की दृष्टि से अधिकाशं क्षेत्र राजस्थान में है। बागड़ शब्द वामर्ट, बागट, बग्गड़, बाग्बर आदि रूपों में शिलालेखों पर उत्कीर्ण मिलता है, बांगड़ शब्द विशाल जंगल और विस्तीर्ण नदी किनारे की ऊँची भूमि, जहाँ बाढ़ न आ सके, आदि के अर्थ में प्रयुक्त होता है। हरियाणा के निवासी इसका अर्थ ऊँचे–नीचे रेतीले शुष्क टीले या थली के क्षेत्र के रूप में लेते हैं। हरियाणा का यह क्षेत्र उसके पश्चिमी भाग में है। हरियाणा के सन्दर्भ में जिस बागड़ी बोली का उल्लेख किया जा रहा है, वह राजस्थान के बीकानेर क्षेत्र की न होकर बांगरू से प्रभावित बागड़ी है, क्योंकि ठेठ बागड़ी बोली इससे भिन्न है।

वस्तुतः बागड़ी बोली के क्षेत्र भिवानी के पश्चिमी क्षेत्र बहल से आरम्भ होकर हिसाब के पश्चिमी भाग में सिवानी, दडबा कलां, ऐलनाबाद, चौटाला, डबवाली और सिरसा के निकटवर्ती भागों में व्याप्त है। हरियाणवी भाषा की यह बोली बांगरू, अहीरवाटी शेखावटी और पंजाबी भाषा–भाषियों से घिरी हुई है। बागड़ी बोली की सबसे बड़ी विशेषता है। इसमें 'ऋ' स्वर का अभाव है। इसका उच्चारण 'रि' के समान होता है। इनके लिए 'ड', 'ण', 'व', 'ल' आदि प्रिय ध्वनिया हैं। हरियाणवी के आकारान्त शब्द बागड़ी में ओकारान्त हो जाते हैं जैसे– स्याणा–स्याणों, काणा–काणों आदि।

1.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

1.4.1 हरियाणा की सांग परम्परा

दूसरे का रूप धारण करने के लिए जो वेश धारण किया जाता है, उसे स्वांग कहते हैं। दूसरे शब्दों में रूप धारण करने की जो क्रिया किसी रूप को आरोपित कर उसका प्रतिरूप प्रस्तुत करती है, उसे स्वांग कहते हैं। इन स्वांगों के अनुकरण में मूल की प्रतिच्छाया ही रहती है। डॉ. महेन्द्र भानावत ने लिखा है, " अनुकरणकर्ता विवेकपूर्ण, वेशपूर्ण परिवर्तन करके अपने खेल–तमाशे इस ढंग से प्रदर्शित करता है कि कभी–कभी मूल और अनुकरण का भेद करना भी कठिन हो जाता है। धोखा देने के लिए ढोंग अथवा आडम्बर के रूप में जो वेश परिवर्तन किया जाता है, यह भी स्वांग कहलाता है। फिर 'स्वांग भरना, हिन्दी का प्रसिद्ध मुहावरा भी है जिसका अर्थ भी मूल की नकल करना ही है। खड़ी बोली के लोक जीवन में 'स्वांग' को ही सांग कहते हैं। जनता को यह बहुत प्रिय है। सांग हरियाणा का लोकप्रिय नाट्य है। जनरंजककारी यह विधा हरियाणा के लोकमानस पर जादू का सा प्रभाव डालती है। मंच के चारों ओर बैठे दर्शक रागनियों की स्वर–लहरियों में अनुस्यूत एवं बाद्य–संगीत आदि से परिपूर्ण कथा को सुनकर अथवा देखकर मंत्र–मुग्ध हो जाते हैं। सांग में पुरूष ही नायक–नायिका की भूमिका लिंगानुरुप वेशभूषा में निभाते हैं। सांगों को भी नाट्यकला की भाँति की कथानक, संवाद, पात्र चरित्र–चित्रण, रस–निरूपण, अभिनेयता, उद्देश्य आदि प्रमुख तत्व होते हैं।

1.4.2 सांग परम्परा का उद्भव व विकास

हरियाणा में सांग परम्परा एक प्राचीन एवं लम्बी परम्परा रही है। विद्वानों ने इस परम्परा के उद्भव एवं विकास को समझने के लिए इसका वर्गीकरण समय व इस परम्परा में हुए परिवर्तन के आधार पर किया है। हम यहां इस विधा के उद्गम एवं विकास का वर्णन सार रूप में प्रस्तुत करेंगे।

(i) आरम्भिक काल

हरियाणा में लोकनाट्य व सांग रचना व उनका अभिनय करने की बहुत पुरानी परम्परा रही है। समय–समय पर इस परम्परा में परिवर्तन भी हुए हैं। किसी परम्परा में परिवर्तन शुभ की निशानी है। श्री रारम

नारायण के अनुसार सांग का आरम्भिक युग 1200 ई. से 1750 ई तक माना जाता है। उनके मतानुसार ग्यारहवीं शती में पंजाब के मल्ल नामक जाट, रावत नामक राजपूत और रंगा नामक जुलाहे ने मिलकर एक स्वांग मण्डली बनाई। इस मण्डली ने गाँव–गाँव घूमकर जनता का मनोरंजन किया। कालांतर में यही स्वांग परम्परा हरियाणा सांग के नाम से प्रचलित हुई।

हरियाणा के महान सांगी पण्डित रामकिशन ब्यास ने तेरहवीं शताब्दी से हरियाणवी सांग का आरम्भ स्वीकार किया है। उन्होंने नारनौल निवासी गुजराती पण्डित बिहारीलाल से सांग का उद्भव स्वीकार किया है। उन्होंने अपने मत को इन शब्दों में व्यक्त कियसा है–

"नारनौल का गुजराती ब्राह्मण बिहारी लाल था,
सांग शुरू किया सन् बारह सौ छह का साल था,
नाचै गावैं, चेतन चेला करै कमाल था,
सोहनी, सवैया, ठुमरी, सौरठा, गावै ख्याल था।।"

पं. बिहारीलाल के पश्चात् उनके प्रसिद्ध शिष्य चेतन ने सांग परम्परा को जीवित रखा। इसके बाद कहीं–कहीं सांग करने की परम्परा चलती रही, किन्तु औरंगजेब ने सांग करने पर प्रतिबंध लगा दिया था। फलस्वरूप इस परम्परा के विकास में अवरूद्ध उत्पन्न हो गया। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् कवि बालमुकुन्द तथा उनके शिष्य शिव कुमार ने इस सांग परम्परा को पुनः जीवन प्रदान किया। उनके दूसरे शिष्य किशनलाल भाट ने सांग परम्परा में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और उसे व्यावहारिक रूप प्रदान किया। इसलिए किशनलाल भाट को सांग परम्परा का भीष्म–पितामह कहा जाता है। कहने का भाव है कि हरियाणा की सांग परम्परा बहुत पुरानी है। सबसे पहला सांगी किशनलाल भाट को माना गया है। उसका समय लगभग सन् 1730 के आसपास माना गया है। उस समय एक व्यक्ति ढोलक बजाता था और दूसरा सारंगी। उनके आसपास पन्द्रह–सोलह दर्शक आकर खड़े हो जाते थे। यह परम्परा कई वर्षों तक चलती रही। इस परम्परा में रामलाल खटीक और नेतराम के नाम लिए जा सकते हैं। यह परम्परा लगभग 170 वर्ष तक चलती रही।

(ii) विकास काल

हरियाणवी सांग परम्परा के दूसरे काल को उसका विकास चरण कहा जाता सकता है, क्योंकि इस काल तक आते–आते सांग का स्वरूप कला के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। अब वह ढोलक व चिमटे वालों की मण्डली नहीं रह गई थी। इस युग में अनेक सांगियों ने सांग परम्परा को आगे बढाया और इसमें तरह–तरह के परिवर्तन करके इसे कलात्मक स्वरूप प्रदान किया। इस युग में नूह तहसील के गाँव अक्डेहा के सादुल्ला ने कई सांग लिखे और उनका सफलतापूर्वक अभिनय करके सांग परम्परा के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

उन्हें मेवाती जन कवि होने का गौरव प्राप्त है। सादुल्ला–कृत मेवाती भाषा में महाभारत, जिसका शीर्षक है – 'पण्डून का कड़ा' बहुत ही चर्चित रही है। इस युग के दूसरे महान् सांगी बंसीलाल का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। उनके तीन सांग– 'गुरु गुग्गा', 'राजा गोपीचन्द' तथा 'राजा नल' बहुत ही लोकप्रिय रहे।

(iii) उत्कर्ष काल (स्वर्ग युग)

यह वह समय था जब उच्च कोटि के सांग रचे व अभिनित किए गए। इसलिए कुछ विद्वानों ने इसे हरियाणवी सांग के इतिहास का स्वर्णकाल भी कहा है। यह बात तो निश्चित है कि इस काल में सांग में आशातीत विकास हुआ और अत्यन्त उत्तम कोटि के सांगों की रचना हुई। विद्वानों ने इस युग का समय 1850 ई. से 1950 ई. तक का माना है। इस युग के आरम्भ में भक्ति–भावना से ओत–प्रोत सांगों की रचना हुई है। इस युग में सर्वप्रथम अलीबख्श का नाम लिया जा सकता है। रेवाड़ी के क्षेत्र में उनके सांगों की धूम मची हुई थी। हजारों की संख्या में लोग उनके सांग देखने के लिए एकत्रित होते थे। इनके सांगों में 'श्रीकृष्ण–लीला', 'पद्मावत', 'फिसाने अजाइब' आदि प्रमुख हैं। अलीबख्श का निधन सन् 1899 में हुआ। इनके पश्चात् इनके धानिया–मानिया नामक शिष्यों ने सांग परम्परा के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया। इस युग के योगेश्वर बालकराम का नाम भी उनके सांगों के लिए बड़े आदर से लिया जाता है। उन्होंने 'पूरमल भक्त' तथा 'निहालदे नर सुलतान' नामक सांगों की रचना की। इस युग के अहमद बख्श थानेसरी ने 'रामायण'ए 'जयमल फत्ता', 'गूंगा चौहान', 'सोरठ', 'चन्द्रीकरण' आदि सांगों की रचना करके सांग–परम्परा को आगे बढ़ाया। इसी काल में हीरादास उदासी ने एक सांग 'सांग रतन सैन राजा का' की रचना की। उन्नीसवीं शती के मध्य में ताऊ सांगी का नाम सांग लेखक के रूप में प्रसिद्ध रहा है। उन्होंने 'रुक्मिणी विवाह' नामक पद्य–बद्ध सांग की रचना की। इस सांग में कुल 178 पद्य हैं।

पं. किशनलाल ने 'मोरध्वज', 'हरिचन्द्र', 'भक्त प्रहलात' तथा 'उषा–अनिरुद्ध नामक सांगों की रचना की। इसी युग में शादीराम ने हरियाणवी सांग परम्परा को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने 'रामायण' के अतिरिक्त अनेक भजनों व गजलों की भी रचना की है।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में सांग के क्षेत्र में पण्डित दीपचन्द का अविर्भाव हुआ। पण्डित दीपचन्द काव्यशास्त्र एवं संस्कृत के विद्वान थे। उन्होंने सांग परम्परा में आमूल–चूल परिवर्तन करके उसे नई दिशा और नया मोड़ दिया। दीपचन्द ने अपनी ओजस्वी वाणी का प्रयोग करते हुए युवकों का अंग्रेज सेना में भर्ती होने की प्रेरणा दी। पण्डित दीपचन्द ने सांगों का अभिनय करने के लिए अपनी एक सांग मण्डली भी बनाई थी। पण्डित मांगेराम सांगी ने इस विषय पर प्रकाश डालते हुए कहा है–

''एक सौ सत्तर साल बाद फेद दीपचन्द होगा

साजिन्दे तो बजा दिये और घोड़े का नाच बंद हो गया।''

पण्डित दीपचन्द के बाद सांगी हरदेवा का युग आता है। हरेदवा पण्डित दीपचन्द का चेला था। उसने दीपचन्द से अलग होकर अपनी सांग मण्डली का गठन किया। उसकी सांग शैली की प्रमुख विशेषता थी कि उसने सांग को अधिक सजह एवं स्वाभाविक रूप प्रदान किया। हरदेवा की सांग परम्परा को चर्तू–भर्तू ने आगे बढ़ाया। उन्होंने सांग में स्त्रीवेश में 'धारू की अंगिया' के स्थान पर कुर्ते का प्रचलन किया तथा 'काफिया' छनद के स्थान पर रागिनी का प्रयोग किया उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं– 'नल दमयन्ती', 'उत्तानपाद', 'ज्यानी चोर', 'सोरठ साणदे', 'राजा भोज', 'गोपीचन्द महाराज' आदि सांग परम्परा को आगे बढ़ाने में दीपचन्द के दो शि ष्यों सरूपचन्द व हरदेवा का प्रयास भी सराहनीय रहा है। इसी प्रकार हरदेवा के शिष्य बाजेराम ने भी कई सांग लिखकर इस परम्परा के विकास में अपना योगदान दिया।

सांग परम्परा में पण्डित लखमीचन्द को बड़े आदर से याद किया जाता है। उन्होंने हरियाणवी सांग परम्परा को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था। उनका समय 1923 ई. से 1944 ई. तक माना जाता है। वे अपनी सांग स्वयं ही लिखते थे। उनके आरम्भिक सांगों में श्रृंगार की अधिकता थी, किन्तु बाद में उनका ध्यान अध्यात्मक की ओर खिंच गया था। पण्डित लखमीचन्द ने नई–नई गायन शैलियों की रचना भी की थी। 'डोल्ली' उनकी प्रमुख गायन शैली थी। इस गायन शैली से गीतों में मधुरता का समावेश हुआ है। इनके गुरू भजनीक मानसिंह थे। इनकी परम्परा में मांगेराम, भाईचन्द, सुल्तान, पं. चन्दनलाल, आदि प्रमुख हैं। पं. लखमीचन्द कबीर की भाँति 'मासि कागद छुयी नहिं, कलम गहयो नहिं' बोलि कोटि के थे, किन्तु इनकी वाणी में सरस्वती का वास था। इनके मुख से निकले शब्द कविता का रूप धारण करते जाते थे। वे ज्ञानी और वेदान्ती थे। इनकी रागिनियाँ और सांग ज्ञान परिपूर्ण हैं। इनके काव्य इनके अनुभवों पर आधारित हैं। पं. लखमीचन्द ने हरियाणवी सांग–विधा को पारम्पिरिक रूढ़ियों से मुक्ति दिलाकर नई दिशा दी है।

पं. लखमीचन्द ने अठारह वर्ष की आयु में प्रथम बार सोहन के अखाड़े में अपने मधुर कण्ठ का परिचय दिया था। सन् 1924 में इन्होंने अपनी अलग सांग मण्डली बना ली थी। वे एक अच्छे गायक के साथ–साथ अच्छे अभिनेता भी थे। इन्होंने अपने सांगों में सदैव स्त्री–चरित्रों का अभिनय किया है। इन्हें आज भी सांग सम्राट माना जाता है।

(iv) आधुनिक युग

हरियाणवी सांग परम्परा के इतिहास के चतुर्थ युग को विद्वानों ने आधुनिक युगव व स्वातन्त्र्योत्तर युग कहा है। इस युग का आरम्भ सन् 1950 से माना जाता है। इस युग में सर्वप्रथम पण्डित मांगेराम का नाम लिया जा सकता है। मांगेराम प. लखमीचन्द के शिष्य थे। उन्होंने लगभग चालीस सांगों की रचना की है। इनके सांगों में 'अमर सिंह राठौर', 'चाप सिंह', 'अजित सिंह राजबाला', 'छैल बाला', 'रूप–बंसत', 'हीर–रांझा', 'पिंगला–भरथरी', 'कृष्ण–सुदामा' आदि प्रसिद्ध है।

पं. मांगेराम के बाद श्री रामकिशन व्यास के महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इन्होंने अनेक सांगों की रचना की। इनके सांगों में 'रूपकला–जादूखोरी', 'धर्म की जीत', 'कम्मो–कैलाश', 'सत्यवान–सावित्री', 'शशिकला–सुखबीर' आदि प्रमुख हैं।

आधुनिक युग में सांग परम्परा को गौरव प्रदान करने वलों में श्री धनपत सिंह का नाम भी आदर से लिया जाता है। उनके सांगों की हरियाणा व आस–पास के क्षेत्र में धूम मची रही। 'बणदेवी', 'लीलो–चमन', 'जारनी–चोर', 'गोपीचन्द' आदि इनके सुप्रसिद्ध सांग हैं। श्री धनपत सिंह के युग में चन्द्रलाल उर्फ चन्द्रबाड़ी तथा श्री कृष्ण शर्मा ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सांगी माईचन्द ने 'मंगला', 'हाजरिया–रोशिनी', 'राधा–बिहारी' तथा फौजी मेहर सिंह ने 'सेठ तारा चन्द', 'सरवर नीर', 'अन्जना–पवन', 'सुभाषचन्द्र बोस', श्री कृष्णचन्द्र शर्मा ने 'नरसी का भात', 'श्रवण कुमार', 'द्रोपदी–स्वयंवर', 'हनुमान जन्म' आदि सांगों की रचना की। इसी प्रकार डॉ. रणबीर सिंह दहिया ने 'शहीद जसबीर सिंह', 'चम्पा–चमेली', 'जलियांवाला बाग' तथा भारतभूषण सांघीवाला ने 'सीता हरण', 'कृष्ण जन्म', 'कीचक वध', 'महाराणा प्रताप', आदि सांगों की रचना की है। श्री सुभाषचन्द्र शास्त्री जी का कार्य भी इस दिशा में सराहनीय रहा है। उन्होंने 'दुर्गा भाभी', 'नेता जी सुभाषचन्द्र बोस' आदि सांगों की रचना करके सांग परम्परा को आगे बढ़ाया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा हा सका है कि हरियाणा प्रदेश में सांग मनोरंजन का ही साधन नहीं, अपितु जीवन के विविध पक्षों को उजागर करने वाली सशक्त विधा है। इसकी एक समृद्ध परम्परा है। विद्वान इस परम्परा का आरम्भ तेरहवीं शताब्दी से मानते हैं। इस परम्परा के चरम–विकास के बिन्दु उन्नीसवीं शताब्दी में देखे जा सकते हैं। आज की फिल्मी दुनिया व दूरदर्शन के युग में इस परम्परा की गति निश्चित तौर पर धीमी पड़ गई है।

1.5 स्वंय प्रगति जाँच

अपनी प्रगति की समीक्षा करें–

(क) (i) हरियाणवी भाषा में किन दो प्राचीन भाषाओं के शब्द मिलते हैं ?

(ii) बांगरू बोली का यह नाम किस क्षेत्र के नाम पर पड़ा ?

(iii) उनहीरवाटी किन–किन बोलियों से घिरी हुई है ?

(iv) 'सांगों का पितामह' किसे कहा जाता है ?

(v) मेवाती जनकवि का क्या नाम है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए।

(i) जींद एवं रोहतक की बोली है –

(क) बांगरू (ख) मेवाती (ग) ब्रज (घ) अहीरवाटी

(ii) मुगल सम्राट ने सांगों पर प्रतिबन्ध लगाने वाला मुगल सम्राट था।

(क) शाहजहाँ (ख) अकबर (ग) औरंगजेब (घ) जहांगीर

(iii) हरियाणावी का सांग सम्राट कहा जाता है–

(क) पं. लखमीचन्द (ख) दीपचन्द

(ग) योगेश्वर बालकराम (घ) रामकिशन व्यास

(iv) हरदेवा के गुरू का नाम था –

(क) भजनीक मानसिंह (ख) दीपचन्द

(ग) योगेश्वर बालकराम (घ) रामकिशन व्यास

(v) फौजी मेहर सिंह का जन्म हुआ–

(क) 1911 (ख) 1918 (ग) 1920 (घ) 1923

1.6 सरांश

- हरियाणा शब्द प्रदेश के निवासियों व उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा के लिए प्रयुक्त किया जाता है।
- 'हरियाना' शब्द से ही हरियाणा शब्द की व्यत्पत्ति मानी जाती है। हरियाणा शब्द के 'वी' प्रत्यय लगाने से हरियाणवी शब्द ही उत्पत्ति हुई।
- हरियाणवी भाषा पश्चिमी हिन्दी की पांच बोलियों में से एक प्रमुख बोली है। विद्वानों के अनुसार इसका विकास शौर सेनी भाषा से हुआ है। इसके विकास में संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं का योगदान रहा है।
- हरियाणवी भाषा को बाँगरू, देसी, देसड़ी, देहलवी, खड़ी बोली, हरियाणवी, हरियाणी, आदि कई नाम दिए गए। जिसमें से हरियाणा वासियों के लिए हरियाणवी शब्द का प्रयोग हुआ जिसे सरकार द्वारा भी प्रोत्सोहित किया जाता है।
- किसी भी भाषा के विकास में उसका अपना लोक साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। हरियाणवी का लोक साहित्य भी हरियाणा की लोक संस्कृति को प्रतिबिम्बित करता है। हरियाणा के लोक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले लोक गीतों, लोक कथाओं, लोक सुभाषितों, भजनों, सांगों, आधुनिक काव्य, भक्ति

साहित्य, कहानी, उपन्यासों आदि ने हरियाणवी भाषा के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है व उसके शब्द भण्डार को समृद्ध किया है।

- पश्चिमी हिन्दी बोलियों में मुख्यतया बांगरू, कौरवी, अहीरवाटी, मेवाती, ब्रजबोली, बागड़ी बोली आती हैं।
- बांगरू हरियाणवी भाषा की उपबोली है जो हरियाणा के जीन्द, रोहतक, भिवानी, सोनीपत, पानीपत, हिसार व कैथल आदि जिलों में बोली जाती हैं। कौरवी बोली सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, करनाल, रोहतक, दिल्ली, देहरादून अम्बाला, मुरादाबाद और रामपुर, बुलन्दशहर और गुड़गांव के अधिकांश लोग यही बोली बोलते हैं।
- अहरीवाटी रेवाड़ी, कोसली, नारनौल महेन्द्रगढ़, पटौदी, भिवानी तथा गुड़गांव के कुछ क्षेत्रों में भी इस बोली का प्रयोग किया जाता है।
- मेवाती बोली फिरोजपुर झिरका, नूह, सोहना, तावडू, पिनगवां, बीसरू, हथीन, नगीना, बावल, नीम का तिलवारा बिछौर, उजीना आदि स्थानों पर बोली जाती है।
- हरियाणा में ब्रज बोली का प्रचलन बहादुरगढ़, पलवल, हसनपुर, होडल आदि में अध्यधिक है।
- बागड़ी बोली का क्षेत्र है भिवानी के पश्चिमी क्षेत्र बहल से आरम्भ होकर हिसार के सिवानी, दड़बा कलां, ऐलनाबाद, चौटाला, डबवाली और सिरसा तक फैला है।
- दूसरे का रूप धारण करने के लिए जो वेश धारण किया जाता है उसे स्वांग कहते हैं। सांग हरियाणा का लोकप्रिय नाट्य है। यह विधा हरियाणा के लोकमानस पर जादू का सा प्रभाव डालती है। सांग में पुरूष ही नर–नारी की भूमिका लिंगानुरूप वेशभूषा में निभाते हैं।
- हरियाणा में सांग की प्राचीन परम्परा रही है। विद्वानों ने इसके उद्‌भव और विकास समझने के लिए इसका वर्गीकरण समय व इसमें आये परिवर्तन के आधार पर किया है।
- श्री रामनारायण के अनुसार सांग का आरम्भिक युग 1200 से 1700 तक माना जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी में पंजाब के मल्ल नामक जाट, रावत नामक राजपूत और रंगा नामक जुलाहे ने मिलकर एक स्वांग मण्डली बनाई। कालांतर में यही परम्परा हरियाणा के लोक साहित्य सांग के रूप में प्रचलित हुई।
- हरियाणा के महान सांगी पं. रामकिशन व्यास ने तेरहवीं शताब्दी से हरियाणवी सांग का आरम्भ स्वीकार किया है। उनके अनुसार गुजराती पं. बिहारीलाल से ही सांग परम्परा आरम्भ होती है और उनके शिष्य चेतन ने इस परम्परा को जीवित रखा। औरंगजेब ने सांग करने पर प्रतिबन्द लगा दिया था।

- औरंगजेब की मृत्यु के बाद कवि बालमुकुन्द गुप्त व उनके शिष्य शिव कुमार ने सांग परम्परा को पुनजीर्वित किया। उनके शिष्य किशनलाल भाट ने सांग परम्परा को परिवर्तित कर उसको व्यवहारिक रूप प्रदान किया। इसलिए इन्हें सांग परम्परा का 'भीष्म पितामह' कहा जाता है।
- सबसे पहला सांगी किशनलाल भाट को माना गया है। उस समय एक व्यक्ति ढोलक बजाता था तथा दूसरा सांरगी। यह परम्परा करीब 170 वर्षों तक चली।
- सांग परम्परा के दूसरे काल को विकास काल का नाम दिया जा सकता है। इस युग में अनेक सांगियों ने सांग परम्परा को आगे बढ़ाया। इसमें तहर–2 के परिवर्तन किए। अब यह ढोलक–चिमटे तक सीमित नहीं। इसमें कई कलात्मक परिवर्तन किए गए। इस युग ने नूह के गाँव अक्डेहा के सादुल्ला ने कई सांग लिखे और उनका सफलतापूर्वक अभिनय कर सांग परम्परा के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस युग के दूसरे महान सांगी बंसीलाल का नाम भी बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।
- सांग परम्परा के उत्कर्ष काल में उच्च कोटि के सांगों की रचना हुई। इस युग का समय 1850 ई. से 1950 ई. तक माना गया है। इस युग में आरम्भिक सांग भक्ति से ओत–प्रोत हैं। इस काल में अलीबख्श का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है। इनके बाद इनके शिष्य धानिया–मानिया ने सांग परम्परा को आगे बढ़ाया। इस युग के योगेश्वर, अहमद बख्श थानेसरी, हीरादास उदासी आदि के सांगों ने लोगों में अपनी जगह बनाई।
- उन्नीसवीं शदी के मध्य में ताऊ सांगी का नाम सांग लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुआ। पं. किशनलाल व शादीराम ने हरियाणवी सांग परम्परा के विकास में अपना योगदान दिया।
- बीसवीं शताब्दी में पं. दीपचन्द का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। ये काव्यशास्त्र व संस्कृत के विद्वान थे। इन्होंने सांग परम्परा में समयानुसार परिवर्तन कर इस परम्परा को नई दिशा प्रदान की। इन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी से युवकों को प्रेरित किया।
- इसी युग में हरदेवा सांगी का भी नाम आता है जिन्होंने इस परम्परा में बदलाव कर नये आयाम प्रदान करें।
- सांग परम्परा में पं. लखमीचन्द का नाम बड़े आदर सम्मान के साथ लिया जाता है। ये अपने सांग स्वयं लिखते थे। आरम्भिक सांगों में श्रृंगार की अधिकता थी। इन्होंने नई–नई गायन शैलियों की रचना की थी।

- हरियाणवी सांग के चतुर्थ युग को आधुनिक युग के नाम से जाना जाता है। इस युग का आरम्भ स्वतंत्रता के बाद् सन् 1950 से माना है। इस युग के पं. मांगेराम प्रमुख सांगी रहे हैं। ये पं. लखमीचन्द के शिष्य थे। पं. मांगेराम के बाद श्री रामकिशन व्यास का नाम लिया जा सकता है।
- आधुनिक युग में साँग परम्परा को गौरव प्रदान करने में श्री धनपत सिंह जी का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। इनके सांगों की हरियाणा व आसपास के क्षेत्रों में धूम थी। इनके अतिरिक्त चन्द्रलाल, श्री कृष्ण शर्मा, मेहर सिंह, डॉ. रणबीर सिंह दहिया, भारत भूषण सांधीवाला, सुभाषचन्द्र शास्त्री ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। आज की फिल्मी चकाचौंध के कारण इसकी गति धीमी पड़ गई।

1.7 शब्दावली

हरियाणा : शिव व शिव के पुत्रों का निवास स्थान

हरि : हरा, हरापन लिए पीला, पीत।

यान : सवारी वाहन, गमन, अभियान

बांगर : एक क्षेत्र विशेष, जो ऊँची भूमि से सम्बन्धित हो।

समृद्ध : अत्यधिक संपन्नता

विविध मुखी : विभिन्न प्रकार का

भू–खण्ड : भू भाग, भूक्षेत्र

शिलालेख : पत्थर पर खोदा गया लेख

स्वांग : दूसरे का रूप धारण करने के लिए जो वेश धारण किया जाए

कालांतर : अंतराल, अन्य समय

उत्कर्ष : उन्नति

1.8 स्वयं मूल्यांकन परीक्षा

(i) हरियाणवी भाषा के उद्‌भव और विकास पर टिप्पणी कजिीए।

(ii) "हरियाणवी लोक संस्कृति की सच्ची झलक हरियणवी लोक साहित्य में देखी जा सकती है" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

(iii) हरियाणवी की बागड़ी बोल का उल्लखे कीजिए।

(iv) हरियाणवी सांग परम्परा का आरम्भ कब हुआ था ? संक्षिप्त में वर्णन कीजिए।

(v) पं. लखमीचन्द के सांग साहित्य पर प्रकाश डालिए।

1.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखें

(क) (i) संस्कृत एवं प्राकृत (ii) बांगरक्षेत्र (iii) बांगरू बागड़ी और मेवाती

(iv) किशन लाल भात (v) सादुल्ला

(ख) (i) (क) बांगरू (ii) (ग) औरंगजेब (iii) (क) पं. लखमीचन्द

(iv) दीपचन्द (v) (क) 1918

1.10 संदर्भग्रन्थ

1. श्री कृष्णचन्द्र शर्मा — हरियाणा के कवि सूर्य लख्मीचन्द
2. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा — हरियाणवी साहित्य और संस्कृति
3. श्री देवी शंकर प्रभाकर — हरियाणाः एक सांस्कृतिक अध्ययन
4. डॉ. भीम सिंह मलिक — हरियाणा के लोक गीत
5. डॉ. भीम सिंह मलिक — हरियाणा के लोक साहित्यः सांस्कृति संदर्भ
6. श्री राजाराम शास्त्री — हरियाणा के लोकगीत
7. डॉ. शंकरलाल यादव — हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य

Subject: Hindi Compulsory

Course Code : BA 302	Author : Vibha Malik
अध्याय संख्या : 2	
हरियाणावी भाषा का आधुनिक साहित्य	

अध्याय की संरचना

2.1 अधिगम उद्देश्य

2.2 परिचय

2.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

2.3.1 हरियाणवी भाषा का आधुनिक साहित्य

2.3.2 हरियाणवी कविता : परिचय और विशेषताएँ

2.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

2.4.1 हरियाणवी उपन्यास

2.4.2 हरियाणवी कहानी

2.4.3 हरियाणवी नाट्क

2.5 स्वयं प्रगति जाँच/जांचें

2.6 साराशं

2.7 शब्दावली

2.8 स्वयं मूल्यांकन परीक्षा

2.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखें

2.10 संदर्भ ग्रंथ

2.1 अधिगम उद्देश्य

(i) हरियाणवी कविता की विशेषेताओं से परिचित हो सकेंगे।

(ii) हरियाणवी उपन्यास के स्वरूप को जानना।

(iii) हरियाणवी कहानी की लेखन शैली की पहचान करना।

(iv) हरियाणा नाटकों की विषय वस्तुत को पहचानना।

2.2 परिचय

पिछले अध्याय में हमने हरियाणवी भाषा के विकास पर चर्चा की। हरियाणवी भाषा एक लोक भाषा है। इसकी धारा निरन्तर प्रवाहमान रही है। समय के साथ–साथ अन्य भाषाओं के परिवर्तित रूपों से इसका आदान–प्रदान चलता रहने से इसका भी विकास होता आ रहा है। यह भाषा अब तक हजारों वर्षों की यात्रा तय कर चुकी है। वर्तमान हरियाणवी भाषा में ऐसे प्राकृत शब्दों का समावेश जिनका प्रचलन पहली से पाचंवी शताब्दी की बीच था। हरियाणवी भाषा पर संस्कृत, पालि, प्राकृत व अपभ्रंश भाषाओं का प्रभाव देखा जा सकता है। कहना न होगा कि इन भाषाओं का हरियाणवी भाषा के विकास में महत्त्वर्पूण योगदान रहा है। जहां तक हरियाणवी भाषा के साहित्य की बात है, हरियाणा के लोक साहित्य की लम्बी परम्परा रही है। साँगा, रागनियां, लोक नाटकों, लोग गीतों से हरियाणवी साहित्य समृद्ध है। इसके साथ–साथ वर्तमान समय में हरियाणवी भाषा में आधुनिक साहित्य कविता, उपन्यास, नाटक, कहानियां इत्यादि में साहित्यकारों ने अपना परचम लहरा कर हरियाणवी भाषा को समृद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है इस अध्याय में हरियाणवी भाषा के आधुनिक साहित्य पर चर्चा करेंगे।

2.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

2.3.1 हरियाणवी भाषा का आधुनिक साहित्य

भारत वर्ष 15 अगस्त, सन 1947 ई. को आजाद हुआ। भारतीय राष्ट्र के लिए यह एक अनूठा परिवर्तन था। राजनैतिक परिवर्तन का सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक बिंदुओं पर भी प्रभाव था। साहित्य भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने राजनैतिक दृष्टि से अनास्थावादी बौद्धिक वर्ग का विकास नेहुरू युग से माना है। नेहरू युग सन 1938 ई. से 1964 तक माना जाता है। इस प्रकार स्वतंत्रता के उपरांत आधुनिक साहित्य का प्रारंभ माना जाता है। इस युग में, ऐसे साहित्य की अधिकता है जिसमें आधुनिकता की निराशा, कुंठा, वासनाओं का नग्न चित्रण अश्लीलता आदि का बोलबाला रहा है। इनमें आधुनिकता का विकृत रूप अभिव्यक्त हुआ है। इस युग का कवि वैयक्तिक,पारिवारिक, सामाजिक एवं नारी चेतना से जुड़ा है। उसकी संवेदना बहुआयामी एवं व्यापक होते हुए भी अंतर्मुखी है। वह समाज, परिवार के मध्य रहते हुए भी स्वयं को अजनबी पाता है। किंतु इसके साथ–साथ आधुनिक युग में श्रेष्ठ साहित्य का सृजन भी हुआ है। इस संबंध में डॉ. हरिश्चंद्र वर्मा ने हिंदी साहित्य का इहितास में लिखा है – ''आधुनिकता अपने स्वरूप रूप में परंपरा की अपेक्षा नहीं करती। वह संस्कृति की विकासोन्मुखता की सूचक प्रगतिशील जीवन दृष्टि है जो समूची जीवन–व्यवस्था को दिशा और गति प्रदान करती है। आधुनिकता अतीत से प्रेरित, वर्तमान के प्रति सचेत तथा भविष्य के प्रति उन्मुख दृष्टि है।''

हिन्दी के आधुनिक साहित्य में हरियाणवी साहित्य का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। हरियाणवी कवियों ने भावबोध के साथ–साथ काव्य शिल्प प्रसंगों तथा काव्यगत नवीन विधाओं को क्षेत्र में नूतन एवं आंचलिक प्रयोग किए हैं।

आधुनिक साहित्य में गद्य विधाओं का प्रचुर मात्रा में विकास हुआ है। शायद इसीलिए विद्वानों ने आधुनिक युग को गद्य युग की संज्ञा से अभिहित किया है। आधुनिक युग में निबन्ध, उपन्यास, कहानी, एकांकी, नाटक इत्यादि में प्रचूर साहित्य लिखा गया। आधुनिक हरियाणा के गद्य साहित्य में उपन्यास कहानी व नाटकों की महत्त्वपर्ण् भूमिका हरियाणवी रही है।

2.3.2 हरियाणवी कविता : परिचय और विशेषताएँ।

आधनुनिक हरियाणवी कवियों की कविताओं में देश–प्रेम की अनूठी भाषा का चित्रण हुआ है। देवीशंकर प्रभाकर, राधारी खटकड़, तारादत्त विलक्षण, ओ.पी. हरियाणवी, गणपत राम, गोवर्धनदास, जयनारायण कौशिक, रामपाल शर्मा, डॉ. विश्वबंधु शर्मा आदि कवियों ने देश प्रेम का परिचय दिया है। विश्वंबधु शर्मा की 'माटी के स्वर' कामान देश–प्रेम की भावना से ओत–प्रोत कविता है। कामान कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

भगवान भारत देश में बलवान पैदा हौं।
जो राखैं भारत देश की वो शान पैदा हौं।
गोतम बुद्ध, वशिष्ट, ऋषि जैसे तपधारी हौं।
विश्वामित्र, व्यास पुत्र शुक आज्ञाकारी हौं।
अत्री सै घरबारी घरबारी ऋषि भगवान पैदा हौं।
राम लखन और भरत जीसा सब भाई चारा हौं।
अर्जुन के लिये गीता जी का सही ईमारा हौं।
कृष्ण जैसे प्यारे स्थवान पैदा हौं।

उदयभानु हंस को हरियाणा का राजकवि माना जाता है। उनकी 'देसा मँह देस हरियाणा' देश–प्रेम की अनूठी रचना है जिसमें कवि ने राष्ट्र भक्ति का परिचय देते हुए हरियाणा की सभ्यता संस्कृति का अंनूठा चित्रण किया है।

कविता साहित्य की प्राचीनतम एवं सरस विधा है। अतः सदा से ही साहित्यकारों ने इसकी रचना पर बल दिया है। हरियाणवी कविता का इतिहास भी हिन्दी कविता के समानान्तर अग्रसर रहा है श्री राजाराम शास्त्री ने तो हरियाणवी कविता को खींचकर सातवीं–आठवीं शताब्दी से जोड़ने का प्रयास किया है। भले ही शास्त्री जी के

प्रयास में अतिशयोक्ति प्रतीत होती हो, किन्तु उनका मत सत्य से कोरा भी नहीं है। हरियाणवी कविता की धारा गुरू गोरखनाथ के काव्य से लेकर आज तक निरन्तर बहती आ रही है। कभी सन्तकाल–काव्य एवं सूफी–काव्य के रूप में तो कभी राम–काव्य, कृष्ण काव्य और कभी सुधारवादी काव्य के रूप में। आधुनिक काल में इसका राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण रूप भी खूब लुभावना रहा है।

हरियाणा में आजकल अनेक कवि हरियाणवी कविताएं लिख रहे हैं, जो हरियाणा की पत्र–पत्रिाकाअें में निरन्तर स्थान पा रही हैं। आधुनिक हरियाणवी कवियों में श्री. ओ.पी. हरियाणवी, कंबल हरियाणवी, कुन्दन लाल 'हमदर्द, कृष्ण गोतान मंजर, गणपतराय भारद्वाज, गोवर्धन दास, चन्द्रभान, डॉ. जयनाराण कौशिकि, जैमिनी हरियाणवी, तारादत्त विलक्षणण, थाम्बूराम, डॉ. पूर्णचन्द शर्मा, डॉ. ब्रजपाल सिंह, श्री भारतभूषण सांधीवाला, डॉ. रघुनाथ ऐटी, डॉ. राजेन्द्र स्वरूप वत्स, श्री रामकुमार अज्ञेय, रामचन्द्र, रामफल शर्मा, रामेश्वर दयाल शास्त्री, डॉ. विश्वबन्धु शर्मा, सतपाल स्नेही, सत्यदेव शर्मा, सत्यप्रकाश बत्स, जगदीश चन्द्र शर्मा, ज्ञानीराम शास्त्री, देवी शंकर प्रभाकर, अल्हड़ बीकानेरी, ओमप्रकाश आदित्य आदि के नाम उल्लेखनीय है। इससे पता चलता है कि आधुनिक हरियाणवी काव्यधारा अत्यन्त वेग के साथ प्रवाहित है। उपलब्ध आधुनिक काव्य साहित्य की निम्नलिखित विशेषताएं परिलक्षित हैं–

(i) हरियाणा भूमि की प्रशंसा

आधुनिक हरियाणवी कविता में कवियों ने हरियाण्णा की पावन माटी की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। कवियों की इन भावना को उनका देश–प्रेम भी कहा जा सकता है। इन कवियों ने हरियाणा की उपजाऊ भूमि, यहाँ के रहन–सहन, खान–पान यहाँ के मेहनती किसान एवं वीर सैनिकों का खुलकर गुणगान किया है।

देवीशंकर प्रभाकर ने अपनी कविता में हरियाणा की माटी की वन्दना की है–

''हरियाणा की पावन धरती, तेरा वन्दन तेरा पूजन,
तेरी माटी शीश चढ़ाकर, हम कर लें तेरा अभिनन्दन।
जब कोई सीमा में झांका, जब भी जिसने घात लगाई,
टूट पड़े रण में मतवाले, हाथ पकड़ लेगा हड़खाई।।''

(ii) सामाजिक चेतना

आधुनिक हरियाणवी कविता सामाजिक पृष्ठभूमि पर खड़ी कविता है। कहीं भी वह समाज से अलग होकर व्यक्तिगत चेतना के घेरे में घिरी हुई दिखाई नहीं देती। वह छोटे–छोटे सामाजिक सरोकरों के प्रति भी प्रतिबद्ध दिखाई देता है। हरियाणवी कविता में आज के जीवन में व्याप्त अनेक विषमताओं पर प्रकाश डाला गया है। अति–भौतिकवाद के कारण समाज में बढ़ती बिखराव की भावना, पारिवारिक क्लेश, दहेज प्रथा, कन्या–भ्रूण हत्या,

बेरोजगारी के कारण व्याप्त उदासी व निराशा, महंगाई आदि विषयों को सशक्त में चित्रण किया गया है। साथ ही प्रेम, सद्भावना व त्याग जैसे उदात्त गुणों को जीवन में अपनाने पर भी बल दिया गया है। भारत भूषण सांघीवाल ने अपनी कविताओं से सामज को जागृत करने का प्रयास किया है।

(iii) देश–प्रेम की भावना

आधुनिक हरियाणवी कविता में जहां हरियाण के जीवन व हरियाणवी लोक–संस्कृति आदि का वर्णन हुआ है, वहीं देश–प्रेम की भावना की अभिव्यंजना भी हुई है। हरियाणवी कविता में देश की प्राकृतिक धरोहर का अत्यन्त सुन्दर एवं सजीव वर्णन देखा जा सकता है। देश की स्वतंत्रता की रक्षा की चिंता को भी व्यक्त किया गया है। राष्ट्रीय चेतना को भी यत्र–तत्र देखा जा सकता है। कवि भारतमाता की वन्दना करता हुआ उसमें प्रार्थना करता है कि वह सबके दुःखों को दूर करे–

"इस भारत का, लोग विदेशी देना चाहते घेरा।
दुनिया में घुड़दौड़, मच्ची हुई, दिल घबरावै मेरा।
आवै अन्धेरा छय्याता घटा उठी सकती।
आंधी और तूफान हान कर रहै हमारी।।"

(iv) भक्ति–भावना

आधुनिक हरियाणवी कविता में ईश–वन्दना व प्रभु–भक्ति की भावना भी निरन्तर व्यक्त होती रही है। इससे यहां के लोगों की ईश्वर के प्रति आस्था की भावना के भी दर्शन होते हैं। अनेक कवियों में अपनपी काव्य–रचनाओं में शिव, गणेश, कृष्ण, राम, महात्मा बुद्ध आदि देवताओं की महिमा का गान किया है। कवियों ने विभिन्न देवताओं का सम्बन्ध हरियाणा से जोड़ने में भी कोई कसर बाकी नहीं रखी। जगदीशचन्द्र वत्स अपनी एक कविता में भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

"दुर्योधन की मेवा त्यागी, साग बिदुर घर खा लिया।
दुखिया निर्धन बिप्र सुदामा झट, छाती कै ला लिया।
तारा–मीरों द्रोपद है रहे, छाया बण के शीश की
टेर सुणो जगदीश की, खड्या चरणों मैं पुजारी।।"

(v) शोषण का विरोध

आधुनिक हरियाणवी कविता में हर प्रकार के शोषण का कड़े शब्दों में खण्डन किया गया है। हरियाणवी कविता में जहां शोषितों को प्रति सहानुभूति व्यक्त की गई है, वहीं शोषक वर्ग् की कड़े शब्ददों में निन्दा की गई

है। किसान व मजदूर के शोषण को देखकर हरियाणवी कवियों का खून खौल उठता है। किसान की गरीबी को देखकर कवि कह उठता है।

"देख रोंगटे खड़े होंगे या मेरी छाती धड़कै
गरीब किसान की जिन्दगी क्युकर बितै सै पर पड़कै।
शिखर दुफारी पड़े पसीना छातां कैड ना दिखती
आधी रात तक पाणी बाहवै फेर भी उठै तड़कै।।"

शोषक वर्ग के द्वारा गरीबों पर किए गए तरह–तरह के जुल्मों को देखकर कवि का हृदय रोष से भर जाता है। वह पूँजीपतियों के प्रति अपना क्रोध व्यक्त करता हुआ कहता है–

"पाट्टे कपड़े टूटे लित्तर गन्ठारे टीभा गम्हं
सहूकार के छौंक लगै तेरे आलण पड़ै ना साग म्हं
तेरी बीर ज्वारा ढोवै सिठाणी सूंधै फूल बाग म्हं
तनै सोबण नै खाट ध्यावै ना उनकै रूई के सै पहल लागरे।।"

(vi) आस्थावादी चेतना

हरियाणा की आधुनिक कविता में आस्थावादी भावना का भी चित्रण यत्र–तत्र अवश्य हुआ है। जीवन में संघर्ष, शोषण व दुःख ही नहीं अपितु सुख भी मिल सकते हैं। समय सर्वत्र एक सम्मान नहीं रहता। इसलिए मानव की धैर्य से काम लेना चाहिए। उनका विश्वास है कि सुख–दुख की अनुभूति हमारी मानसिकता पर भी निर्भर करती है–

"एक बै तऊं हंस कै तो देख ल रै,
खुद तै दूर हट कै तो देख ले रै।
राह मैं पत्थर ए नई सैं फूल बी सैं,
थोड़ा आँख खोल कै तो देख ले रै।।"

(vii) साम्प्रदायिकता का विरोध

आधुनिक हरियाणवी कविता में साम्प्रदायिक भावना का कड़े शब्दों में खण्डन किया गया है। कवि ने अपनी काव्य–रचनाओं के माध्यम से जाति–भेद, धर्म, क्षेत्रीयता की भावना आदि पर होने वाले झगड़ों व वैर–विरोध का खण्डन किया है। तारादत्त विलक्षण ने अपनी कविता 'एक रहांगे' में साम्प्रदायिकता की भावना को देशव समाज के लिए हानिकारक बताकर उससे दूर रहने का आग्रह किया है।

(viii) हास्य व्यंग

आधुनिक हरियाणवी कविता में यत्र–तत्र हास्य व्यंग्य की भावना भी दिखलाई पड़ती है। कवि ने समाज में व्याप्त जीवन की छोटी–छोटी कमजोरियों पर व्यंग्य के छींटे कसे हैं तथा ऐसे लोगों को हंसी का पात्र बनाकर हास्य के माध्यम से यथार्थ का चित्रण भी किया है। 'जैमिनी हरियाणवी' की कविता से यह उदाहरण देखिए–

"ईब का इंसान

भीतर तै कटपीस, ऊपर तै थान

ईब की नारी?

ब्याह तै पहलम तलाक की तैयारी।

ईब के नेता

जनता के डबल रोल करण वाला अभिनेता।।"

(ix) भाषा–शैली

हरियाणा की आधुनिक कविता का भाव पक्ष जहां अत्यन्त समृद्ध एवं विशद है, वहीं उसका अभिव्यक्ति पक्ष अथवा भाषा–शैली भी भावाभिव्यंजना में पूर्णतः सक्षम है। हरियाणवी कविता में हरियाणा की लोक भाषा का सफलतापूर्वक प्रयोग हुआ है। हरियाणवी मुहावरों, कहावतों व सुभाषितों के प्रयोग के कारण भाषा में हरियाणवी संस्कृति व संस्कारों का स्पर्श देखा जा सकता है। भावानुकूल कवियों ने अपने काव्य की भाषा में अभिधा, लक्षणा व व्यंजना तीनों शब्दों–शक्तियों का प्रयोग किया गया है। विविध प्रकार के बिम्बों व प्रतीकों की योजना से भाषा में भावाभिव्यंजना को सबल बनाया है। भावानूकूल विविध शैलियों का भी प्रयोग किया गया है। आधुनिक हरियाणवी कविता की भाषा में सर्वत्र प्रवाहमयता व संगीतात्मकता के दर्शन भी होते हैं। अतः स्पष्ट है कि आधुनिक हरियाणवी कविता भाव–पक्ष एवं कला–पक्ष की दृष्टि से सफल विधा है।

2.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

2.4.1 उपन्यास साहित्य : एक परिचय

उपन्यास गद्य की महत्त्वपूर्ण विधा है। हरियाणवी भाषा में बहुत कम उपन्यास लिखे गए हैं। अब तक कुल तीन ही उपन्यास लिखे गए हैं। ये तीन उपन्यास हैं– 'झाडू फिरी', 'फफा कुट्टणी' तथा 'समझणिए की मर'। इन उपन्यासों में से प्रथम दो उपन्यास श्री राजाराम शास्त्री द्वारा रचित है तथ तीसरा उपन्यास डॉ. श्याम सखा 'श्याम' का है। अतः हरियाणवी उपन्यास साहित्य का परिचय केवल इन तीन उपन्यासों के माध्यम से ही दिया जा सकता है।

हरियाणवी साहित्य के महापुरोहित श्री राजाराम शास्त्री का जन्म 27 दिसम्बर, 1918 को हिसार जिला के टोहाना कस्बे में हुआ। शास्त्री जी का रचना क्षेत्र अत्यन्त व्यापक रहा है। एक भाषाविद् और प्रकाण्ड ज्योतिषशास्त्री के रूप में उनकी विशेष ख्याति रही है। हरियाणा से उनका सम्बन्ध भाषा–वैज्ञानिक होने के साथ–साथ रचनाकार के रूप में भी रहा है। वे हरियाणवी भाषा को आंचलिक लोक भाषा ही नहीं मानते थे, अपितु साहित्य रचना में समर्थ भाषा मानते थे। उन्होंने सन् 1963 में 'हरियाणा लोक मंच' की स्थापना की तथा अनेक ग्रंथ भी लिखे। उन्होंने कुल ग्यारह उपन्यास लिखे, जिनमें से दो हरियाणवी भाषा में हैं। उन्होंने तीन सौ से अधिक रेडियो–रूपकों तथा कई ज्योतिषों ग्रंथों की भी रचना की। हरियाणा के इस महान् साहित्यकार का देहान्त 6 नवम्बर 2002 को हुआ।

श्री राजाराम शास्त्री के हरियाणवी भाषा में रचित दोनों उपन्यास सामाजिक उपन्यास हैं। 'झाडू फिरी' उपन्यास के कथानक में एकसे नायक–नायिका की कहानी कही गई है जिसमें एक नायक वैसे तो एक लड़की को पंसद करके विवाह करता है, परंतु भूल से वह किसी दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है। विवाह के कुछ दिनों बाद जब भेद खुलता है तो उसे अपनी भूल का ज्ञान होता है और वह उस लड़की को त्याग देता है। उपन्यास का दूसरा नायक भी अचानक ही एक लड़की से विवाह करता है और लड़की के प्रथम दर्शन के बाद ही उसका परित्याग कर देता है।

पहले नायक की पत्नी सुशील है। उसे भरोसा है कि वह अपनी सेवा से नायक का दिल जीन लेगी। दूसरे नायक की पत्नी नारियल की भांति ऊपर से कठोर भीतर से विनम्र है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से घात–प्रतिघात को आधार बनाकर कथानक का विकास किया है। अतः स्पष्ट है कि लेखक ने प्रस्तुत उपन्यास में सिद्ध किया है कि सुखद गृहस्थी के लिए मन की शांति, सहनशीलनता, चकाचौंध से परहेज तथा सेवा के महत्त्व को रेखांकित किया जाना आत्यावश्यक है। हास–परिहास एवं संकलित व्यंग्य–विनोद के समावेश से रचना को मनोरंजन के साथ–साथ लोकरंजता भी प्रदान की गई है। प्रस्तुत उपन्यास में हरियाणवी लोक–दर्शन को भी जीवन्त रूप में प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास के कथानक में क्रमबद्ध बनी रहती है। कथानक घटनाओं और पात्रों के घात–प्रतिघात से गतिशील बना रहता है तथा अपने लक्ष्य को सफलतापूर्वक प्राप्त करता है। कथानक में आदि से अन्त तक जिज्ञासा का तत्व बना रहता है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, शास्त्री जी ने ठेठ हरियाणवी का प्रयोग किया है। यथा–स्थान हरियाणवी मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। अतः 'झाडू फिरी' एक सफल उपन्यास है।

हरियाणवी भाषा का तीसरा उपन्यास 'समझणिए की मर' सन् 2003 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास के रचयिता श्री श्याम सखा 'श्याम' है। डॉ. श्याम सखा 'श्याम' का जन्म अप्रैल, 1948 को 'बेरी वालों का पेच' रेलवे रोड़, रोहतक में श्री रतिराम शास्त्री के घर हुआ । आप ने एम.बी.बी.एस., सी.जी.पी. एवं एल.एल.बी. की शिक्षा प्राप्त

की है। इनके 'एक टुकड़ा दर्द' हिन्दी कविता–संग्रह और हिन्दी कहानी संकलन 'अकथ' प्रकाशित हो चुके हैं। ये तीन बार हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत हो चुके हैं। 'मसि–कागद' कहानी–संग्रह तथा 'घणी गई थोड़ी रही', लोककथा–संग्रह भी छप चुके हैं।

'समझणिए की मर' श्री श्याम सखा का हरियाणवी में रचित आंचलिक उपन्यास का कथानक दो वक्ताओं द्वारा दो श्रोताओं की सुनाई गई बातचीत पर आधारित है। प्रस्तुत उपन्यास में वर्तमान की स्वार्थपूर्ण राजनीति और कलुषित होती जा रही पंचायती न्यास व्यवस्था प्रणाली का मनोवैज्ञानिक एवं यर्थाथ भूमि पर चित्रण किया गया है। कथानक निरन्तर गतिशील एवं क्रमबद्ध बना रहता है। जिज्ञासा तत्व भी कथानक में निरन्तर बना रहता है। संवाद–योना से ही समूचे कथानक में अद्भुत उपन्यास का समावेश हुआ है। कथानक हरियाणवी संस्कृत से सुसम्बद्ध होकर चलता है। जो पाठक को रसविभोर किए रहता है। 'समझणिए की मर' उपन्यास शिल्प की दृष्टि से भी सफल रचना है। इस उपन्यास के विषय में डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने लिखा है–

''राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना से प्रेरित उपन्यासकार की दृष्टि से सबसे अधिक चिन्ताजनक पक्ष है – भारत की राष्ट्रीयता से विमुख स्वार्थ–केन्द्रित राजनीति। उपन्यास की कथा में समाहित कारगिल का युद्ध ऐसी ही स्वार्थ केन्द्रित राजनीति का परिणाम था, जिसमें, अनेक निर्दोष सैनिकों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार भी कथाकार की चिन्ता का मुख्य विषय है। कारगिल के युद्ध में, शहीद हुए नफे सिंह की विधवा अमृता को मिलने वाली दस लाख की राशि को हड़पने के लिए अमृता का ससुर रणसिंह अनेक प्रपंच करता है। किन्तु अन्त में सत्य की ही जय होती है। विधवा अमृता दस लाख की राशि से कन्याओं के लिए तकनीकी स्कूल की स्थापना करती है। इस प्रकार उपन्यासकार ने नफे सिंह के उत्सर्ग और अमृता के त्याग और सेवाभाव के उदात्त उदाहरणों के माध्यम से देशभक्ति का उज्ज्वल आदर्श प्रस्तुत किया है। ''

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हरियाणवी भाषा गद्य साहित्य के लिए भी उपयुक्त है। किन्तु उपन्यास रचनाओं की संख्या को देखकर निराशा ही हाथ लगती है, क्योंकि आधुनिक युग गद्य का युग भी कहा जाता है। केवल यह विचार अथवा तर्क मन की तसल्ली देता है कि हरियाणवी भाषा में उपन्यास भी लिखे जा सकते हैं।

2.4.2. कहानी साहित्य : एक परिचय

हरियाणवी भाषा में कहानी साहित्य की मात्रा भी बहुत कम है, किन्तु उपन्यास के मुकाबले में स्थिति बेहतर है। हरियाणवी भाषा में कहानी लेखन की ओर लेखकों की रूचि का झुकाव कुछ पिछले वर्षों में हुआ है। हरियाणवी कहानी विधा पर हुए नवीनतम् शोध के आधार पर कहा जा सकता है कि हरियाणा के मूर्धन्य साहित्यकार माधव प्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'लड़की की बहादुरी' शीर्षक कहानी हरियाणवी भाषा की प्रथम कहानी है। डॉ. बाबू राम ने भी अपने 'हरियाणवी साहित्य का इतिहास' शीर्षक ग्रंथ में इसी कहानी को हरियाणवी भाषा में रचित प्रथम कहानी स्वीकार किया है। किन्तु डॉ. मुरारी लाल गोयल ने 'लड़की की बहादुरी' शीर्षक कहानी को न केवल हरियाणवी की

प्रथम कहानी कहा है अपितु हिन्दी की भी प्रथम कहानी बताया है। हरियाणवी भाषा की यह कहानी 'वैश्योपकारक' में सन् 1904 में प्रकाशित हुई थी, जबकि आधुनिक हिन्दी कहानी के आरम्भ का समय सन् 1907 से पूर्व किसी भी दशा में सिद्ध नहीं होता। अतः कहने का तात्पर्य है कि हरियाणवी भाषा में कहानी लेखन परम्परा सौ वर्ष से भी अधिक पुरानी है।

'लड़की की बहादुरी' कहानी में वर्णित विषय सामाजिक है। कहानी में बताया गया है कि रामली एक ब्राह्मण कन्या धापली को झांसा देकर लाल गूदड़मल के पास व्यभिचार के लिए लाती है। उस कन्या की रक्षा गूदड़मल का नौकर जस्सा जाट करता है। इस प्रकार कहानी में तत्कालीन समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार व पापाचार की समस्या और उसके समाधान पर प्रकाश डाला गया है। प्रस्तुत कहानी ठेठ हरियाणवी भाषा मे रचित है। उदाहरण स्वरूप ये पंक्तियां देखिए– ''द्रौपदी की रिच्छा करणवाला राम ! तू कित सै–कहकर खुरपी हाथ में ले बहादुर जाट खड़ा हो गया और रामली को धमकाकर कहने लगा–चिण्डाल रांड! जिसे डूब्बण के काम तै करे सै, इसे म्हारे हरियाणै में कोई भी कोन्नी करै। देख जै छोरी बची, नां तो रांड, आज तरा भी काल आग्या। इसे तलाई में तन्नै और तरे बाबू नै डूबोकर मारुंगा।''

प्रस्तुत कहानी के पश्चात् ही हरियाणवी कहानी परम्परा का आरम्भ होता है। उसका वर्णन निम्नलिखित कहानीकरों की कहानियों के माध्यम से किया जा सकता है–

1. **डॉ. नानक चन्द शर्मा** : डॉ. नानक चन्द शर्मा का नाम हरियाणवी कहानी लेखकों में आदर से लिया जाता है। उनके द्वारा रचित 'डाकी डाभखाना' हरियाणवी भाषा में रचित दूसरी कहानी है। यह कहानी हास्य एवं विनोद से परिपूर्ण है। इसमें हरियाणा के लोक–जीवन की विनोद–प्रियता की भावना को उजागर किया गया है। कहानी का नायक भी विनोदमय स्वभाव वाला युवक है। नायक एक बूढ़े बाराती के क्रियाकलापों का मनोरंजन वर्णन प्रस्तुत करता है। कहानी में पात्र–योजना, संवाद–लेखन तथा संवादात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियों का प्रयोग कियास गया है। प्रस्तुत कहानी में प्रयुक्त वर्णनात्मक शैली एवं हरियाणवी भाषा का उदाहरण देखिए–

''डाकी लामखाणा मौजी माणस था – इतोहड–उतोहड़ हांडणा, दुनिया देखणी। घणखरी बार ते आ टुकड़िया मैं बड़दी हाणी खिलकुटी पाटदा आंदा जगूं बेरा ना के राम मिलग्या उसनै। कोए बूझदा–डाकी के होग्या के ग्यान सै, ते और जोर–जोर से ताड़ी पीट–पीट के लोट–लोट हो जांदा अन उन्नै देखण आले बी उननै हंसद्या देख कैं नै हंसण लाग जादैं।''

एक बार इसा होया के दुफारा ढ़ल्या भी ना था के डाकी डाभखाणा टुकड़िया मैं आया। छोटे–छोटे तास्यां मैं रमड़ रहे थे, बाजी का रंग चढ रह्या था। चौधरी साहब होक्का पींदे–पींदे किसे सोच सी मैं डूब रहे थे। डाकी डाभखाणा खिलखिलादा आया–

''चौधरी साहब चाला पटग्या। बटै के नै कमाल कर दिया।'' ''के होया बी।'' ''बस के बूझो सो, आज तै एक बूढ़े ढूंढ नै हद्दे पार कर दी।''

छोरयां के कान खड़े हो होये। ओर सारे के सारे अपणे–अपणे पत्यां ने छोड़के नै चौधरी साहब के होक्कै कै धोरे चारूं पास्यां बैठगे। एक बार तो ईसा लाग्या जणूं किसे नै चाणचक चिड़िया मै डला फांक दिया हो। अर वे उड़ कै नै किते दरख्त पै बैठ कै नै चीं–चीं करण लग पड़ी हों।

अतः स्पष्ट है कि लेखक ने सफल संवाद एवं वर्णात्मक शैली द्वारा आंचलिक वातावरण का सजीव चित्र अंकित किया है। प्रस्तुत कहानी का कथानक हास्य–विनोदपूर्ण है। हरियाणवी मुहावरों और लोकोक्तियों का सफल प्रयोग करके कहानीकार ने हरियाणवी भाषा में चमत्कार उत्पन्न किया है।

प्रस्तुत कहानी अत्यन्त प्रसिद्ध रही है। सन् 1969 में ग्रामीण कार्यक्रम में आकाशवाणी दिल्ली द्वारा प्रसारण इसका प्रमाण है। डॉ. नानक चन्द शर्मा ने यद्यपि अधिक कहानियाँ नहीं लिखीं किन्तु उनकी यह कहानी हरियाणवी कहानी क्षेत्र में मील का पत्थर सिद्ध हुई ळें

2. **रघुबीर सिंह मथाणा** : हरियाणवी कहानी साहित्य को समृद्ध करने में श्री रघुवीर सिंह मथाणा का योगदान भी सराहनीय रहा है। सन् 1992 में 'हरियाणा अध्यापक समाज' शीर्षक पत्रिका में उनकी 'आपरराधिक आँकड़ें' कहानी प्रकाशित हुई थी। इस कहानी मं पुलिस–थाने के वातावरण को सजीव रूप से उभारा गया है। कहानी में बताया गया है कि पुलिस अधीक्षक एक थाने के एक प्रभारी को उसके थाने के निरीक्षण के दौरान लताड़ लगाकर चले जाते हैं। पुलिस अधीक्षक के जाने के बाद थाना प्रभारी अपने मातहत कर्मचारियों की एक सभा बुलाता है तथा सबको एक–एक डिडक्शन दर्ज करने को कहता है। थाने के मातहत कर्मचारी रात को बस–स्टैंड और रेलवे स्टेशन से गरीब लोगों को लाकर उन्हें भिन्न–भिन्न अपराधों के तहत हवालात में बन्द कर देते हैं। इस प्रकार वे आपराधिक आँकड़ें जुटाते हैं।

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने हरियाणा पुलिस की कार्य–प्रणाली को कहानी के कथानक में पिरोकर उजागर किया है।

3. **कंवल हरियाणवी** : कंवल हरियाणवी कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं, किन्तु उन्होंने गद्यात्मक विधाओं पर भी सफलतापूर्वक लेखनी चलाई है। सन् 1995 में इनका 'लीक पुरानी मोड़ नवा' शीर्षक कहानी–संग्रह प्रकाशित हुआ है। इस कहानी–संग्रह में कुल बारह कहानियाँ संकलित हैं। डॉ. बाबू राम ने इस कहानी–संग्रह के विषय में लिखा है, ''यह कहानी–संग्रह ग्रामीण संस्कृति तथा ठेठ हरियाणवी संस्कारों का आईना है। इन कहानियों में ग्रामीण व्यक्ति की वृत्तियों का मूर्त रूप शब्दों के द्वारा तैयार किया गया है।'' इस कहानी–संग्रह में संकलित 'धन्नो', 'सरजो काकी' और 'आशा किरण' कहानियाँ नारी–जीवन की समस्याओं पर आधारित हैं।

हरियाणवी भाषा के अब तक के शोधों के अनुसार हरियाणवी कहानी का यह प्रथम संग्रह है। कंवल जी ने इस संकलन में भारतीय संस्कृति के प्राचीन एंव नवीन रंगों में यथार्थ रूप में उकेरा है। इनकी कहानियों के पात्र हमारे आस–पास के जीवन के पात्र हैं। कंवल जी की कहानियों के कथानक अत्यन्त सुगठित एवं जिज्ञासापूर्ण हैं। पात्रों की सजीवता एवं कर्मठता के कारण ही पाठक उन्हें नहीं भूलता। उन्होंने संवादात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियों का सफल प्रयोग किया है। कंवल जी की कहानियों के कथानक अत्यन्त सुगठित एवं जिज्ञासापूर्ण हैं। पात्रों की सजीवता एवं कर्मठता के कारण ही पाठक उन्हें नहीं भूलता। उन्होंने संवादात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियों का सफल प्रयोग किया है। कंवल जी ने अपनी कहानियों में ठेठ हरियाणवी भाषा का सफल प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित पंक्तियां देखिए जो पात्र को मनोवृत्ति के अनुकूल हैं–

'फूल्लू ने संतोखी तै कह्या उसे मैं बाक्की नी रई। तड़क के बोली–मन्नैं न्यूं बता जग्गू के बाप। ल्होई पाट्टी उट्ठूं सूं अर दो घड़ी रैत गये खाट देक्खूं सूं। एक पल की फुरसत नी मिलदी, सारै दिन मारी–मारी फिरू सूं। इस बुढ़कड़े नै तो राम डंडोरका सा दिक्खै सै। सारा दिन खाट पै बैठ्या मस्ती छाणै सै अर यार बास्सां गेल तास पिटै अर होक्क पाड़ै सै।'' पाठकों को भविष्य में भी कंवल जी से और कहानियों की अपेक्षा रहेगी।

4. **डॉ. राजबीर धनखड़** : हरिणायणवी कहानी साहित्य के विकास में डॉ. राजबीर धनखड़ का सर्वाधिक योगदान रहा है। अब तक इनके दो कहानी–संग्रह– 'सरपंचणी' तथा 'स्याणपत' प्रकाशित हो चुके हैं। 'सरपंचणी' शीर्षक कहानी–संग्रह सन् 1998 में प्रकाशित हुआ है। इसमें 23 कहानियाँ संग्रहीत हैं तथा 2000 में प्रकाशित 'स्याणपत' शीर्षक कहानी–संग्रह में उनकी 24 कहानियाँ संकलित है।

डॉ. राजबीर धनखड़ की कहानियों में वर्तमान युग के जीवन की विभिन्न समस्याओं का सजीव चित्रण किया गया है। इनकी कहानियों में हरियाणा की माटी से उपजी कहानियाँ है। डॉ. धनखड़ की कहानियों के कथानक सुगठित एवं विविध घटनाओं में संयुक्त हैं। उनकी भाषा ठेठ हरियाणवी है। संवादात्मक एवं वर्णनात्मक शैलियों के सफल प्रयोग से जहाँ वातावरण को सजीवता से प्रस्तुत किया गया है, वहीं भाषा में रोचकता भी उत्पन्न की गई है।

उपर्युक्त हरियाणवी कहानीकरों के अतिरिक्त श्री देवीशंकर प्रभाकर, आर.एस. चिंगारी, सहीराम, धनवंतरि, डॉ. राजेन्द्र स्वरूप आदि कहानी लेखकों ने अपनी कहानियों द्वारा हरियाणवी भाषा में रचित कहानी साहित्य को समृद्ध किया है। हरियाणवी कहानी का भविष्य उज्ज्वल है।

2.4.3. नाट्य–साहित्य : एक परिचय

हरियाणवी भाषा में दृश्य नाट्य तथा श्रव्य नाट्य दोनों प्रकार का साहित्य रचने की परम्परा रही है। हरियाणवी नाट्य साहित्य की विकास–यात्रा का वर्णन एकांकी, प्रहसन, झलकी, जिन्हें रेडियो नाटक भी कहा जाता है, आदि के विवेचन के द्वारा किया जा सकता है।

(i) एकांकी : एकांकी का तात्पर्य उस नाटक से है जिसमं एक ही अंक होता है। हरियाणवी नाट्य साहित्य के विकास में हरियाणवी में रचित एकांकी नाटकों का अध्यधिक योगदान रहा है। हरियाणवी भाषा में एकांकी रचना की आरम्भ सन् 1950 में माना जाता है। सन् 1966 में प्रकाशित 'झाडू फिरी' उपन्यास की भूमिका में श्री राजाराम शास्त्री ने लिखा है कि हरियाणवी भाषा में गत पच्चीस–तीस वर्ष से बराबर एकांकी का निर्माण हो रहा है। किन्तु हरियाणवी भाषा में एकांकी का आरम्भ विद्वानों ने सन् 1995 में प्रकाशित डॉ. राजबीर धनखड़ के एकांकी संग्रह 'बिन्धग्या सो मोती' से माना है। इस एकांकी में 'विन्धग्या सो मोती', 'अपाणे हुए पराये', 'सेवापाणी', 'आपाधापी' आदि नौ एकांकी संग्रहीत है। डॉ. लक्ष्मण सिंह ने इस एकांकी संग्रह की भूमिका में लिखा है, ''इसमें हरियाणवी संस्कृति को पूर्ण रूप से हरियाणवी भाषा में पाठकों के सम्मुख रखा गया है। ठेठ ग्रामीण परिवेश है। .... प्रत्येक एकांकी में कोई–न–कोई समस्या उठाई गई है। ..... समाज में जो कुरीतियों और अन्धविश्वास फैला हुआ है, वही विषय उजागर किया गया है। जैसे टोने–टोटके, साधुवेशधारियों द्वारा ठगी और अन्धविश्वास का प्रसार करना, समाज में शराब के जहर का बढ़ना, सास–बहू का झगड़ा, महिलाओं में शिक्षा का अभाव आदि। इन समस्याओं को उठाकर विवेकपूर्ण समाधान निकालकर पाठकों के सम्मुख पूर्ण भोजन की थाली की भाँति परोसा गया है।''

सन् 1998 में पं. किशनचन्द्र का 'लगाम' शीर्षक से हरियाणवी भाषा में रचित एकांकी संग्रह प्रकाशित हुआ। प्रस्तुत एकांकी संग्रह में गाँव की रोजमर्रा की छोटी–छोटी समस्याओं को सटीक अभिव्यक्ति प्रदान की है। प्रस्तुत एकांकी संकलन में हरियाणवी संस्कृति को सजीवता से चित्रित किया है। श्री किशनचन्द्र की हरियाणवी भाषा पर मजबूत पकड़ है। उन्होंने हरियाणवी मुहावरों एवं लोकोक्तियों का सफल प्रयोग कर भाषा को रोचक एवं सबल बनाया है।

सन् 1998 में ही श्रीरामफल चहल का एकांकी संग्रह 'विघ्न की जड़' प्रकाशित हुआ। इस एकांकी संग्रह में नौ एकांकी संकलित हैं। श्री वर्धन कपिल ने इस एकांकी संग्रह 'विघ्न की जड़' की भूमिका में लिखा है–

''प्रस्तुत संग्रह की नौ एकांकी झलकियाँ विशेषकर हरियाणवी चिन्तन एवं परिपाटियों का भला–सा चित्रण करती हैं। नाट्य विधा के सभी तत्वों के साथ ही लोक परम्पराओं का संपुट इन रचनाओं में रूचिकर बन पाया है। मंचन एवं प्रसारण दोनों ही अवस्थाओं में यथावांछित संशोधनों के मिश्रण से इनका प्रदर्शन भली–भाँति किया जा सकता है। वैचारिक परिपक्वता एवं स्वरूप लेखक की अपनी विशिष्टता का प्रमाण है। ऐसी रचनाएं वर्तमान समय की सर्वश्रेष्ठ शैली के अंतर्गत आती हैं जहां लम्बे कथानकों के लिए पाठक, दर्शक या श्रोता के पास समय का अभाव है और उपन्यास का काम सार संक्षेप और कहानी का काम उपसंहार से चलाने की चेष्टा की जाती है।''

सन् 1999 में रघुवीर सिंह मथाना कृत 'बदलते पात्र' नामक एकांकी संग्रह प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की 'स्वर्ण जंयती' तथा 'पंचायत' हरियाणवी भाषा में रचित हैं। लेकख ने इन दोनों एकांकियों में आज के परिवेश पर करारा व्यंग्य किया है। प्रस्तुत एकांकी संग्रह पर प्रकाश डालते हुए श्री ओमप्रकाश कादयान ने लिखा है–

''लेखक ने इन एकांकियों के माध्यम से समाज में घटित हो रही अच्छी–बुरी घटनाओं, बिसंगतियों, मनुष्य के बढ़ते स्वार्थ, पैसा कमाने की लालुपता, गिरते हुए नैतिक मूल्यों, धूमिल होती मानवता का सुदर चित्रण किया है। हमारे चारों ओर के वातावरण की कटु सच्चाइयाँ, समाज के यथार्थ का चित्रण करने में लेखक सफल हुए हैं। यह पुस्तक हजमारे समाज का ऐसा आइना है जो समाज की सही तस्वीर हमारे सम्मुख रखती है। ..... संग्रह की रचनाएं पढ़ने में हल्की–फुल्की अवश्य लगती हैं, किन्तु समस्याएं बड़ी गम्भीर बनी हुई हैं। ये वे समस्याएं हैं जो हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में हमारे सामने बार–बार कठिनाई बनकर आती हैं। ये समस्याएं हमारे समाज को अन्दर–ही–अन्दर खोखला कर रही हैं। इन्हीं समस्याओं को लेखक ने गंभीरता से लिया है तथा इनके विरूद्ध एक जंग लड़ने के लिए अपनी लेखनी का प्रयोग किया है।''

इन एकांकी लेखकों के अतिरिक्त डॉ. श्याम सखा 'श्याम' ने 'मुखाग्नि' एकांकी संग्रह लिखकर तथा डॉ. रणबीर सिंह दहिया ने 'कसौण' एकांकी संग्रह की रचना करके हरियाणवी एकांकी नाट्य के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इनके अतिरिक्त विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में हरियाणवी भाषा में रचित एकांकी प्रकाशित होते रहते हैं।

(ii) **प्रहसन** : 'प्रहसन' उन नाटकों का कहा जाता है, जिनमें हास्य–व्यंग्य का भाव प्रमुख रहता है। मौखिक रूप में तो हरियाणा में प्रहसन परम्परा प्राचीनकाल से चली आ रही है। प्रस्तुत नाट्य को लिखित रूप प्रदान करने का श्रेय श्री राजाराम शास्त्री को जाता है। प्रहसन के रूप में हरियाणवी भाषा में पहला संकलन सन् 1983 में 'धूलिया का पिटारा' प्रकाशित हुआ। इसके रचियता स्वयं श्री राजाराम शास्त्री ही हैं। इस संग्रह में कुल ग्यारह प्रहसन संग्रहीत हैं। इन प्रहसनों की प्रमुख विशेषता है कि इनकी कड़ियाँ परस्पर जुड़ी हैं। इन कड़ियों को जोड़ने का काम इन प्रहसनों के दो सूत्रधारों क्रमशः 'मदारी' एवं 'जमूरा' ने किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित संवाद देखिए–

मदारी : बोल, क्या देख रहा ?

जमूरा : दो भाई बैठे बातें कर रहे हैं।

मदारी : हाँ,ठीक देखा और क्या दिखाई दे रहा है ?

जमूरा : एक भाई दूसरे को मना रहा है, दूसरो अकड़ रहा है।

मदारी : ठीक देखा। बिल्कुल ठीक। अब देख, इन दोनों भाइयों के झगड़े की करामात। (मदारी और जमूरा दोनों नेपथ्य में जाते हैं। पर्दा खुलता है।)

मांगेराम : (हुक्के का कश लेते हुए) हाँ

श्रीराम : भई, वा, फैसला कर ले बैठ के ईख बोवण का ?

मंगेराम : सच्ची बात यो सै भई ! अक मैं तै ईख–वीख के चक्कर में पड़ता ना।

श्रीराम : अरै भई ! किम्मे अक्कल की बात कर। वा खेत खाल्ली पड़या सै, दोन्नू मिल के ईख बोवांगे तै पता सै कितना फादा होगा ?

हास्य के साथ–साथ इन प्रहसनों के माध्यम से तत्कालीन व्यवस्था पर करारो व्यंग्य भी किए गए हैं। उदाहरण के लिए निम्नलिखित संवाद देखिए।

न्यायाधीश : बोलो, जो कुछ कहूंगा सच–सच कहूंगा। संच के अतिरिक्त और कुछ न कहूंगा।

गंगाराम : साच न बोलूंगा तो के झूठ बालूंगा।

न्यायाधीश : जो मैंने कहा, वही बोलो।

गंगाराम : मनै के जरूरत सै जी झूठ बोलने की।

न्यायाधीश : (थोड़ा क्रोध में) जो मैंने कहा वही कहो।

गंगाराम : अजी, कह तै दिया।

वकील : जो वे बोल रहे हैं वही बोलो।

गंगाराम : अर वा सब किम्मे बोल कै भी झूठ बोल दूं तैं के आड़ लाग ज्यागी आग्गै ?

इस विधा का विकास अधिक हो सका। यद्यपि इसमें लिखने की पर्याप्त गुंजाइश है। फिर भी हरियाणवी में प्रहसनो का अभाव ही है।

(iii) झलकी/रेडियो नाटक : हरियाणवी नाट्य–विधाओं का आरम्भ रेडियो नाटकों से ही माना जाता है। सन् 1970–80 ई. के दशक में चौ. प्रताप सिंह द्वारा लिखित रेडियो नाटक 'ताऊ–झगड़ू' हरियाणवी लोक जीवन में खूब प्रसिद्ध रहा है। इस नाटक द्वारा तत्कालीन लोक–जीवन व समाज में व्याप्त समस्याओं पर हास्य–व्यंग्य शैली में प्रभावशाली ढंग से प्रकाश डाला गया है। श्री राजाराम शास्त्री ने लगभग 300 एकांकी (हिन्दी, उर्दू व हरियाणवी भाषाओं में) इसी समय श्री दयाराम मित्तल का रेडियो नाटक 'मन्नै चाहिए टूम ठेकरी' भी बहुत चर्चित रहा है।

हरियाणवी रेडियो नाटक के विकास में श्रीमती चन्द्र मलिक का भी बहुत योगदान रहा है। उनके 'गठड़ी' एवं 'नितनेम' रेडियो नाटक हरियाणा के लोक–जीवन में बहुत ही प्रसिद्ध रहे हैं। इसी प्रकार श्री बलजीत सिंह राणा ने भी अनेक रेडियों नाटक रचकर इस विधा को समृद्ध किया है। 'पाप का पट्टा', 'पंच फैसला', 'चुटकी की करामात', 'समझौते की ओर' आदि श्री बलजीत राणा के सुप्रसिद्ध रेडियो नाटक हैं। रघुवीर सिंह मथाना कृत 'रास्ता जाम है' रेडियो नाटक भी चर्चित रहा है। श्रीरामफल शर्मा का रेडियो नाटक 'चन्द्रशेखर' भी चर्चित रहा है।

डॉ. विश्वबन्धु शर्मा का नाम भी प्रसिद्ध रेडियो नाटककारों में लिया जाता है इनके नाटक 'अपना मरण जगत की हांसी' 'महादान', 'चादर फैंक दी मनै', 'घर तै पहला शिक्षा', 'इब हमनै भी जावणा होगा', 'राखी का मूल्य', 'समय की पुकार' आदि रेडियो नाटक प्रसारित एवं प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा ने डॉ. विश्वबन्धु शर्मा के रेडियो नाटकों को लक्ष्य करते हुए लिखा है, ''इन झलकियों में भूत–प्रेत संबंधी अन्धविश्वास, छुआछूत, अशिक्षा, दहेज प्रथा, पुत्र–पुत्री में भेद मानने की दूषित प्रवृत्ति आदि सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार किए गए हैं। ये सभी रचनाएं सामाजिक परिवर्तन और सुधार की चेतना से अनुप्राणित हैं।''

इनके अतिरिक्त पं. द्वारिका प्रसाद रचित 'न्यू होया कृष्ण अवतार', नरेन्द्र अत्री–कृत 'वीर माता', राजबीर धनखड़ द्वारा रचित 'घर की इज्जत' तथा श्री ओमप्रकाश दहिया–कृत 'रमलु' आदि रेडियो नाटकों ने भी हरियाणवी नाट्य साहित्य के विकास में योगदान दिया है।

2.5 अपनी प्रगति जाँचिए

(क) (i) हरियाणवी की प्रथम कहानी कौन सी है ?

(ii) 'झाडू फिरी' तथा 'फफा कुट्टणी' उपन्यासों के लेखक कौन हैं ?

(iii) 'हरियाणवी' के सुप्रसिद्ध हास्य रचनाकार कौन है ?

(iv) 'अश्वत्थामा' महाकाव्य किस पर आधारित है ?

(v) हरियाणवी किस प्रदेश की भाषा है ?

(ख) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए।

(i) आपराधिक आँकड़े कहानी के रचयिता हैं–

(क) डॉ. नानक चन्द (ख) श्री रघुवीर मथाणा

(ग) श्री मांगेराम (घ) डॉ. राजबीर धरखड़

(ii) 'लीक पुरानी मोड़ नवा' कहानी संकलन का प्रकाशन हुआ।

(क) 1980 (ख) 1994 (ग) 2004 (घ) 1995

(iii) 'सरपंचणी' शीर्षक हरियाणवी कहानी–संग्रह के रचियता है–

(क) श्री राजबीर धनखड़ (ख) श्री बलजीत राणा

(ग) श्री रघुबीर सिंह मथाना (घ) श्री राजाराम शास्त्री

(iv) डॉ. श्याम सखा 'श्याम' लेखक हैं–

(क) उपन्यास (ख) कहानी (ग) नाटक (घ) एकांकी

(v) 'माटी के स्वर' के रचनाकार हैं –

(क) तारादत्त विलक्षण (ख) कंवल हरियाणवी

(ग) जैमिनी हरियाणवी (घ) भारत भूषण सांघीवाला

2.6 सारांश

- आधुनिक हरियाणवी कवियों ने समाज का यथार्थ चित्रण किया हैं। उन्होंने अपने काव्य में समाज के अनेक चित्र प्रस्तुत किए हैं। कविताओं के माध्यम से समाज को जागृत करने का प्रयास किया।
- आधुनिक हरियाणवी कविता में राष्ट्रीय एकता एवं देश–प्रेम की भावना के भी दिग्दर्शन होते हैं। अनेक कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से देश को जागृत करने के लिए स्वाधीनता आंदलनों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया।
- आधुनिक हरियाणवी कविता में ईशवन्दना व प्रभु भवित की भावना भी निरन्तर व्यक्त होती रही है। आधुनिक हरियाणवी कविता में में हर प्रकार के शोषण का कड़ा खण्डन किया गया है।
- हरियाणवी कवियों ने सुख–दुख की अनुभूति का चित्रण कर धैर्य से काम लेने पर बल दिया है। उन्होंने साम्प्रदायिकता का विरोध किया है।
- हरियाणवी कविता में हास्य–व्यंग्य की भावना का भी चित्रण है। हरियाणवी कविता का भाव पक्ष समृद्ध एवं विशद हैं वहीं अभिव्यक्ति पक्ष अथवा भाषा शैली भी भावाभिव्यंजना में पूर्णतः सक्षम है।
- हरियाणवी में अब तक कुल तीन उपन्यास लिखे गए हैं। ये तीन हैं– 'झाडू फिरी', 'फफमा कुटणी' तथा 'समझणिए की मर'। 'झाडू फिरी' 'फफा कुटणी' दानों उपन्यास सामाजिक उपन्यास हैं। जहां तक भाषा का प्रश्न है, शास्त्री जी ने ठेठ हरियाणवी का प्रयोग किया है। यथा–स्थान हरियाणवी मुहावरों व लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग किया है।

- हरियाणवी भाषा का तीसरा उपन्यास 'समझनिए की मर' 2003 में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास के रचयिता श्री श्याम सखा 'श्याम' है।
- हरियाणा के मूर्धन्य साहित्यकार माधक प्रसाद मिश्र द्वारा रचित 'लड़की की बहादुरी शीर्षक कहानी हरियाणवी भाषा की प्रथम कहानी है। इस कहानी के वर्णित विषय सामाजिक है।
- 'डाकी डाभखाना' हरियाणवी भाषा में रचित दूसरी कहानी है। यह कहानी हास्य एवं विनोद से परिपूर्ण है। इसमें हरियाणा के लोक जीवन की विनोद प्रियता की भावना को उजागर किया गया है।
- ''आपराधिक आँकड़ें' 'लीक पुरानी मोड़ नवा' सरपंचणी और 'स्याणपत' कहानियों का भी हरियाणवी कहानियों में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।
- हरियाणवी भाषा में दृश्य नाट्य तथा श्रव्य नाट्य दोनों प्रकार का साहित्य रचा गया। हरियाणवी नाट्य साहित्य के अन्तर्गत एकांकी, प्रहसन, झलकी, आदि रचे गए। इनके द्वारा लेखकों ने गाँव की रोजमर्रा की छोटी–छोटी समस्याओं की स्टीक अभिव्यक्ति दी है। लेखकों ने इन विधाओं को द्वारा आज के बदलते परिवेश की समस्याओं का व्यंगात्मक शैली में प्रभावशाली ढंग से चित्रण किया है।

2.7 शब्दावली

अभिनन्दन	:	स्वागत
इतोहड़	:	उतोहड़
ढल्या	:	ढलना
आंदा	:	आना
बूझदा	:	बूझना, पता लगाना
पीदें–पींदे	:	पीते – पीते
हंसण	:	हंसना
दुफारा	:	दोपहर
के होया	:	क्या हुआ
परिपाटियाँ	:	परम्पराएं
प्रहसन	:	हास्य–व्यंग्य से परिपूर्ण नाटक

2.8 स्वयं मूल्यांकन परीक्षा

(i) हरियाणवी कविताओं की विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ?

(ii) 'झाड़ू फिरी' उपन्यास के कथानक का परिचय सार रूप में लिखिए।

(iii) 'लड़की की बहादुरी' कहानी की विषय वस्तु पर प्रकार डालिए।

(iv) हरियाणवी साहित्यकार रघुवीर सिंह मथाना का जीवन परिचय सार रूप में लिखते हुए उनकी प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

(v) 'लड़की की बहादुरी' कहानी की विषय वस्तु पर प्रकाश डालिए।

(vi) हरियाणवी साहित्यकार रघुवीर सिंहमथाना का जीवन परिचय सार रूप में लिखते हुए हुए उनकी प्रमुख रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

(vii) हरियाणवी नाट्य साहित्य की विवेचना कीजिए।

2.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखें

(क) (i) श्री माधव प्रसाद मिश्र (ii) श्री रामा राम शास्त्री

(iii) डॉ. शमीरा शर्मा (iv) महाभारत के सौप्तिक पर्व पर

(v) हरियाणा

(ख) (i) (ख) श्री रघुवीर मयाना (ii) (घ) 1995 (iii) (क) श्री राजबीर धनखड़

(iv) (क) उपन्यास (v) (ग) जैमिनी हरियाणवी

2.10 संदर्भ ग्रन्थ

1. डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा — हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. (संपा) डॉ. जयभगवान गोयल — हरियाणवी साहित्य सम्पदा
3. डॉ. पूर्णचन्द शर्मा — हरियाणवी साहित्य और संस्कृति
4. डॉ. राजबीर सिंह धनखड़ — हरियाणा साहित्य का इतिहास
5. (संपा) डॉ. रामपत यादव — भारत भूषण सांघीवाला हरियाणवी काव्य ग्रन्थावली।

PART-III

Subject: Hindi Complusory

Course Code: BA 302	Author: Dr. Vibha Malik
अध्याय संख्या 4:	
पत्रकारिता	

अध्याय की संरचना

4.1 अधिगम उद्देश्य

4.2 परिचय

4.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

4.3.1 पत्रकारिता का अर्थ

4.3.2 पत्रकारिता का स्वरूप

4.3.3 पत्रकारिता कीपरिभाषा

4.3.4 पत्रकारिता के मूल्य

4.3.5 पत्रकारिता के प्रकार

4.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

4.4.1 पत्रकारिता और संपादक

4.4.2 संपादक, संपादकीय विभाग और संपादन

4.4.3 संपादन का अर्थ

4.4.4 संपादक का दायित्व

4.4.5 संपादक के गुण और योग्यता

4.5 स्वयं-प्रगति जाँच

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 स्वय मूलयांकन परीक्षा

4.9 प्रगति मूलांकन हेतु प्रश्नोतर देखें

4.10 संदर्भ ग्रंथ

4.1 अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय पढ़ने के बाद आप :

- पत्रकारिता का अर्थ , स्वरूप और परिभाषा जान सके गें|
- पत्रकारिता के मूल्य समझ सकें गें|
- पत्रकारिता के प्रकारों सेपरिचित हों सकें गें|
- संपादक के कार्य और गुणों को जान जाएँ गें

4.2 परिचय

मानव जीवन में पत्रकारिता का एक महत्वपूर्ण स्थान है| सुबह होते ही हमें अपने चारों ओर घटने वाली घटनाओं को जानने के लिए अखबार की जरूरत होती है| रेडियो ,दूरदर्शन, इंटरनेट एवं सोशल मीडिया के माध्यम से भी हम समाचार प्राप्त करते रहते हैं| ये सभी माध्यम सुबह से लेकर रात तक हमारे मनोरंजन के अतिरिक्त अन्य कई जानकारियों से परिचित कराते हैं| आज के समय मे बिना पत्रकारिता के जीवन की कल्पना करना भी कठिन है|पत्रकारिता के विभिन माध्यमों के कारण आज संपूर्ण विश्व की दूरियाँ सिमट कर अत्यंत छोटी हो गई हैं तथा सारा विश्व एक सूत्र मे बंध गया

है|इसके परिणाम स्वरूप पत्रकारिता आज राष्ट्रीय स्तर हमारे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन को भी प्रभावित करने में सक्षम हो गई है|

4.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

4.3.1 पत्रकारिता का अर्थ

अपने रोजमर्रा के जीवन के एक आम दिन की कल्पना कीजिए| दो लोग आसपास में रहते हैं और लगभग रोज मिलते हैं इससे पहले के कुछ मिनट की उनकी बातचीत पर ध्यान दीजिए| उनका पहला प्रश्न क्या होता है? 'क्या हाल-चाल है?' 'या कैसे हैं?' या फिर क्या समाचार है?' रोजमर्रा के इन प्रश्नों में ऊपरी तौर पर कोई विशेष बात नहीं दिखाई देती| इन प्रश्नों के बारे में ध्यान से सोचिए| इनमें आपको एक इच्छा दिखाई देगी नया ताजा समाचार जानने की| पिछले कुछ घंटे का हाल जानने की या बीती रात की खबरें जानने की| कल से आज के बीच या कुछ घंटों के अंतराल में आए बदलाव की जानकारी| हम अपने मित्रों, रिश्तेदारों और सहकर्मियों से हमेशा उनका कुशलक्षेम या उनके आसपास की घटनाओं के बारे में जानना चाहते हैं|

अपने आसपास की घटनाओं और लोगों के बारे में ताजा जानकारी रखना मनुष्य का स्वभाव है| उसमें जिज्ञासा का भाव बहुत प्रबल है| यही जिज्ञासा समाचार और व्यापक अर्थ में पत्रकारिता का मूल तत्व है| जिज्ञासा नहीं रहेगी तो समाचार की भी जरूरत नहीं रहेगी |पत्रकारिता का विकास इसी जिज्ञासा को शांत करने की कोशिश के रूप में हुआ| वह आज भी इसी मूल सिद्धांत के आधार पर काम करती है|

हम सूचनाएं या समाचार क्यों जानना चाहते हैं? दरअसल सूचनाएं अगला कदम तय करने में हमारी सहायता करती हैं| यही कारण है कि आधुनिक समाज में सूचना और संचार माध्यमों का महत्व बहुत बढ़ गया है| यह सूचनाएं हमारे दैनिक जीवन के साथ-साथ पूरे समाज को प्रभावित करती हैं| इसीलिए हम अपने आस पड़ोस ,शहर, राज्य और देश दुनिया के बारे में जानना चाहते हैं|

पत्रकारिता के कारण हमारी इच्छा की पूर्ति सुगमता से होती है| पत्रकारिता से पूरे विश्व की घटनाओं से हमारा परिचय होता है| अंग्रेजी शब्द 'जर्नलिज्म' का हिंदी अनुवाद पत्रकारिता है 'जर्नलिज्म' शब्द 'जर्नल' से निकला है| उसका शाब्दिक अर्थ पत्रिका,रोज़नामचा',दैनंदिनी,दैनिक',है अर्थात जिस मे दैनिक कार्यों का विवरण रहता है|आज 'जर्नल' का प्रयोग समाचार पत्र या मैगज़ीन आदि के लिए होता है|जर्नलिजम या पत्रकारिता का अर्थ समाचार पत्र, पत्रिका से जुड़ा व्यवसाय है| जिस मे समाचार संकलन,लेखन,संपादन,प्रस्तुतिकरण ,वितरण आदि आते हैं| समय और समाज के संदर्भ में सजक रहकर लोगों में दायित्व बोध निर्माण कराने की कला को पत्रकारिता कहा जाता है|

4.3.2 पत्रकारिता का स्वरूप

पत्रकारिता जनसेवा का शतक सशक्त माध्यम है| इससे मानव जीवन की विविध तथा नित्य घटित वाली घटनाएं शीघ्रतिशीघ्र विश्व भर में पहुंचती है | विश्व के समाचारों और घटनाओं को संकलित करना ,उनका विवेचन करना, घबरों का विवरण इकट्ठा करना, उन्हें पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से जनता तक पहुंचाना पत्रकारिता का उद्देश्य रहा है| पत्रकारिता की शक्ति से समाज की कमियों ,गलतियों और कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है| विचारों को जनता तक पहुंचाने का साधन ही पत्रकारिता है| दुनिया के सभी विषय पत्रकारिता की परिधि में आते हैं| प्रारंभ में पत्रकारिता का उद्देश्य सरकारी तथ्यों की जानकारी जनता को देकर उनकी प्रतिक्रिया जानना था| आधुनिक संचार माध्यमों के विकास के साथ पत्रकारिता का भी विकास हुआ और उसके विषय भी विस्तृत होते चले गए| आज कोई भी ऐसा विषय नहीं है जो पत्रकारिता से अछूता हो| पत्रकार संचार के विभिन्न माध्यमों की सहायता से विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली घटनाओं की जानकारी जनता को देता है| वह लोगों को आर्थिक ,सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक,राजनीतिक गतिविधियों का परिचय देकर लोगों को जागृत करता है| आज पत्रकारिता पाठकों को शिक्षा देने के साथ मनोरंजन का भी का काम भी कर रही है|

सूचना के क्षेत्र में प्रिंट मीडिया का वर्चस्व रहा है| पत्रकारिता का प्रथम स्वरूप अखबार है| आज के वैज्ञानिक युग में पत्रकारिता के स्वरूप में विकास और विस्तार हुआ है| इसके अनेक माध्यम हो गए हैं जैसे- अखबार, पत्रिकाएं, रेडियो ,दूरदर्शन व वेब पत्रकारिता सोशल मीडिया इंटरनेट आदि| पहले समाचार 24 घंटों में जनता तक पहुंचता था| आज रेडियो और दूरदर्शन के माध्यम से कुछ क्षणों में समाचार श्रोता तक पहुंच जाता है| ईमेल से दुनिया की खबर मिनटों में मिलती है| खबरों के साथ दृश्यों को भी दर्शक देख सकता है|

संगणक के विकास से पत्रकारिता का स्वरूप विकसित हुआ है| समाचार संकलन ,लेखन संपादन आदि कार्य सहज बन रहे हैं| जिनसे अखबार का प्रकाशन समय पर होने में सहायता मिल रही है| साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आज काफी विस्तार हुआ है| इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास से पत्रकारिता के स्वरूप में विस्तार हुआ है| रेडियो, दूरदर्शन ,संगणक आदि से साहित्य पत्रकारिता के स्वरूप में काफी परिवर्तन आया है| समाचार साहित्यिक परिचर्चा, गोष्ठी, देश-विदेश की खेलकूद , विश्व महामारी, सांस्कृतिक प्रोग्राम, गोष्ठियों आदि के समाचार आज हम केवल सुनते ही नहीं बल्कि आंखों से देख भी रहे हैं| आज पत्रकारिता समाज की दिग्दर्शिका और नियामीका बन गई है|

पत्रकारिता अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है| वह एक मनोरम कला है जिसके माध्यम से जनता के सामने लोक कल्याण के कार्यों की सूची प्रस्तुत होती है| भारत में पत्रकारिता पहले मिशन के रूप में थी| आज उसमें व्यवस्था आई है| ध्वनि और चित्रों के माध्यम से ज्ञान और विज्ञान, समीक्षात्मक टिप्पणियों, के साथ पत्रकारिता से जन कल्याण हेतु जनता तक पहुंच रहे हैं| पत्रकारिता समाज को जागृत करने और जनमत निर्माण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है|

4.3.3 पत्रकारिता कीपरिभाषा

पत्रकारिता का क्षेत्र विस्तृत और व्यापक है| उसे परिभाषा की सीमा में बांधना कठिन कार्य है|अनेक विद्वानों ने पत्रकारिता को अलग-अलग शब्दों में परिभाषित करने का प्रयास किया है|

ऑक्सफोर्ड एडवांस लर्नर्स डिक्शनरी

समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, रेडियो, टेलीविजन या ऑनलाइन समाचार साइटों के लिए समाचार कहानियों को इकट्ठा करने और लिखने का कार्य; जो खबरें लिखी जाती हैं, वही पत्रकारिता है।

कैंब्रिज शब्दकोश

समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में समाचार कहानियों और लेखों को एकत्र करने, लिखने और प्रकाशित करने या रेडियो और टेलीविजन पर उन्हें प्रसारित करने का कार्य ही पत्रकारिता है।

न्यू वेबस्टर्स डिक्शनरी

" प्रकाशन, संपादन, लेखन एवं प्रसारण युक्त समाचार माध्यम का व्यवसाय पत्रकारिता है|

पत्रकारिता संदर्भ कोश

"जनसूचना, जनसंचार, जनरंजन अथवा जनसाधारण तक समाचार विचार-संप्रेषण हेतु संचालित माध्यमों (समाचार/ पत्रिका/ आकाशवाणी/ दूरदर्शन आदि) के संपादन, मुद्रण,प्रकाशन ,संयोजन आदि की विधा या कला को पत्रकारिता माना है|"

मानक हिंदी कोश

" पत्रकारिता वह विधा है जिसमें पत्रकारों के कार्यों, कर्तव्यों ,उद्देश्यों आदि का विवेचन किया जाता है|"

सी जी मूलर

“पत्रकारिता सामूहिक ज्ञान का व्यवसाय है| इसमें तत्वों की प्राप्ति, उनका मूल्यांकन एवं प्रस्तुतीकरण होता है|"

डॉ शंकर दयाल शर्मा

" पत्रकारिता एक पेशा नहीं है, बल्कि यह तो जनता की सेवा का माध्यम है| पत्रकारों को केवल घटनाओं का विवरण ही पेश नहीं करना चाहिए' आम जनता के सामने उसका विश्लेषण भी पेश करना चाहिए| पत्रकारों पर लोकतांत्रिक परंपराओं की रक्षा करने, शांति एवं भाईचारा बढ़ाने की जिम्मेदारी भी आती है|"

डॉ अर्जुन तिवारी

" प्रकाशन, चित्रों द्वारा प्रस्तुतिकरण तथा प्रसारण हेतु सामयिक और सरस तत्वों के संग्रह और संपादन को पत्रकारिता कहा जाता है |आज पत्रकारिता का क्षेत्र बहु आयामी है और मानव जीवन की समस्त गतिविधियां इसकी सीमा में आती हैं|"

डॉक्टर हरिमोहन

पत्रकारिता नवीनतम घटनाओं की जानकारी एवं विचारों को सावधानीपूर्वक चुनकर, उनका मूल्यांकन कर, यथासंभव उनका विश्लेषण या उनकी समीक्षा करते हुए(किसी भी तरह के संचार माध्यम मुद्रित अथवा श्रव्य दृश्य) की सहायता से जन जन तक पहुंचाने प्रक्रिया है|"

डॉ रामचंद्र तिवारी

“ज्ञान और विचारों की समीक्षात्मक टिप्पणियों एवं चित्रों सहित विशाल जनमानस तक पहुंचाना ही पत्रकारिता है|"

डॉक्टर संजीव भागवत

" आज पत्रकारिता सूचना और समाचारों का संकलन मात्र ना होकर मानव जीवन के व्यापक परिदृश्य को अपने में समेटे हुए हैं | वह शाश्वत नैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों को समसामयिक घटनाचक्र की कसौटी पर कसने का साधन बन गई है| ज्ञान- विज्ञान,साहित्य -संस्कृति ,आशा- निराशा, संघर्ष- क्रांति ,जय- पराजय, साहित्य- संस्कृति, उत्थान- पतन आदि जीवन की विविध भाव भूमियों की मनोहरी एवं यथार्थ छवि हम युगीन पत्रकारिता के दर्पण में देख सकते हैं |"

रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर

“ज्ञान और विचार शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुंचाना ही पत्रकला है| छपने वाले लेख-समाचार तैयार करना ही पत्रकारी नहीं है| आकर्षक शीर्षक देना, पृष्ठों का आकर्षक बनाव- ठनाव जल्दी से जल्दी समाचार देने की त्वरा ,देश विदेश के प्रमुख उद्योग- धंधों के विज्ञापन प्राप्त करने की चतुराई, सुंदर छपाई और पाठक के हाथ में सबसे जल्दी पत्र पहुंचा देने की त्वरा, यह सब पत्रकार कला के अंतर्गत रखे गए हैं|"

डॉक्टर बद्रीनाथ कपूर

" पत्रकारिता पत्र-पत्रिकाओं के लिए समाचार लेख आदि एकत्रित करने, संपादित करने, प्रकाशन आदेश देने का कार्य है"

इंद्रविद्यावाचस्पति

" पत्रकारिता पांचवा वेद है, जिसके द्वारा हम ज्ञान विज्ञान संबंधी बातों को जानकर अपना बंद मस्तिष्क खोलते हैं|"

इन सभी परिभाषाओं के आधार पर पत्रकारिता को निम्नलिखित शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है|

पत्रकारिता एक ऐसा कलात्मक सेवा कार्य है जिसमें सामयिक घटनाओं को शब्द एवं चित्र के माध्यम से जन-जन तक आकर्षक ढंग से पेश किया गया हो|पत्रकारिता आधुनिक सभ्यता का एक प्रमुख व्यवसाय है जिस में एकत्रीकरण,लेखन ,संपादन और सम्यक प्रस्तुतिकरण आदि साम्मिलित है|आज के युग में पत्रकारिता के भी अनेक माध्यम हो गए हैं जैसे अख़बार ,पत्रिकाएँ,रेडियो,दूरदर्शन,आदि मुद्रित जनमाध्यम पत्रकारिता में क्रांति ला रहे हैं |

4.3.4 पत्रकारिता के मूल्य

पत्रकारिता एक तरह से दैनिक इतिहास लेखन है | पत्रकार रोज का इतिहास अखबार के पन्नों में दर्ज करता चलता है| उसका काम और बहुत आसान लगता है लेकिन इतना आसान होता नहीं| उस पर कई तरह के दबाव हो सकते हैं| अपनी पूरी स्वतंत्रता के बावजूद पत्रकारिता सामाजिक और नैतिक मूल्यों से जुड़ी रहती है| उदाहरण के लिए सांप्रदायिक दंगों का समाचार लिखते समय पत्रकार प्रयास करता है उसके समाचार से जनता ने भड़के| सच्चाई जानते हुए भी दंगों में मारे गए या घायल लोगों के समुदाय की पहचान स्पष्ट नहीं करता| बलात्कार के मामलों में वह महिला का नाम या चित्र नहीं प्रकाशित करता ताकि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा को कोई धक्का न पहुंचे| पत्रकारों से अपेक्षा की जाती है कि वह पत्रकारिता की आचार संहिता का पालन करें ताकि उनके समाचारों से बेवजह और बिना को सबूतों के किसी की व्यक्तिगत प्रातिष्ठा को नुकसान न हो और न ही समाज मे अराजकता और अशांति फैले |

4.3.5 पत्रकारिता के प्रकार

21वीं शताब्दी में पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम के रूप में उभरा है| आज इसका क्षेत्र बहुत व्यापक हो चुका है| वर्तमान पत्रकारिता केवल समाचार पत्रिकाओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि संचार के विभिन्न माध्यमों जैसे दूरदर्शन, फिल्म , आकाशवाणी, वेबसाइट, इंटरनेट आदि क्षेत्रों में इसका विस्तार हो गया है | आज राष्ट्रीय चेतना पत्रकारिता का एकमात्र उद्देश्य नहीं है| आधुनिक युग के जितने भी

क्षेत्र हैं वे सब के सब पत्रकारिता के भी क्षेत्र हैं|मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र पत्रकारिता से अछूता नहीं है|यह जन जनसमस्याओं से जुड़ी हुई है|समाचार पत्रों को जनता की संसद माना जाता है|इसलिए पत्रकारिता को लोकतंत्र का'चौथा खम्बा माना जाता है| वर्तमान युग विशिष्टीकरण का युग है|प्रतिदिन अनेक घटनाएँ घटती है| पत्रकारिता का क्षेत्र विशाल बनने से उस की व्यापक्ता बढ़ गई है|उस के अनेक रूप एवं प्रकार सामने आए है| जिस मे से कुछ निम्नलिखित प्रकार है |

खोज परक पत्रकारिता	वॉच डॉग पत्रकारिता	एडवोकेसी पत्रकारिता	राजनैतिक पत्रकारिता	संसदीय पत्रकारिता	विकास पत्रकारिता
आर्थिक पत्रकारिता	ग्रामीण पत्रकारिता	कृषि पत्रकारिता	सांस्कृतिक पत्रकारिता	शैक्षिक पत्रकारिता	खेल पत्रकारिता
नारी पत्रकारिता	बाल पत्रकारिता	व्याख्यात्मक पत्रकारिता	विज्ञान पत्रकारिता	रेडियो पत्रकारिता	टेलीविजन पत्रकारिता
वैकल्पिक पत्रकारिता	अपराध पत्रकारिता	विशेषीकृत पत्रकारिता	विधि पत्रकारिता	फोटो पत्रकारिता	वीडियो पत्रकारिता
चित्रपट पत्रकारिता	अंतरिक्ष पत्रकारिता	संदर्भ पत्रकारिता	कार्टून पत्रकारिता	सनसनीखेज पत्रकारिता	आध्यात्मिक पत्रकारिता
		सर्वोदय पत्रकारिता	साहित्यिक पत्रकारिता		

पत्रकारिता के प्रकार

I. खोज परक पत्रकारिता

खोजपरक पत्रकारिता से आशय ऐसी पत्रकारिता से है जिस में गहराई से छानबीन करके ऐसे तथ्यों और सूचनाओं को सामने लाने की कोशिश की जाती है जिन्हें दबाने या छुपाने का प्रयास किया जा रहा हो|

आमतौर पर खोजी पत्रकारिता सार्वजनिक महत्व के मामलों में भ्रष्टाचार, अनियमितताओं और गड़बड़ियों को सामने लाने की कोशिश की जाती है | खोजी पत्रकारिता का उपयोग नीतियों में किया जाता है जब यह लगने लगे कि सच्चाई को सामने लाने के लिए और कोई उपाय नहीं रह गया है| खोजी पत्रकारिता का एक नया रूप टेलीविजन में स्टिंग ऑपरेशन के रूप में सामने आया है हालांकि भारत में खोजी पत्रकारिता तीन दशक पहले ही शुरू हो गई थी लेकिन हमारे देश में यह अभी अपने शैशव काल में ही है| जब जरूरत से ज्यादा गोपनीयता बरती जाने लगे और भ्रष्टाचार व्यापक हो तो खोजी पत्रकारिता ही उसे सामने लाने का एकमात्र विकल्प बचती है| अमेरिका का वॉटरगेट कांड खोजी पत्रकारिता का एक अच्छा उदाहरण है| जिसमें राष्ट्रपति निक्सन को इस्तीफा देना पड़ा था| भारत में भी कई केंद्रीय मंत्रियों और मुख्यमंत्रियों को खोजी पत्रकारिता के कारण अपने पदों से इस्तीफा देना पड़ा|

II. वॉच डॉग पत्रकारिता

लोकतंत्र में पत्रिका और समाचार मीडिया का मुख्य उत्तरदायित्व सरकार के कामकाज पर निगाह रखना है और कहीं भी कोई गड़बड़ी हो तो उसका पर्दाफाश करना है इसे परंपरागत रूप से वॉच डॉग पत्रकारिता कहा जाता है इसका दूसरा छोर सरकारी सूत्रों पर आधारित पत्रकारिता है |समाचार मीडिया केवल वही समाचार देता है जो सरकार चाहती है और अपने आलोचनात्मक पक्ष का परित्याग कर देता है| आमतौर पर इन दो बिंदुओं के बीच तालमेल के जरिए ही समाचार मीडिया और इसके तहत काम करने वाले विभिन्न समाचार संगठनों की पत्रकारिता का निर्धारण होता है|

III. एडवोकेसी पत्रकारिता

ऐसे अनेक समाचार संगठन होते हैं जो किसी विचारधारा या किसी खास उद्देश्य या मुद्दे को उठाकर आगे बढ़ते हैं और उस विचारधारा या उद्देश्य या मुद्दे के पक्ष में जनमत बनाने के लिए लगातार और

जोर शोर से अभियान चलाते हैं| इस तरह की पत्रकारिता को पक्षधर एडवोकेसी पत्रकारिता कहा जाता है| आपने अक्सर देखा होगा कि भारत में भी कुछ समाचार पत्र या टेलीविजन चैनल किसी खास मुद्दे पर जनमत बनाने और सरकार को उसके अनुकूल प्रतिक्रिया करने के लिए अभियान चलाते हैं| उदाहरण के लिए जेसिका लाल हत्याकांड में न्याय के लिए समाचार माध्यमों ने सक्रिय अभियान चलाया|

IV. राजनैतिक पत्रकारिता

राजनीतिक पत्रकारिता समाचार पत्रों की प्राण मानी जाती है| राजनैतिक खबरों के बिना किसी अखबार या चैनल की कल्पना भी नहीं की जा सकती| समाचार पत्रों में सबसे अधिक पढ़े जाने वाले और चैनलों पर सर्वाधिक देखे सुने जाने वाले समाचार राजनीति से ही जुड़े होते हैं राजनीतिक समाचारों के बाजार में समाचार पत्र और समाचार चैनल अपने उपभोक्ताओं को रिझाने के लिए नित नए प्रयोग करते रहते हैं| चुनाव के दिनों में तो प्रयोगों के छड़ी लग जाती है और हर कोई एक-दूसरे से आगे निकल जाने की होड़ में शामिल हो जाता है| आज जीवन के हर क्षेत्र में राजनीति का प्रभाव देखा जा सकता है ऐसे में इन समाचारों को नजरअंदाज कर पाना संभव नहीं है| लोकप्रियता हासिल करने के लिए राजनीतिक समाचारों को आकर्षक बनाया जाता है|

V. संसदीय पत्रकारिता

संसदीय पत्रकारिता का संकलन अत्यंत दायित्व पूर्ण कार्य है| लोकतंत्र में संसदीय व्यवस्था की प्रमुख भूमिका है| संसद द्वारा किए जा रहे कार्य पर नजर रखना पत्रकारिता की अहम जिम्मेदारी है क्योंकि लोकतंत्र में यही एक कड़ी है जो जनता और नेता के बीच काम करती है| संसद की कार्यवाही प्रकाशन के नियम 1956 के अंतर्गत रहकर संसद के राज्यसभा,लोकसभा,तथा प्रदेशिक विधानसभाओं और विधानपरिषदों की कार्यवाही की रिपोर्टिंग की जाती है |संसद की संपूर्ण कार्यवाही का प्रकाशन समाचार पत्रों के लिए चुनौतीपूर्ण कार्य है|संसद की कार्यवाही के बारे मे जनता जानना चाहती

है|सामाजिक,आर्थिक,राजनैतिक आदि गतिविधियों की रिपोर्टिंग करते वक्त पत्रकारों को विशेष सावधानी बरतनी पड़ती है ताकि जनहित तथा जन उपयोगी समाचार लोगों तक पहुंच सकें|

VI. विकास पत्रकारिता

आर्थिक विकास,समाज-राष्ट्र एवं विश्व की उन्नति के लिए उठाए गए कदमों के बारे में आम जनता तक पहुंचाने का काम विकास पत्रकारिता करती है|यह देश में शिक्षा, स्वास्थ्य, बेरोजगारी, कृषि एवं किसान, सिंचाई, भूखमरी, जनसंख्या वृद्धि, प्राकृतिक आपदा आदि समस्याओं से निपटने के लिए सरकार द्वारा उठाए गए कदमों के बारे में लोगों को अवगत कराती हैं| दूरगामी परिणामों पर सोचकर,गरीबी हटाओ,विकास योजनाओं का प्रचार ,द्रुतगति विकास इसमें अपेक्षित है|केंद्रीय सरकार की पत्रिका 'योजना' विकास पत्रकारिता का उदाहरण है|

VII. आर्थिक पत्रकारिता

मानव जीवन में अर्थ को महत्ता मिली है| मुद्राबाजार, पूंजीबाजार, वस्तु बाजार, पंचवर्षीय योजनाएं, बैंक, ग्रामोद्योग, श्रम, बजट, राष्ट्रीय आय, उद्योग, व्यवसाय आदि पाठकों को आकर्षित कर रहे हैं| पत्रकारिता का विकास भी आर्थिक व्यापारिक गतिविधियों के संदर्भ में हुआ है| भारत का प्रथम अखबार हिक्कीज गजट में विज्ञापनों के साथ व्यापारी गतिविधियों की सूचनाएं प्रकाशित हुई थी| अंग्रेजी व्यापारियों ने उद्योगों और बैंकों की स्थापना करके आर्थिक पत्रकारिता चलाई| 1928 में इंडियन फाइनेंस पत्र प्रकाशित हुआ जिसका संबंध केवल भारतीय व्यापारियों से था| उसके बाद'द ईस्टर्न इकोनॉमिक्स(1943) और 'द इकनॉमिक टाइम्स'(1961) का प्रकाशन हुआ है | नई आर्थिक नीति अपनाने के बाद भारत की सभी भाषाओं में आर्थिक पत्रों का प्रकाशन हुआ है जिसमें बिजनेस इंडिया, बिजनेस टुडे, बिजनेस वर्ल्ड, बिजनेस टाइम्स,फाइनेंशियल एक्सप्रेस, रिसाला बाजार,उद्योग भारती, कारोबार, व्यापार आदि प्रमुख है|

VIII. ग्रामीण पत्रकारिता

भारत गांवों का देश होने से देश की 70% आबादी गांव में रहती है| ग्रामीण पत्रकारिता का उद्देश्य वैज्ञानिक विकास पत्रों द्वारा गावों में नई चेतना लाना है| प्रसिद्ध पत्रकार गणेश शंकर विद्यार्थी के अनुसार" परंपरागत लोक कला, लोक संस्कृति' कुटीर उद्योग, ग्रामीण स्वास्थ्य, हरित और श्वेत क्रांति द्वारा गांव के संपूर्ण विकास हेतु समर्पित पत्रकारिता को ग्रामीण पत्रकारिता कहना उचित होगा" ग्रामीण जनता की समस्याओं का निवारण,कुप्रथाओं का पर्दाफाश, खेती के बारे में नवीन खोजों की जानकारी, ग्रामीण उद्योगों को बढ़ावा ,आदि ग्रामीण पत्रकारिता के महत्वपूर्ण काम है| इस पत्र में लघु उद्योग, नारी शिक्षा, पशु पालन,खेती,खाद्य,बीज,प्रोड़ शिक्षा ,परिवार कल्याण, परिवार नियोजन आदि से संबंधित जानकारी प्रकाशित होती है उसे ग्रामीण पत्र कहा जाएगा|

IX. कृषि पत्रकारिता

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में हमारी अर्थव्यवस्था काफी कुछ कृषि और कृषि उत्पादकों पर निर्भर है| भारत में आज भी लगभग 80 % जनता कृषि पर निर्भर है| ग्रामीण विकास के बिना देश का विकास अधूरा है| ऐसे मे पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है |विकास की जानकारी का उत्तरदायित्व समाचार पत्रों एवं पत्रकारिता के अन्य माध्यमों पर है|कृषि पत्रकारिता कृषको के हितों और लाभों से जुड़ी होती है|इस में कृषि अर्थशास्त्र ,मुद्रा एवं कृषि रसायन,कीट शास्त्र,जीव विज्ञान,कृषि प्रसार,पशु पालन,दुग्ध वयवसाय ,भूमि संरक्षण,उद्यान शास्त्र,फसल रिपोर्ट,मंडी की खबरें, मौसम समाचार आदि का समावेश होता है|

X. सांस्कृतिक पत्रकारिता

मानव जीवन में कला, संस्कृति एवं की भूमिका महत्वपूर्ण है| इनसे जीवन में एक नई चेतना और उमंग पैदा होती है|भारतीय जनता की सांस्कृतिक अभिरुचि , सांस्कृतिक गतिविधियाँ ,परंपराओंका

समावेश सांस्कृतिक पत्रकारिता मे होता है जिस से आज कई विलुप्त प्राचीन कला जैसे लोक नृत्य, लोक संगीत आदि को प्रोत्साहन मिलता है |विभिन क्षेत्रों में और प्रदेशों कीपरम्पराएँ,प्रवृतियाँ, सांस्कृतिक विवरणपत्रकारिता से प्रस्तुत किया जाता है जिस में संगीत,नृत्य,क्रीडा,रंगमंच आदि का समावेश होता है| भारत जैसे विशाल और बहू संस्कृति वाले देश में सांस्कृतिक पत्रकारिता द्वारा देश की सांस्कृतिक धरोहर को संरक्षित करना उदेश्य है|

XI. शैक्षिक पत्रकारिता

शिक्षा एवं पत्रकारिता का संबंध घनिष्ठ है| शिक्षा के प्रचार-प्रसार में पत्रकारिता एक प्रमुख साधन है| शिक्षा में जो भी नए आयाम है उसे प्रस्तुत करने के लिए पत्रकारिता एक साधन मात्र ही नहीं बल्कि एक मार्गदर्शक के रूप में कार्य करती है| पत्रकारिता खासतौर पर शिक्षा के क्षेत्र शिक्षा से संबंधित जानकारियों से अवगत कराती है|शैक्षणिक समाचार का आशय उन समाचारों से है जो शिक्षा के विभिन्न आयामों से जुड़े हैं|शैक्षिक पत्रकारिता शैक्षिक प्रवृतियों,शिक्षा जगत की घटनाओं तथा शैक्षिक समस्याओं को जनसंचार माध्यम से जनता तक पहुंचाती है|

XII. खेल पत्रकारिता

खेल पत्रकारिता खेल के विषयों और घटनाओं पर रिपोर्ट करता है| यह पत्रकारिता खेल क्रीड़ाओं, प्रतियोगिताओं व अन्य खेलों से जुड़ी घटनाओं पर केंद्रित होती है| शिक्षा, स्वास्थ्य प्रसारण एवं राष्ट्रीयता की भावना ने खेलों को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है| राष्ट्रीय - अंतरराष्ट्रीय क्रिकेट, हॉकी स्पर्धात्मक दौड़े, गोल्फ,टेबल टैनिस, कबड्डी तथा शतरंज आदि खेलों की ओर जनता का आकर्षण बढ़ा है| ओलंपिक ,एशियाइ व अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के आयोजनों ने भी क्रीड़ा भावना उत्पन्न की है| खेल समाचारों के साथ ,खेल का स्तर ,खेल की स्थिति,टीम का चयन, खिलाड़ियों की कमियाँ,दोष,खिलाड़ियों का मनोबल बढ़ाना आदि का विवरण देती है|

XIII. नारी पत्रकारिता

नारी समाज की आधारशिला होती है| महिलाओं के जीवन में समाज एवं गृह उपयोगी वस्तुओं के निर्माण के लिए पत्रिकाओं की अत्यंत आवश्यकता है|महिला पत्रकारिता से विचारों का दायरा विस्तृत करने तथा जागरूकता विकसित करने में सहायक होती है||,|नव निर्माण काल की पत्र-पत्रिकाएँमहिलाओं को सही दिशा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है|महिला पुरुष समानता के इस दौर में पत्रकारिता के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी भी देखी जाने लगी है| महिलाओं को सामाजिक सुरक्षा दिलाने में महिला पत्रकारिता की अहम भूमिका रही है आज महिला पत्रकारिता की अलग से जरूरत है ताकि उसमें महिलाओं से जुड़े हर पहलू पर गौर किया जाए और महिलाओं के सर्वांगीण विकास में यह महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकें |

XIV. बाल पत्रकारिता

बालक देश का भविष्य और राष्ट्र के मुस्कुराहट हैं|जिन पत्र पत्रिकाओ में बच्चों से सबंधित विषयों का उल्लेख किया जाता है उसे बाल पत्रकारिता कहते हैं|ऐसी पत्रकारिता में मनोरंजन के साथ विविध क्षेत्रों का ज्ञान भी दिया जाता है |बालकों के सम्यक विकास ,जिज्ञासा की शांति और मनोरंजन के लिए बाल पत्रकारिता काम करती है|देश प्रेम का बीजारोपण, कार्टून से, मनोरंजन,कोमल भावनाओ का विकास आदि के लिए ''बालसखा'', शिशु', 'बालक', 'चंदामामा', 'नन्दन' आदि पत्रिकाएँ काम कर रही हैं|

XV. व्याख्यात्मक पत्रकारिता

पत्रकारिता केवल घटनाओं की सूचना देना नहीं है| पत्रकार से अपेक्षा की जाती है कि वह घटनाओं की तह तक जाकर उसका अर्थ स्पष्ट करें और आम पाठक को बताएं कि उस समाचार का क्या महत्व है| पत्रकार इस महत्व को बताने के लिए विभिन्न प्रकार से उसकी व्याख्या करता है| इसके पीछे क्या कारण है| इसके पीछे कौन था और किसका हाथ है| इसका परिणाम क्या होगा इसके प्रभाव से क्या

होगा आदि की व्याख्या की जाती है| साप्ताहिक पत्रिका संपादकीय लेखों में इस तरह किसी घटना की जांच पड़ताल कर व्याख्यात्मक समाचार पेश किए जाते हैं| टीवी चैनलों में तो आजकल यह ट्रेंड बन गया है कि किसी भी छोटी सी छोटी घटनाओं के लिए भी विशेषज्ञ पैनल बिठाकर उसकी सकारात्मक एवं नकारात्मक व्याख्या की जाने लगी है|

XVI. विज्ञान पत्रकारिता

21 वी शताब्दी को विज्ञान का युग कहा जाता है| वर्तमान में विज्ञान ने काफी तरक्की कर ली है| इसने हमारे जीवन को बहुत प्रभावित किया है| हम अपनी छोटी-छोटी आवश्यकता के लिए विज्ञान पर आश्रित हो गए हैं | संपूर्ण देश अपने विकास के लिए वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रति कृतज्ञ हैं |विज्ञान पत्रिकारिता हमे विज्ञान की उपलब्धियों से उद्योग ,कृषि,चिकित्सा,अभियांत्रिकी आदि से मिलनें वाले लाभों से अवगत कराती है|'विज्ञान प्रगति'विज्ञान कला' विज्ञान कीर्ति' विज्ञान जगत'आदि पत्रिकाएँइस क्षेत्र में काम कर रहीं है|

XVII. रेडियो पत्रकारिता

रेडियो देश का सशक्त संचार माध्यम है|रेडियो की भाषा संक्षिप्त ,स्पष्ट और सरगर्भित होती है| रेडियो समाचार और सूचना तत्परता से प्रसारित करता है| इस की जानकारीइस से प्रसारित समाचार विश्वसनीयऔर उपयोगी होते हैं|रेडियो पत्रकारिता आज मीडिया के दौर में भी काफी विकसित हो रही है|

XVIII. टेलीविजन पत्रकारिता

गत वर्षों में टेलीविजन पत्रकारिता का पर्याप्त विकास हुआ है| दूरसंचार क्रांति में सेटेलाइट, इंटरनेट के विकास के साथ ही इस माध्यम का इतनी तेजी से विकास हुआ है | आज इसके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती| इसे मुख्यतः तीन भागों में रखा जा सकता है - सूचना, मनोरंजन और शिक्षा| समाचारों की अधिकता और प्रमाणिकता तथा मनोरंजन के साथ सांस्कृतिक,साहितिक,ज्ञानवर्धक

कार्यक्रमों का प्रसारण इस से होता है| दूरदर्शन देश की एकता ,अखंडताऔर जीवन मूल्यो का पोषण भी है|

XIX. वैकल्पिक पत्रकारिता

मीडिया स्थापित राजनीति- सामाजिक व्यवस्था का एक हिस्सा है और व्यवस्था के साथ तालमेल बैठाकर चलने वाले मीडिया को मुख्यधारा का मीडिया कहा जाता है| इस तरह की मीडिया आमतौर पर व्यवस्था के अनुकूल और आलोचना के एक निश्चित दायरे में ही काम करता है| इस तरह के मीडिया का स्वामित्व आमतौर पर बड़ी पूंजी के पास होता है और वह मुनाफे के लिए काम करती है |उसका मुनाफा मुख्यतः विज्ञापन से आता है| इसके विपरीत जो मीडिया स्थापित व्यवस्था के विकल्प को सामने लाने और उसके अनुकूल सोच को अभिव्यक्त करता है उसे वैकल्पिक पत्रकारिता कहा जाता है |आमतौर पर इस तरह की मीडिया को सरकार और बड़ी पूंजी का समर्थन हासिल नहीं होता है |उसे बड़ी कंपनियों के विज्ञापन भी नहीं मिलते हैं और वह अपने पाठकों के सहयोग पर निर्भर होता है|

XX. अपराध पत्रकारिता

अपराध से तात्पर्य है के समाज के प्रचलित कानूनों के विरुद्ध किया गया कार्य या कानूनों का अतिक्रमण अथवा नैतिकता के विरोध किया गया कोई कार्य| राजनीतिक समाचार के बाद अपराध समाचार ही महत्वपूर्ण होते हैं| बहुत से पाठकों व दर्शकों को अपराध समाचार जानने की भूख होती है इसी भूख को शांत करने के लिए ही समाचार पत्रों व चैनलों में अपराध डायरी, बहुत सनसनी वारदात, क्राइम फाइल जैसे समाचार कार्यक्रम प्रकाशित एवं प्रसारित किए जा रहे हैं |पत्रकारिता का कर्तव्य है कि वह आपराधिक घटनाओं की छानबीन कर के वास्तविकता सामने लाए और कर्तव्य पालन की सीख समाज को दे |जिससे समाज नैतिक मूल्यों की रक्षा की जा सके|

XXI. विशेषीकृत पत्रकारिता

पत्रकारिता का अर्थ घटनाओं को सूचना देना मात्र नहीं है| पत्रकार से अपेक्षा होती है कि वह घटनाओं की तह तक जाकर उसका अर्थ स्पष्ट करें और आम पाठक को बताएं की उस समाचार का क्या महत्व है| इसके लिए विशेषता की आवश्यकता होती है| पत्रकारिता में विषय के हिसाब से विशेषता के सात प्रमुख क्षेत्र है| इसमें संसदीय पत्रकारिता, न्यायालय पत्रकारिता ,आर्थिक पत्रकारिता, खेल पत्रकारिता, विज्ञान और विकास पत्रकारिता, अपराध पत्रकारिता और फैशन और फिल्म पत्रकारिता शामिल हैं| इन क्षेत्रों के समाचार और उनकी व्याख्या उन विषयों में विशेषता हासिल किए बिना देना कठिन होता है|

XXII. विधि पत्रकारिता

लोकतंत्र के चार स्तंभ में विधि व्यवस्था की भूमिका महत्वपूर्ण है| नए कानून ,उनके अनुपालन और उसके प्रभाव से लोगों को परिचित कराना बहुत ही जरूरी है| इस पत्रकारिता के अंतर्गत देश के कानूनों, मौलिक अधिकारों ,मानहानि ,अदालत- अवमानना अपमान लेख ,सार्वजनिक व्यवस्था, विदेशी राज्यों के साथ संबंध ,भारतीय डाक तार अधिनियम, समुद्र सीमा शुल्क, कॉपीराइट आदि अनेक विधियां आ जाती हैं| एक सफल विधि पत्रकार को इस प्रकार की विधियों और कानूनों की जानकारी होनी चाहिए| इस पत्रकारिता का मुख्य कार्य कानून व्यवस्था बनाए रखना, अपराधी को सजा देना से लेकर शासन व्यवस्था में अपराध रोकनेतथा लोगों को न्याय प्रदान करना इसका मुख्य कार्य है|

XXIII. फोटो पत्रकारिता

फोटो पत्रकारिता ने छपाई तकनीक के विकास के साथ ही समाचार पत्रों में स्थान बना लिया है| कहा जाता है कि जो बात हजार शब्दों में लिखकर नहीं कही जा सकती वह एक तस्वीर कह देती है| फोटो टिप्पणी का असर व्यापक और सीधा होता है| इसके साथ साथ ऐसी घटना जिसमें सबूत की जरूरत होती है वैसे समाचारों को फोटो के साथ पेश करने से उनकी विश्वसनीयता बढ़ जाती है|टेलीविज़न की बढ़ती लोकप्रियता के बाद समाचार पत्रों और पत्रिकाओ में तस्वीरों के प्रकाशन पर ज़ोर बढ़ा है|वैज्ञानिक

उपकरण,प्राकृतिक दृश्य ,फैशन शो आदि के फोटो सच्चाई को जों का त्यों प्रस्तुत करते हैं|इस केलिएकुशल फोटोग्राफर की आवशकता होती है|

XXIV. वीडियो पत्रकारिता

संपूर्ण बुद्धिजीवी जगत को वीडियो क्रांति ने अत्यंत आकर्षित किया है|' इंडियन ' बुक हाउस' न्यू वीडियो कैमरे पर एक पत्रिका का मूवी वीडियो का प्रकाशन सन 1988 में प्रारंभ किया था|' इन साइट' और ' न्यूज़ ट्रैक ' जैसी अंग्रेजी वीडियो समाचार पत्रिकाओं के बाद अब हिंदी में भी वीडियो पत्रकारिता का जन्म हो चुका है| फिल्म वीडियो पत्रिकाओं की सफलता से प्रेरित होकर मद्रास की' रणभूमि विजन' रामायण, महाभारत , वेद- पुराण से संबंधित गुण भूमि वीडियो पत्रिका प्रकाशित की है |सन 1988 में अपना सफर शुरू करने के बाद वीडियो पत्रकारिता का धीरे-धीरे विकास और विस्तार हो रहा है|वीडियो पत्रकारिता में सच्चाई की अधिकाधिक खबरें एवं सनसनीखेज खबरें प्रकाशित होती हैं|

XXV. चित्रपट पत्रकारिता

फिल्म जगत से जुड़े समाचार व रोचक लेख ही चित्रपट पत्रकारिता कहलाते हैं |फिल्मी कलाकारों की लोकप्रियता बढ़ने से उनके निजी जीवन के किस्से ,रोमांस,रोचक सामग्री लोग पढ़ना चाहते हैं|फिल्मों कीसमीक्षा,फिल्म उद्योग से संबंधित जानकारी या समाचार पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित होते हैं|

XXVI. अंतरिक्ष पत्रकारिता

आधुनिक काल में कृत्रिम उपग्रह ही सूचना के स्तंभ है इन्हीं उपग्रहों के कारण संचार की दुनिया में क्रांति आई है |अंतरिक्ष संचार प्रणाली के कारण समाचारों और चित्रों का संप्रेक्षण हो रहा है|अंतरिक्षयान की सहायता से लेख समाचार ,फोटो,विज्ञापन,एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र मेतुरंत भेजने मे सहयता मिलती है|संप्रेक्षण और प्रकाशन के क्षेत्रों में हो रहे परिवर्तन अंतरिक्ष पत्रकारिता के अंतर्गत आकर उसका रूप बदल रहे हैं|

XXVII. संदर्भ पत्रकारिता

इस पत्रकारिता में जो लोग कार्य करते हैं वह स्तंभ-लेखकों, संवाददाताओं, प्रशासनिक अधिकारियों तथा संपादकों को आवश्यकता पड़ने पर संदर्भ की आपूर्ति करते हैं| यह लोग पत्रकारिता तथा पुस्तकालय विज्ञान में प्रशिक्षित होते हैं तथा पुरानी कतरनो लेखों ,संदर्भ ग्रंथों और चित्रों द्वारा उनकी सहायता करते हैं इन्हें संस्थान के विश्वकोश भी कहा जाता है|संदर्भ के लिए लेख लिखते समय पत्र-पत्रिका मे पहले प्रकाशित सामग्री की अवश्यकता होती है|

XXVIII. कार्टून पत्रकारिता

कार्टून लगभग हर समाचार पत्र में होता है और उनके माध्यम से की गई सटीक टिप्पणियां पाठक को छूती हैं | एक तरह से कार्टून पहले पन्ने पर प्रकाशित होने वाले हस्ताक्षरित संपादकीय है| इनकी चुटिली टिप्पणियां कई बार कड़े और धारदार संपादकीय से भी अधिक प्रभावी होती |

XXIX. सनसनीखेज पत्रकारिता

दूरदर्शन में सनसनीखेज पत्रकारिता ने अपना विस्तृत स्थान बना लिया है| इसमें हर बात को सनसनी रूप में और तेज तरार भाषा में प्रस्तुत किया जाता है| हिंदी समाचार चैनलों पर तो इसका बहुत प्रयोग बहुत बढ़ गया है |दशकों में समाचार के प्रति आकर्षण उत्पन्न करने के लिए जानबूझकर समाचार को दिखाने से पूर्व नाटकीय शैली और सनसनीखेज रूप में इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाता है ताकि दर्शक सोचने लगे कि आखिर इस समाचार में है क्या ?तथा इस बात की वास्तविकता क्या है? सनसनीखेज पत्रकारिता के कारण हिंदी पत्रकारिता में एक आतंक पूर्ण रूप ले लिया है| उतेजनात्मक,हिंसात्मक विस्मयकारी समाचारों को इस में महता मिलने से यह पत्रकारिता जनता को कलंकित करती है|इस का उद्देश्य सस्ती लोकप्रियता है|

XXX. आध्यात्मिक पत्रकारिता

भारत देश धर्म परायण विषयों और दार्शनिकों का माना जाता है| अध्यात्म से मानव को शांतिपूर्ण जीवन की प्राप्ति होती है| आध्यात्मिक पत्रकारिता से शत्रुओं का नाश कर अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त होता है| जीवन के रहस्य को जानने का मूल मंत्र अध्यात्मिक पत्रकारिता से मिलता है|

XXXI. सर्वोदय पत्रकारिता

इस पत्रकारिता को करने वाले पत्रकार को अत्यंत धैर्य और संयम से काम करना पड़ता है| सरकार के मन में किसी वर्ग ,जाति, धर्म या संप्रदाय के प्रति किसी भी प्रकार के राग द्वेष का त्याग करता है| वह सभी लोगों के उदय, उनकी उन्नति के लिए सोचता है और प्रत्येक समाचार में अपने 'सर्वजन हिताय' दृष्टिकोण को प्रस्तुत करता है| महात्मा गांधी जी ने'मेरी जिंदगी मेरा संदेश' में अपना पत्रकार व्यक्तित्व सामने लाया था| 'हरिजन', 'नवजीवन', 'खादी जगत', 'ग्रामराज', 'हरिजन सेवा' आदि पत्रिकाएं इस क्षेत्र में योगदान निभा रही हैं| इसी प्रकार गीता प्रेस गोरखपुर द्वारा प्रकाशित रचनाएं भी इसी पत्रकारिता का उदाहरण कहीं जा सकती हैं|

XXXII. साहित्यिक पत्रकारिता

साहित्य समाज का दर्पण होता है| पत्रकारिता साहित्य संप्रेक्षण का उत्कृष्ट माध्यम है साहित्यिक पत्रकारिता एक रोचक क्षेत्र है| साहित्य क्षेत्र की गतिविधियां ,नए प्रकाशन, आलोचना ,संक्रमण, साहित्यकारों से भेंट वार्ता आदि इस क्षेत्र में आते हैं |कवि वचन सुधा, पीयूष, प्रवाह ,विशाल भारत, कादंबिनी आदि पत्र-पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र में विशिष्ट भूमिका निभाई है|

XXXIII. पर्यावरण पत्रकारिता

आदिकाल से मानव की प्रकृति के प्रति गहरी संवेदना रही है|मनुष्यप्राकृतिक संपदा की रक्षा करना चाहता है| पर्यावरण पत्रकारिता का काम केवल वायु, जल ,भूमि आदि प्रदूषण की जानकारी देना नहीं है

बल्कि गंभीर संकट से अवगत करके मानव को पर्यावरण की सुरक्षा और संरक्षण के लिए प्रेरित करना है| शुद्ध पर्यावरण सजग पत्रकारिता से संभव है|

XXXIV. शिक्षा पत्रकारिता

शिक्षा मनुष्य को संस्कृत बनाकर उसके व्यक्तित्व का विकास करती है| संयुक्त राष्ट्र के मानवाधिकार घोषणापत्र में सभी के लिए शिक्षा का अधिकार स्वीकृत है| प्रत्येक राज्य का शिक्षा विभाग पत्रिकाएं प्रकाशित करता है| ज्ञान की एक शाखा से दूसरी शाखा में मनुष्य की स्वतंत्र गतिशीलता बढ़ाने में शिक्षा पत्रकारिता महत्वपूर्ण योगदान निभाति है|'नया शिक्षक और शिक्षा'',नई तालीम'',भारतीय शिक्षा','भारती','शिक्षक बंधु'और शिक्षा पत्रिकाएँ स्तरीय शिक्षा पत्रिकाएँ रही हैं|

4.4 पाठ के आगे का मुख्य भाग

4.4.1 पत्रकारिता और संपादक

पत्रकारिता मनुष्यता के बीच संवाद की कड़ी भी है और समाज की गतिविधियों का दर्पण भी है| मानव सभ्यता के दैनिक इतिहास की रचना संपादक के नेतृत्व में संपादन और संपादकीय विभाग द्वारा की जाती है| किसी भी समाचार पत्र, पत्रिका अथवा अन्य जनसंचार माध्यम स्तर उसके संपादन व संपादकीय विभाग पर निर्भर करता है|इसीलिए संपादन विभाग पत्रकारिता का महत्वपूर्ण अंग है| संपादकीय विभाग जितना सक्रिय, योग्य, और व्यवहारिक होगा वह मीडिया उतना ही अधिक प्रचलित और ख्याति को प्राप्त होगा| किसी समाचार पत्र या पत्रिका की प्रतिष्ठा, उसका नाम, उसकी छवि, उसके संपादक के नाम के साथ बनती और बिगड़ती है| जैसे किसी फिल्म की सफलता उसके निर्देशन पर निर्भर करती है वैसे ही एक अच्छे अखबार की प्रतिष्ठा संपादक के निर्देशन से बनती है| संपादक अपनी प्रतिभा, योग्यता और अनुभव से संपादकीय पृष्ठ के लिए राजनैतिक ,सामाजिक, आर्थिक

अथवा अन्य समसामयिक विषयों पर पर आधारित नवीन और समसामयिकविचार,टिप्पणी,लेख एवं समीक्षाएं आदि द्वारा समाचारपत्र को लोकप्रियताबढ़ाता हैं|

4.4.2 संपादक, संपादकीय विभाग और संपादन

संपादन,संपादकीय विभाग और संपादक पूरा संपादन कार्य संपादक की देख रेख मे संपन्न होता है|किसी भी कार्य को अंतिम रूप देना जिस रूप में उसे प्रस्तुत करना है संपादकीय टीम करती है|संपादन और संपादकीय किसी भी समाचार पत्र पत्रिका के लिए महत्वपूर्ण शब्द हैं|संपादन का तात्पर्य किसी भी समाचार पत्र पत्रिका के लिए समाचारों ,लेखों,का चयन,उस को क्रमबद्ध करना ,सामग्री का प्रस्तुतिकरण निश्चित करना, संशोधितकरण,उस की भाषा ,व्याकरण और शैली में सुधार एवं विश्लेषण करना,और उसे पाठकों के लिए पठनीय बनाना है|संपादन कार्य को संपादित करने हेतु संपादक के नेतृत्व में कार्य करने वाली टीम को संपादकीय विभाग कहा जाता है| संपादकीय विभाग के प्रत्येक सदस्य का कार्य चुनौतीपूर्ण होता है |

4.4.3 संपादन का अर्थ

समाचार पत्र कार्यालय में विभिन्न स्त्रोतों से समाचार प्राप्त होते हैं जिन्हेसंवाददाता भेजते हैं ,एजेंसी भेजती हैं, कई बार विभिन्न संस्थाओं और राजनीतिक दलों की ओर से प्रेषित किए जाते हैं| इन सब को समाचार कक्ष में'डेस्क' पर इकठा किया जाता है| सारी सामग्री अलग-अलग तरह की होती है| उप संपादक इन सब प्राप्त समाचार सामग्री की छटनी और वर्गीकरण कर के उनमें यथावश्यक सुधार करते हैं, काटते छाटते हैं या विस्तृत करते हैं तथा उन्हें प्रकाशन योग्य बनाते हैं| यह पूरी प्रक्रिया संपादन के अंतर्गत आती है| इस प्रक्रिया के अंतर्गत अनेक स्रोतों से प्राप्त समाचारों को सगंठित कर , एक आदर्श समाचार कथा तैयार करना, आवश्यकता पड़ने पर उन में पारिवर्तन करना ,उन्हे पुन लेखन

करना इत्यादि बातें सम्मिलित है| इसलिए संपादन पत्रकारिता की वह कला है जो समाचार को पाठकों के लिए रुचिकर, मनोरंजक ,तथ्यपूर्ण व ज्ञानवर्धक बनाकर प्रस्तुत करती है|

4.4.4 संपादक का दायित्व

किसी भी समाचार पत्र पत्रिका में संपादकका कार्य महत्वपूर्ण होता है और चुनौतीपूर्ण भी| वह संपादन विभाग में कार्यरत सभी सदस्यों का कुशल नेतृत्व करता हुआ अपने पत्र की प्रतिष्ठा को कायम रखता है|संपादक संपादन मंडल के लिए पथ प्रदर्शक है| पत्रसंपादन आसान काम नहीं है|क्यो की यह परिश्रम साध्य एवं बौद्धिक कार्य है| इसमें मेधा, निपुणता और अभिप्रेरणा की आवश्यकता होती है| एक ध्रुव तारे की तरह से संपादक अपनी टीम को सही रास्ता दिखाते हैं| जब समाचार कार्यालय में विभिन्न स्त्रोतों से समाचार प्राप्त करते हैं|पूरी समपादकीय प्रक्रिया सारी प्रक्रिया में संपादक एक मार्गदर्शक का काम करता है||संपादक का कार्य केवल काँट छांट के निर्देशन तक ही सीमित नहीं है, उस में अनुवाद करना ,समाचारों, को वैचारिक दृष्टि से समीक्षा कर,परिवर्तन कर उस को एक प्रभावित रूप भी देना भी सम्मिलितहैं| वह खबरों की प्रमाणिकता और निष्पक्षता के बारे में पूर्ण जाँच कर संतुष्ट होकर ही ख़बरों को छपने की स्वीकृति देता है|

सन्नी थामस के शब्दों में' संपादक सभ्यता का प्रकाश स्तंभ होता है| ज्ञान का यह प्रकाश स्तंभ होता है जो महत्वपूर्ण व्यक्तियों तथा जीवन के प्रति उच्च लक्ष्यों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत होता है| ग्रीक विचारको के अनुसार संपादक की समाज में महत्ता महान दार्शनिक सुकरात जितनी है|सम्पादक का चिंतन उन समसामयिक व्यक्तियों की सोच की सोच को प्रभावित करता है जो अपने कामों से इतिहास की रचना करते हैं|

कार्लाइन ने संपादक को सच्चा सम्राट और धर्मोपदेशक माना है| माखनलाल चतुर्वेदी ने संपादकीय कार्य को अयाचित अथवा स्वयं स्वीकृत सेवा माना| वस्तुतः संपादक के प्रति समर्पित होता हैउस की

कलम में| देश की धड़कन और जन-जन की संवेदनाएं छिपी रहती हैं| अतः संपादक पर सामाजिक, राजनीतिक, और राष्ट्रीय दायित्व होता है| सी ई मोंटेग्यू ने संपादक को स्नायु मंडल का मेधा केंद्र कहा है| नवभारत टाइम्स के पूर्व संपादक अक्षय कुमार जैन के अनुसार:

"हिंदी का पाठक वर्ग तो संपादक को अपना मित्र नेता और परामर्शदाता सब कुछ मानता है| जनसंपर्क और नेतृत्व का अच्छा ज्ञान उसे होना चाहिए| "एडोल्फ मायर का कहना है कि " लाखों पाठकों के लिए संपादक ही समाचार पत्र होता है|" प्रेस और उस तक पंजीकरण अधिनियम 1807 के अनुसार संपादक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो समाचार पत्र में प्रकाशित होने वाली सामग्री के चयन को नियंत्रित करता है संपादक का समाचारपत्र या पत्रिका में का दायित्वपूर्ण कार्य होता है |

4.4.5 संपादक के गुण और योग्यता

संपादक अपने व्यक्तित्व से समाचार पत्र को विशिष्टता प्रदान करता है|एक सफल संपादक में निम्नलिखित योग्यताएं होनी चाहिए|

सत्यनिष्ठा	ईमानदारी	निष्पक्षता	नेतृत्व क्षमता एवं योग्यता	भाषा का ज्ञान	एक अच्छा चिंतक
निर्भीकता	तकनीकी ज्ञान	धैर्यशीलता	प्रभावशाली अभिव्यक्ति	विनोद प्रियता	संवेदनशीलता
उदारता का गुण	तीव्र स्मरण शक्ति	प्रेस कानूनों का ज्ञान	दूरदृष्टि	निर्भयता	स्पष्टवादिता
आत्मानुशाशान	गतिशीलता	रचनात्मक लेखन	क्षमता	कल्पनशीलता	विवेचना शक्ति
निर्विकार मस्तिष्क	न्यायप्रियता	सावधानी	उत्तरदायित्व की भावना	कार्यशीलता	उत्साह
	लगन	सहानुभूती	स्वाभिमान		

I. **सत्यनिष्ठा,ईमानदारी और निष्पक्षता**

एक संपादक के लिए ईमानदार,सत्यनिष्ठ और निष्पक्ष होना बहुत जरूरी है|उस की निष्पक्षता से उस के समाचार संगठन की साख बनतीहै|यह प्रतिष्ठा तभी बनती है जब संपादकीय टीम बिना किसी का पक्ष लिए सच्चाई सामने लाए गी|पत्रकारिता लोकतंत्र का चौथा खम्बा कहा जाता है| पत्रकारिता की राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन मे अहम भूमिका है|निष्पक्षता का अर्थ तट्स्थ्ता नहीं है|इस लिए सही और गलत,अन्याए और न्याय जैसे मसलों के बीच तटस्थ नहीं हो सकती बल्कि निष्पक्ष होते हुए भी सही और न्याय के साथ होती है|संपादक की निष्पक्षता पूरी टीम के लिए एक अनुसरण का उदाहरण बनती है|

II. नेतृत्व क्षमता एवं योग्यता

संपादक अपने समाचार पत्र का मुखिया होता है उसके साथ उपसंपादक, सहसंपादक, संवाददाता ,टेक्नीशियन व समाचार पत्र के विभिन्न विभागों में काम करने वाले कर्मचारी काम करते हैं| इन को साथ लेकर चलना और उन से काम करवाना संपादक का ही कार्य है| इन कार्यों को सुचारु रूप से तभी किया सकेगा जब उसमें सबको नेतृत्व करने की क्षमताया योग्यता होगी|

III.भाषा का ज्ञान| समाचार पत्र जिस भाषा में प्रकाशित होता है संपादक को उस भाषा पर पूरा अधिकार होना चाहिए तभी वह अपने संपादकीय लेखों को प्रभावशाली ढंग से लिख सकेगा और उप संपादकों और सहायकसंपादकों के साथ लिखी गई सामग्री की भलीभांति जांच कर सके गा| सरल भावों या विचारों को भी शुद्ध एवं प्रभावशाली भाषा में किए जाए तो पाठक को आकर्षित करने एवं प्रमाणित करने में सफल होते हैं|

IV. एक अच्छा चिंतक

संपादक का काम एक दार्शनिक या विचारक की तरह होता है|संपादक का चिंतन हर उस व्यक्ति प्रभावित करता है जो देश निर्माण के क्रिया कलापों से जुड़े हैं | पत्रकारिता के प्रतिदिन के इतिहास की रचना में समपादकीय पृष्ठमें एक संदेश छुपा होता है|

V. निर्भीकता

श्रेष्ठ और सुयोग्य संपादक मे निर्भीकता का गुण होना आवश्यक है |वह भीड़ के अनुसार अपना मत नहीं बनाता ,सम्मान के पीछे नहीं भागता बल्कि चिन्तन के आधार पर निर्भीकता पूर्वक अपनी राय देता है| वह सच्चाई बताने मे कभी नहीं हिचकता| वह शासन को भी खरी खरी सुनाने की हिम्मत रखता है| उस की स्पष्टवादिता के पीछे लोक हित तथा सार्वजनिक कल्याण की गहरी भावना होनी चाहिए|

VI. तकनीकी ज्ञान

संपादन एवं प्रकाशन संबंधी तकनीक का ज्ञान होना एक संपादक के लिए अनिवार्य है आज के युग में समाचार पत्रों के प्रकाशन की नई नई तकनीक आ रहीं हैं| जिन के सहयोग से समाचार पत्रों का प्रकाशन ने केवल आकर्षक रूप में ही किया जा सकता है अपितु सस्ता भी पड़ता है| इसलिए कुशल संपादन एवम प्रकाशन के लिए संपादक को सभी तकनीकों का ज्ञान होना आवश्यक है|

VII. धैर्यशीलता

हर प्रकार के काम करने वाले मनुष्य में धर्यशीलता का गुण होना चाहिए| अधीर व्यक्ति कभी भी सही निर्णय नहीं ले सकता| फिर समाचार पत्र तो समाज का मुख समझा जाता है| इसलिए उसमें बिना सोचे समझे कुछ भी जल्दी में लिखने से एक समाचार पत्र की छवि धूमिल होगी और समाज में गलत संदेश पहुंचेगा| इसलिए ऐसी परिस्थिति से बचने के लिए संपादक का धैर्यशील होना अनिवार्य है| तभी वह सोच समझ कर अपने समाचार पत्र की नीतियों को सही ढंग से निर्धारित कर सकेगा|

VIII. प्रभावशाली अभिव्यक्ति

संपादकीय लेखों में संपादक व समाचार पत्र के स्वामियों की नीति व विचारधारा होती है| यह स्पष्ट रूप से तभी झलक सकेगी जब संपादक की अभिव्यक्ति क्षमता सबल होगी| एक कुशल संपादक ही विषय को उसकी पूरी पृष्ठभूमि में विवेचन- विश्लेषण करके प्रभावशाली ढंग प्रस्तुत कर सकता है तभी पाठक उसे गहराई से समझ सकेंगे|

IX. विनोद प्रियता

संपादक का कार्य बहुत गंभीर कार्य होता है| संपादक जहां गंभीर से गंभीर समस्याओं पर घटनाओं का विश्लेषण करता है तो वही वह कभी शिष्ट हास्य द्वारा मनोरंजन करता है तो कभी व्यंग करके पाठकों को वस्तुस्थिति से अवगत कराता है| इसलिए संपादक में विनोद प्रियता का गुण भी होना चाहिए|

X. संवेदनशीलता

यद्यपि संपादक का कार्य अत्यंत तथा तटस्था वाला कार्य है किंतु समाचार पत्र जन सामान्य से भी जुड़े रहते हैं| अतः उन्हें मानवीय संवेदना को समझना और उनका पक्ष लिया जाना अनिवार्य होता है| यह कार्य मानवीय संवेदनाओं संयुक्त संपादक ही सफलतापूर्वक कर सकता है| आज के भौतिकवादी और वैज्ञानिक युग में संवेदनशील संपादक अपने संपादकीय लेखों द्वारा मानवीय संवेदना को जागृत कर सकता है| इससे समाज व देश में आपसी सहयोग और दुख- सुख में साथ देने की मानवीय चेतना का विकास होगा|

XI. उदारता का गुण

संपादक में उदारता का गुण होना अति आवश्यक है| उसे दूसरों को भी श्रेय देने की उदारता अपने अंदर पैदा करनी चाहिए| अगर वह अपनी टीम के सदस्यों को उनके द्वारा की गई मेहनत का श्रेय देता है तो इससे न केवल उसका बड़प्पन जाहिर होता है बल्कि वह अपनी टीम को और अधिक मेहनत से

काम करने का वातावरण भी देता है| संपादक जितना ज्यादा श्रेय दूसरों को देगा उसे उतना ही ज्यादा सम्मान मिलेगा| संपादक अपनी टीम का कप्तान होता है इसलिए अपनी टीम को उत्साहित रखना उसका फर्ज है|

XII. तीव्र स्मरणशक्ति

तीव्र स्मरण शक्ति संपादक की अतिरिक्त योग्यता है|घटनाओ का क्रमश: प्रस्तुतिकरण स्मरणशक्ति पर निर्भर करता है|कई बार समाचारों में कुछ महीनों या कुछ वर्ष पुराने तथ्यों को देना आवश्यक होता है|ऐसी परिस्थिति में संपादक अपनी टीम की सहयता कर सकता है|किसी व्यक्ति ने कब ,कहाँ,क्या कहा?अमुक घटना कहाँ,किस प्रकार घटी ?अमुक व्यक्ति जीवित है या नहीं आदि की जानकारी समरण शक्ति पर निर्भर है| संपादक का अनुभव लेखों का विवेचन करने और तर्कशील बनाने में कारगर सिद्ध हो गा |

XIII. प्रेस कानूनों का ज्ञान

संपादक को प्रेस कानूनों का प्रयाप्त ज्ञान होना आवश्यक है| उस की टीम की तनिक सी लापरवाही समाचार पत्र ,संस्थान को संकट में डाल सकती है|

XIV. अतिरिक्त गुण

उपरोक्त गुणों के अलावा संपादक की दूरदृष्टि,निर्भयता और स्पष्टवादिता, आत्मानुशाशान, गतिशीलता, रचनात्मक लेखन, क्षमता और कल्पनशीलता जैसे गुण समाचार पत्र को विशिष्टता प्रदान करे गें |यह भी जरूरी है कि

उस में अपने सहयोगीउपसंपादक और संवदाता,रिपोर्टर,समालोचक ,लेखक आदि समपादकीय विभाग से संबंध रखने वाले कर्मचारियों के सभी गुण होने चाहिए| उस के अध्ययन में व्यापकता और चिंतनशीलता समाचार पत्र या पत्रिका का स्तर श्रेष्ठ बनाती हैं| एक अच्छे संपादक में विवेचना

शक्ति,निर्विकार मस्तिष्क, न्यायप्रियता,सावधानी, उत्तरदायित्व की भावना, कार्यशीलता,उत्साह,लगन, सहानुभूती,स्वाभिमान आदि अनेक गुण और योग्यताएँ भी होनी चाहिए|

4.5 स्वयं-प्रगति जाँच

अ) निम्नलिखित वाक्यों में दिए पर्यायों में से सही पर्याय चुनकर वाक्य फिर से लिखें|

1. जर्नलिज्म शब्द............. से निकला है|

(क) जर्नल (ख) जर्मन (ग) जापान(घ) जनतंत्र

2. भारत की 80% जनता.......... पर निर्भर है

(क) पत्रकारिता (ख) कृषि(ग) उद्योगों (घ) रेडियो

3. .... को लोकतंत्र का चौथा खंबा कहां जाता है|

(क) उद्योग (ख) कृषि (ग) वैज्ञानिक(घ) पत्रकारिता

4. खोजी पत्रकारिता में समाज में व्याप्त........... की खोज करते उन्हें प्रकाश में लाया जाता है|

(क) गरीबी व भुखमरी भूखमरी (ख) भ्रष्टाचार व घोटाले(ग) गुमशुदा (घ) हीरे जवाहरात

5.सम्पादक वह व्यक्ति है जो समाचार पत्र के----------कार्य का निर्देशन और निरीक्षण करता है|

(क) वेतन (ख) नियुक्ति (ग) फीचर लेखन (घ) संपादकीय

(आ) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर एक वाक्य में लिखिए|

1. अंग्रेजी शब्द जर्नलिज्म का हिंदी अनुवाद क्या है?

2. पत्रकारिता किसे कहा जाता है?

3. श्री रामकृष्ण रघुनाथ खंडिलकर के अनुसार पत्रकारिता किसे कहते हैं?

4.मानक हिंदी कोश, के अनुसार पत्रकारिता क्या है?

5. पत्रकारिता का मूल तत्व क्या है?

4.6 सारांश

- पत्रकारिता एक कलात्मक कार्य है जो लोगो में दायित्व बोध का कार्य करती है| पत्रकारिता एक सशक्त माध्यम है जिस में सामयिक घटनाओ को शब्द और चित्रण के माध्यम से जन जन तक आकर्षक ढंग से पेश किया जाता है | आकाशवाणी,दूरदर्शन,संगणक आदि माध्यम भी पत्रकारिता से जुड़े हैं|
- अपने आसपास की चीजों, घटनाओं और लोगों के बारे में ताजा जानकारी रखना मनुष्य का सहज स्वभाव है| उसमें जिज्ञासा का भाव बहुत प्रबल है| यही जिज्ञासा समाचार और व्यापक अर्थ में पत्रकारिता का मूल तत्व है| जिज्ञासा नहीं रहेगी तो समाचार की जरूरत नहीं रहेगी |
- पत्रकारिता शब्द अंग्रेजी के जनरलिज्म का हिंदी रूपांतर है|
- पत्रकारिता जनसेवा का सशक्त माध्यम है| इससे मानव जीवन की व्यवस्थाएं और नित्य घटित होने वाली घटनाएं शीघ्रतिशीघ्र विश्व भर में पहुंचती हैं| विश्व के समाचारों और घटनाओं को संकलित करना, उनका विवेचन करना, खबरों का विवरण करना पत्रकारिता का उद्देश्य रहा है| पत्रकारिता की शक्ति से समाज की कमियों ,गलतियां और दोषों को दूर करने का प्रयास किया जाता है| विचारों को जनता तक पहुंचाने का साधन पत्रकारिता है| दुनिया भर के सभी विषय पत्रकारिता की परिधि में आते हैं|
- पत्रकारिता विज्ञान की देन है| पत्रकारिता का प्रथम स्वरूप अखबार है| आज के वैज्ञानिक युग में सूचना व संचार माध्यमों की नई तकनीकों के कारण पत्रकारिता के स्वरूप में विकास और विस्तार हुआ है | आज नए संचार के माध्यमों से समाचार कुछ क्षणों में जनता तक पहुंच जाते है| ई-मेल से दुनिया की खबर मिनटों में मिलती है| खबरों के साथ दृश्यों को भी दर्शक देता है| संगणक के विकास से पत्रकारिता का स्वरूप विकसित हुआ है समाचार संकलन लेखन

संपादन आदि कार्य सहज बन रहे हैं| इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विकास से भी पत्रकारिता के स्वरूप में विस्तार हुआ है|

- पत्रकारिता एक तरह से दैनिक इतिहास लेखन होता है|
- पत्रकारों को आचारसंहिता का पालन करना चाहिए ताकि समाज में अराजकता और अशांति ना फैले|
- पत्रकारिता के कई प्रकार है जैसे खोज परक, वॉच डॉग, एडवोकेसी,राजनैतिक,संसदीय, विकास, आर्थिक, ग्रामीण, कृषि, सांस्कृतिक, शैक्षिक, खेल,नारी,बाल ,व्याख्यात्मक,विज्ञान, रेडियो,टेलीविजन,वैकल्पिक,अपराध, विशेषीकृत, विधि, फोटो,वीडियो, चित्रपट पत्रकारिता,अंतरिक्ष, संदर्भ,कार्टून, सनसनीखेज, आध्यात्मिक, सर्वोदय, साहित्यिक,पर्यावरण, शिक्षा पत्रकारिता|
- लोकतंत्र में पत्रकारिता को चौथा स्तंभ माना गया है| इसलिए राष्ट्रीय एवं सामाजिक जीवन में इसकी अहम भूमिका है| न्यायपालिका, कार्यपालिका, विधायिका जैसे तीन स्तंभों को बांधे रखने के लिए पत्रकारिता एक कड़ी के रूप में काम करती है|
- संपादन संपादकीय विभाग पत्रकारिता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंग है जो हर समय गतिशील रहता है| संपादन कार्य को संपादित करने के लिए करने वाली टीम को संपादकीय मंडल या संपादकीय विभाग कहा जाता है| संपादकीय विभाग प्रधान संपादक संपादक के नेतृत्व में काम करता है| संपादक का किसी भी समाचार पत्र या पत्रिका ने महत्वपूर्ण स्थान होता है| संपादक के दिशा निर्देश अनुसार ही समाचार पत्र या पत्रिका का प्रकाशन होताहै|
- समाचार पत्र की छवि संपादक के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है|
- एक सफल संपादक में निम्नलिखित गुण या योग्यताएँ होनी चाहिये जैसे सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, निष्पक्षता,कार्यकुशलता, दूरदृष्टि, निर्भयता और स्पष्टवादिता, आत्मानुशासन, गतिशीलता, नेतृत्व, क्षमता, योग्यता, चिंतक निर्भीकता,तकनीकी ज्ञान रचनात्मक,लेखन क्षमता,

कल्पनशीलता, उत्साह, सहानुभूती, लगन, उत्तरदायित्व की भावना, शांत, न्यायप्रियता, आदि| संपादक के यही गुण समाचार पत्र को विशिष्टता प्रदान करते हैं|

4.7 शब्दावली

- अभिव्यक्ति - विवरण,कथन,वर्णन
- विधयिका - विधान निर्मात्री(जैसे-विधान परिषद,विधान सभा, लोक सभा आदि)
- मुद्रण - छापने का काम
- विशिष्ट - पृथक,न्यारा,अनन्य,एकमात्र
- पीठिका - आधार
- प्रेषण - भेजना

4.8 स्वय मूलयांकन परीक्षा

1. पत्रकारिता का स्वरूप समझाइए।
2. पत्रकारिता के प्रकारों पर प्रकाश डालिए|
3. संपादक के गुणों और दायित्व पर प्रकाश डालिए|
4. संपादक को संपादन मण्डल का मुखिया क्यों कहते हैं?
5. संपादन के मूल्यो पर टिप्पणी कीजिए|

4.9 प्रगति मूलांकन हेतु प्रश्नोतर देखें

अ)

(1) जर्नल(2) कृषि(3) पत्रकारिता(4) भ्रष्टाचार व घोटाले (5) संपादकीय

आ)

1. अंग्रेजी शब्द जर्नलिज्म का हिंदी अनुवाद पत्रकारिता है|
2. समय और समाज के संदर्भ में सजग रहकर लोगों में दायित्व बोध निर्माण कराने की कला को पत्रकारिता कहा जाता है|
3. श्री रामकृष्ण रघुनाथ खाडिलकर कर के अनुसार ज्ञान और विचार शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरों तक पहुंचाना ही पत्रकारिता है|
4. मानक हिंदी शब्दकोश के अनुसार पत्रकारिता वह विधा है, जिसमें पत्रकारों के कार्यों कर्तव्यों उद्देश्यों आदि का विवेचन किया जाता है|
5. जिज्ञासा पत्रकारिता का मूल तत्व है।

4.10 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रयोजनमूलक हिंदी	डॉक्टर लक्ष्मीकांत पांडे, प्रमिला अवस्थी
2. प्रयोजनमूलक हिंदी	डॉक्टर अंबादास देशमुख
3. आधुनिक पत्रकारिता	डॉक्टर अर्जुन तिवारी
4. पत्रकारिता के नए परिपेक्ष	राजकिशोर
5. हिंदी पत्रकारिता: स्वरूप और संदर्भ	डॉ विनोद गोदरे
6. हिंदी पत्रकारिता और संचार	डॉ ठाकुर दत आलोक
7. पत्रकारिता के परिपेपेक्ष्य	राजकिशोर
8. पत्रकारिता की विभिन्न धाराएं	डॉ निशांत सिंह
9. हिंदी पत्रकारिता: आश्यवस्ति और आशंका	कृष्ण बिहारी मिश्र
10. पत्रकारिता के नए आयाम	एस के दुबे
11. समाचार संपादन	प्रेमनाथ चतुर्वेदी
12. पत्रकारिता एवं संपादन कला	एन. सी. पंत

13. संपादन कला	संजीव भानवत
14. पत्र संपादन कला	नंदकुमार देव
15. इलेक्ट्रॉनिक मीडिया बदलते परिदृश्य	डॉ शालू सूरी

Subject: Hindi Compulsory

Course Code : BA 302	Author : Vibha Malik
अध्याय संख्या : 5	

फीचर लेखन

5.1 अधिगम उद्देश्य

5.2 परिचय

5.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

5.3.1 फीचर : अर्थ, एवं महत्व

5.3.2 फीचर की विशेषताएँ

5.3.3 फीचर लेखन के तत्व

5.3.4 फीचर लेखन के प्रकार

(i) न्यूज फीचर अथवा समाचार फीचर

(ii) विशेष घटनाओं पर आधारित फीचर

(iii) व्यक्तिपरक फीचर

(iv) त्यौहार, पर्व सम्बन्धी फीचर

(v) खोजपरक अथवा छानबीन पर आधारित फीचर

(vi) मनोरंजन, फिल्म या सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सम्बन्धित फीचर

(vii) जनरूचि के विषयों पर आधारित फीचर

(viii) विज्ञान विचार

(ix) विज्ञान व तकनीकी पर केन्द्रित फीचर

(x) फोटो फीचर

(xi) इलैक्ट्रानिक मध्यमों के फीचर

(xii) चित्रात्मक फीचर

(xiii) व्यंग्य फीचर

(xiv) यात्रा फीचर

(xv) ऐतिहासिक फीचर

5.3.5 फीचर की रचना और लेखन

5.4 पाठ के आगे का भाग

5.4.1 फीचर लेखन एवं छायांकन

5.4.2 फीचर और लेख में अन्तर

5.4.3 रेडियो और टीवी के लिए फीचर लेखन

(i) रेडियो फीचर

(ii) टेलीविजन फीचर

5.5 अपनी प्रगति जांचिए

5.6 सारांश

5.7 शब्दावली

5.8 स्वमूल्यांकन परीक्षा

5.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखों

5.10 संदर्भ ग्रन्थ

5.1 अधिगम उददेश्य

- फीचर के विभिन्न प्रकारों की जानकारी हासिल करेंगे।
- फीचर की रचना एवं लेखन प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- रेडियो और टीवी के लिए फीचर लेखन की बारिकियाँ समझ सकेंगे।
- फीचर और लेख में अन्तर को समझ सकेंगे।

5.2 परिचय

आज फीचर लेखन तथा उसके प्रस्तुतिकरण का आधुनिक पत्रकारिता में अत्यधिक महत्व हो गया है। समाचार अगर पत्रकारिता की रीढ़ है तो फीचर पत्रकारिता का सौन्दर्य बढ़ाने वाली शक्ति। पत्रकारिता में समाचार जहाँ तात्कालिक घटनाओं का तथ्यपूर्ण अभिलेख होता है तो रूपक यानी फीचर समाचार के तत्काल स्वरूप से अलग उसका विस्तार, उसका सचित्र प्रस्तुतिकरण या उसके जुड़े सम्पूर्ण घटनाक्रम का विवरण प्रस्तुत करता है। आधुनिक पत्रकारिता में अब स्थानाभाव के कारण समाचार लेखन में शब्दों की सीमा तय कर दी गई है और पत्रकार को उसी शब्द सीमा में सब कुछ कहना होता है। ऐसे में फीचर, पत्रकार के लिए मददगार के तौर पर काम करता है। फिचर में ग्राफिक्स, चित्रों, रेखाचित्रों और संक्षिप्त प्रस्तुतिकरण के जरिए बहुत छोटे स्थान में बहुत कुछ कहा, लिखा या प्रस्तुत किया जा सकता है। रूपक का विकास विवरणात्मक रचनाओं से हुआ है लेकिन शब्दों और सीन की सीमा के चलते अब फीचर भी संक्षिप्त होने लगे हैं। हालाँकि संक्षिप्त होने के बावजूद फीचर का महत्व कम नहीं हुआ है बल्कि और अधिक बढ़ गया है।

फीचर में समाचार के विस्तार को ही एक विशेष तकनीक के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इसके लिए फीचर लेखक को यह पता करना होता है कि समाचार का मुख्य विषय या मुख्य पात्र कौन है? समाचार के मुख्य विषय के साथ जुड़े प्रमुख तत्व क्या है? लेखक को इस सबको प्रस्तुत करते समय उसमें व्यक्तिगत स्पर्श भी देना होता हैं? मानवीय भावनाओं के स्पर्श के साथ–साथ मनोरंजनक ढंग से प्रस्तुत फीचर अधिक लोकप्रिय होते है क्योंकि उनसे विषय के सम्पूर्ण तथ्यों की जानकारी के साथ–साथ पाठक, श्रोता या दर्शक का मनोरंजन भी होता है।

समाचार तथ्यों का विवरण तथा विचार देकर खत्म हो जाता है जबकि फीचर में घटना अथवा विषय के परिवेश, विविध पक्षों तथा उसके प्रभावों का वर्णन होता है। समाचार में लिखने वाले के फीचर अथवा उसके व्यक्तित्व की झलक नहीं होती जबकि फीचर में लेखक की विचारधारा, उसकी कल्पना शीलता के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व की भी झलक मिलती है। फीचर में कथा तत्व की प्रधानता रहती है यानी उसके लेखन या प्रस्तुति में सरलता और प्रवाह दोनों ही होते हैं। लेकिन फीचर कथा नहीं होता है। फीचर कल्पनागजगत की बातों में खो जाने के बजाय विषय की गहराई में जाकर पाठकों की जिज्ञासा को शांत करने का काम करता है।

फीचर लेखन एक कलात्मक काम है और किसी भी पत्रकार को अच्छा फीचर लेखक बनने के लिए –

1. विषय का गम्भीरता से अध्ययन करना चाहिए।
2. इस बात का प्रयास करना चाहिए कि फीचर सामयिक हो।
3. उसमें सूक्ति, मुहावरों, उदाहरणों का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
4. उसमें रोचकता होनी चाहिए। मनोरंजक होने के साथ ही उसे शिक्षाप्रद भी होना चाहिए।
5. उसकी विश्वसनीयता बरकरार रखने के लिए छायाचित्रों, रेखाचित्रों आदि का भी उसमें पर्याप्त इस्तेमाल होना चाहिए।

5.3 अध्याय के मुख्य बिन्दु

5.3.1 फीचर

फीचर समाचारों के प्रस्तुतिकरण की ही एक विधा है लेकिन समाचार की तुलना में फीचर में गहन अध्ययन, चित्रों, शोध और साक्षात्कार आदि के जरिए विषय की व्याख्या होती है। उसका विस्तृत प्रस्तुतिकरण होता है और यह सब कुछ इतने सहज और रोचक ढंग से होता है कि पाठक उसके बहाव में बंधता चला जाता है। पत्रकारिता और साहित्य के विद्वानों ने रूपक की अलग–अगल परिभाषाएं गढ़ी हैं। एक परिभाषा के अनुसार ''रोचक विषय का मनोरम और विशद प्रस्तुतिकरण ही फीचर है। इसमें दैनिक समाचार, सामयिक विषय और बहुसंख्यक पाठकों की रूचि वाले विषय की चर्चा होती है। इसका लक्ष्य मनोरंजन करना, सूचना देना और जानकारी को जन उपयोगी ढंग से प्रस्तुत करना है।''

एक अन्य परिभाषा के मुताबिक ''फीचर समाचार मूलक यथार्थ, भावना–प्रधान और सहज कल्पना वाली रसमय एवं संतुलित गद्यात्मक एवं दृश्यात्मक, शाश्वत, निसर्ग और मार्मिक अभिव्यक्ति है।''

एक अन्य परिभाषा में तो फीचर को समाचार पत्र की आत्मा कह दिया गया हैं। '' The good newspaper is not just only paper and ink. The good newspaper lives. News is its life blood, leaders are its heart and features may be said to be its soul."

सामान्य शब्दों में कहें तो समाचार का काम तथ्य और विचार देकर खत्म हो जाता है। जबकि फीचर का काम इससे आगे का होता है। यह समाचार की पृष्ठभूमि का खुलासा करते हैं, विषय या घटना के जन्म और विकास का विवरण देते हैं। यह विषय अथवा घटना का पूरा खुलासा भी करते हैं और पाठक को कुछ सोचने के लिए भी विवश करते हैं। एक अच्छे फीचर की सार्थकता इसी बात में है कि वह अपने पाठकों के मन मस्तिष्क पर कितना प्रभाव डालती है। फीचर लेखक घटना या विषय के बारे में अपनी प्रतिक्रिया या विचार भी पाठक को बुलाता है और इस तरह पाठक की कल्पना शक्ति को और उसकी वैचारिक मन:स्थिति को भी प्रभावित करता है।

फीचर का महत्व इसी बात में है कि यह कब, क्यों, कैसे, कहां और कौन को स्पष्ट करने वाले समाचार यानी न्यूज से आगे जाकर तथ्य कल्पना और विचार की संतुलित प्रस्तुति के जरिए अपना एक विशेष प्रभाव छोड़ता है। फीचर का एक महत्व यह भी है कि यह पाठक के मन में किसी खबर को पढ़ने के बाद पैदा हुई जिज्ञासा को भी संतुष्ट करता है। आजकल समाचार पत्रों में फीचरों का उपयोग दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। यूरोप में जारी जबर्दस्त सर्दी और हिमपात पर भारतीय भाषाई अखबारों में विस्तृत समाचारों के लिए स्थानाभाव हो सकता है। लेकिन इसी विषय को महज एक छोटी सी जगह में एक सचित्र फीचर के जरिए प्रस्तुत कर अखबार अपने स्थानाभाव की समस्या भी मिल जाती है। इसी तरह किसी स्थानीय दुर्घटना के समाचार के साथ–साथ अगर उस तरह की अन्य घटनाओं का विवरण, रोकथाम के उपायों, प्रभावितों के अनुभव आदि एक सचित्र फीचर के रूप में प्रस्तुत कर दिया जाता है तो इससे पाठक को सम्पूर्ण जानकारी एक साथ मिल जाती है। फीचर के इस उपयोग ने आज फीचर के महत्व को अत्यधिक बढ़ा दिया है।

इस बढ़ते महत्व के कारण फीचर लेखन भी अब पत्रकारिता की एक महत्वपूर्ण विधा हो गई है। इसी के साथ फीचर लेखकों का महत्व भी बढ़ता जा रहा हैं। आज समाचार पत्रों में फीचर डेस्क का महत्व भी बढ़ गया है और उनकी उपयोगिता भी। समाचार पत्रों में अब फीचर के कारण बेहतर प्रस्तुतिकरण और तात्कालिता पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। कई बड़े अखबार समूहों में अब केन्द्रीयकृत फीचर लेखन व्यवस्था भी शुरू हो गई है जिसके तहत महत्वपूर्ण विषयों पर फीचर तैयार कर अखबार के सभी संस्करणों के लिए भेज दिए जाते हैं। इंटरनेट और सूचना तकनीक के चमत्कारों ने आज फीचर लेखन को आसान बना दिया हैं। लेकिन इन्हीं चमत्कारों के आज फीचर लेखन के क्षेत्र में नई चुनौतियों भी खड़ी हो गई हैं। आज फीचर लेखन को इस चीज पर सर्वाधिक ध्यान देना पड़ता है कि उसके फीचर में सारे तथ्य एकदम सही हों, ताजे हो, समीचीन हों और वे पाठक की सारी जिज्ञासाओं का समाधान भी कर सकें।

5.3.2 फीचर की विशेषताएँ

किसी अच्छे फीचर की कुछ प्रमुख विशेषताएं निम्न होती है–

1. फीचर का आरंभ रोचक होना चाहिए न कि नीरस, उबाऊ, क्लिष्ट और व्यर्थ की अलंकृत शब्दावली से भरा।
2. हृदय पक्ष से जुड़ा होने के कारण इसमें भाषागत सौंदर्य और लालित्य का विशेष स्थान है।
3. फीचर में अनावश्यक विस्तार से बचा जाना चाहिए। गागर में सागर भरना फीचर की अपनी कलात्मकता होती हैं
4. काव्य का सा आनंद देनवाले फीचर श्रेष्ठ फीचर हो सकते हैं।
5. फीचर में प्रयुक्त कल्पनाएं सटीक और सारगर्भित हो।
6. अपने विषय के सभी संबंधित पहलुओं को छूता चलता है। लेकिन विषयों का संतुलित वर्णन आवश्यक है।

5.3.3 फीचर लेखन के तत्व

फीचर और उसकी प्रमुख विशेषताओं को जानने के बाद इतना तो स्पष्ट हो जाती है कि फीचर लेखन भी पत्रकारिता क्षेत्र में अपनी तरह का एक विशिष्ट लेखन है, जिसके लिए प्रतिभा, अनुभव और परिश्रम की विशेष आवश्यकता होती है।

फीचर की विशिष्टता और उत्कृष्टता के लिए लेखक का उसकी भाषा पर पूर्ण अधिकार होना चाहिए ताकि वह छोटे वाक्यों और कम शब्दों में लालित्यपूर्ण चमत्कार और सहजता बनाए रख सकें।

फीचर लेखक के पास कवि सा भावुक हृदय, समीक्षक का सा प्रौढ़ चिंतन, इतिहासकार या इतिहास बोध, वैज्ञानिक की सी तार्तिकता, समाजशास्त्री सा समाजबोध तथा भविष्य को परखने की क्षमता होनी चाहिए। फीचर लेखक को अपने परिवेश के प्रति पर्याप्त सजग होना चाहिए और उसके पास एक ऐसी सूक्ष्म दृष्टि होनी चाहिए जो आसपास के विविध विषयों को फीचर का विषय बनाने की प्रेरणा दे सके।

5.3.4 फीचर लेखन के प्रकार

फीचर पत्रकारिता की एक बहुत ही विस्तृत विधा है। विषयों की विविधता और विस्तार को देखते हुए फीचर को निम्नलिखित प्रमुख श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता हैं।

1. **न्यूज फीचर अथवा समाचार फीचर** : ऐसे फीचर का मूलभाव समाचार होते हैं, किसी घटना पूर्ण विवेचन विश्लेषण इस के अंतर्गत किया जाता हैं। फीचर अथवा रूपक की यह सबसे प्रमुख श्रेणी है। आज अधिसंख्य फीचर समाचार आधारित ही होते हैं। दैनिक समाचार पत्रों के साथ–साथ पत्रिकाओं के लिए भी इसी तरह के फीचर आज एक अपरिहार्य जरूरत बन चुके हैं। इस तरह के फीचर समाचार को विस्तार भी देते हैं और जानकारियों को भी उपलब्ध कराते हैं। वर्तमान में इस तरह के फीचर लेखन में ग्राफिक्स, चित्र और रेखाचित्रों का खूब इस्तेमाल होने लगा है और इस वजह से फीचर का परम्परागत स्वरूप भी बदल रहा हैं।
2. **वि□ोश घटनाओं पर आधारित फीचर** : युद्ध, बाढ़, बम विस्फोट, हवाई दुर्घटना आदि पर आधारित फीचर किसी भी अखबार को विशिष्ट बना देते हैं। इस तरह के फीचर अब इलैक्ट्रानिक माध्यमों में भी खूब लोकप्रिय होने लगे हैं।
3. **व्यक्तिपरक फीचर** : व्यक्तिगत फीचर को व्यक्तिगत फीचर भी कहा जाता है। इसमें साहित्य, साहित्य, संगीत, चित्रकला, नाट्य, खेल जगत, राजनीतिक, विज्ञान, धर्म आदि क्षेत्रों में समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों–विशिष्ट व्यक्तियों पर फीचर लिखे जाते हैं अर्थात् किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्व, कृतित्व या उसकी किसी सामयिक उपलब्धि पर आधारित फीचर ही व्यक्तिपरक फीचर कहलाते हैं। उदाहरणार्थ सचिन तेंन्दुलकर द्वारा टैस्ट मैचों में 50 शतक पूरे करने पर सभी समाचार पत्रों ने तेंन्दुलकर की

उपलब्धियों पर कई तरह के फीचर प्रकाशित किए थे, 2 अक्तूबर के सुअवसर पर महात्मा गांधी पर चर प्रकाशित होते हैं।

4. **त्यौहार, पर्व संबंधी फीचर** : विभिन्न पर्वो और त्यौहारों के अवसर पर इस तरह के फीचर लिखने का प्रचलन हैं। इसमें त्यौहारों, पर्वो की मूल संवेदना उनके स्त्रोतों तथा पौराणिक संदर्भ के उल्लेख के साथ–साथ उन्हें आधुनिक संदर्भ में भी व्याख्यायित किया जाता हैं।

5. **खोजपरक अथवा छानबीन पर आधारित फीचर** : इस श्रेणी में वे फीचर शामिल हैं जिनके लेखन के लिए विशेष रूप से छानबीन की जाती हैं। तथ्यों की खोज की जाती हैं और लोगों से पूछताछ की जाती हैं। उदाहरणार्थ देश में बाघ संरक्षण की दशा–दिशा पर छानबीन कर लिखा गया कोई फीचर या उत्तराखण्ड की जलविद्युत योजनाओं के विश्लेषण पर लिखा गया कोई फीचर।

6. **मनोरंज, फिल्म या सांस्कृतिक कार्यक्रमों से सम्बन्धित फीचर** : इस तरह के फीचर भी काफी लोकप्रिया माने जाते हैं क्योंकि यह सभी विषय मनोरंजन से सीधे–साधे जुड़े हैं। फिल्म तो अपने आप में फीचर की ही एक विधा हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों और उत्सवों पर आधारित फीचर भी पाठकों और दर्शकों द्वारा पसंद किए जाते हैं।

7. **जनरूचि के विषयों पर आधारित फीचर** : इस तरह के फीचर स्थानीय पाठक अथवा दर्शकों की रूचि को देखते हुए लिखे जाते हैं। स्थानीय समस्याओं, महंगाई, सामाजिक विषयों आदि पर केन्द्रित फीचर इस श्रेणी में आते हैं।

8. **विज्ञान विचार** : नवीनतम वैज्ञानिक उपलब्धियों से पाठकों को परिचित कराने अथवा विज्ञान के ध्वंसकारी प्रभावों की जानकारी देने का यह सशक्त और महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

9. **विज्ञान व तकनीकी पर केन्द्रित फीचर** : विज्ञान की उपलब्धियों के अलावा खगोलीय घटनाओं, चिकित्सा जगत की नई खोजों, इंटरनेट व संचार क्रान्ति आदि से जुड़े विषयों आदि पर केन्द्रित फीचर इस श्रेणी में आते हैं। इस श्रेणी के फीचर लेखन के लिए एक विशेष प्रकार की विशेषज्ञता जरूरी समझी जाती हैं।

10. **फोटो फीचर** : फीचर की यह एक और लोकप्रिय श्रेणी हैं। समाचारों में चित्रों के इस्तेमाल के जरिए किसी भी विषय को बहुत कम शब्दों में कहा जा सकता है। फोटो फीचर किसी एक विषय पर केन्द्रित भी हो सकते हैं और विभिन्न विषयों के कोलाज के रूप में भी।

11. **इलैक्ट्रानिक माध्यमों के फीचर** : रेडियो और टेलीविजन समाचारों में भी अब फीचर का खूब इस्तेमाल हो रहा है। रेडियो रूपक तो पहले से ही काफी लोकप्रिय थे लेकिन अब टेलीविजन समाचार चैनल भी

फीचर का खूब इस्तेमाल करने लग गए हैं। डिस्कवरी और नेशनल जियोग्राफिक्स जैसे चैनलों के फीचर तो किसी भी दर्शक को बांध देते हैं।

12. **चित्रात्मक फीचर** : ऐसे फीचर जो केवल बोलते चित्रों के माध्यम से अपना संदेश पाठकों को दे जाते हैं। इसे फोटो फीचर कहते हैं।

13. **व्यंग्य फीचर** : सामाजिक, राजनीतिक परिदृश्य की ताजा घटनाओं पर व्यंग्य करते हुए सरस और चुटीली भाषा में हास्य को पुट देकर लिखे गए फीचर इस कोटी में आते हैं।

14. **यात्रा फीचर** : यात्राएं ज्ञानवर्धक और मनोरंजक साथ–साथ होते हैं। इन यात्राओं का प्रभावपूर्ण एवं मनोहारी संस्मरणात्मक चित्रण इन फीचरों में होता हैं।

15. **ऐतिहासिक फीचर** : अतीत की घटनाओं के प्रति मनुष्य की उत्सुकता स्वभाविक हैं। ऐतिहासिक व्यक्तियों, घटनाओं और स्मारकों और नई ऐतिहासिक खोजों पर भी भावपूर्ण ऐतिहासिक फीचर लिखे जा सकते हैं।

विषयवस्तु पर आधारित वर्गीकरण के अलावा भी फीचर की अनेक अन्य अनेक श्रेणियां हैं।र्ण नहीं होते हैं। प्रसिद्ध व्यक्तियों के जन्मदिन, जयन्ती, प्रमुख राष्ट्रीय और धार्मिक पर्व लिखे जाने वाले फीचर इसी श्रेणी में आते हैं।

5.3.5 फीचर की रचना और लेखन

फीचर पत्रकारिता में की ए वर्तमान में ग्राफिक्स आधारित फीचर भी काफी लोकप्रिय हैं। व्यंग्य और हास्य चित्रों पर आधारित रूपक भी रूपक का एक अलग स्वरूप हैं। तिथियों पर आधारित रूपक भी कम महत्वपू क ऐसी विधा हैं। जिसमें लेखन को नियमों की किसी खास सीमा में नहीं बांधा जा सकता हैं। विकसित देशों में पत्रकारिता की एक विधा के रूप में फीचर लेखन बहुत लोकप्रिय हैं। चूंकि भारत में पत्रकारिता का जन्म और विकास राजनीति के साथ हुआ हैं इसलिए यहाँ फीचर की विकास यात्रा अपेक्षाकृत देर से शुरू हुई। यहाँ प्रारम्भिक पत्रकारिता में कलम का उपयोग तलवार के रूप में किया गया। आजादी के बाद के वर्षों में और विशेष रूप से आपातकाल के बाद के वर्षों में अखबारों ने राजनीति से इतर जीवन के वृहत्तर आयामों की खोज करने और जीवन को उसकी समग्रता में देखने समझने का काम तेज कद दिया था। इसी के चलते हमारे देश में फीचर लेखन की एक विशिष्ट शैली विकसित हुई। प्रिंटिंग टैक्नोलॉजी में आए क्रांतिकारी परिवर्तनों ने फीचर लेखन की उपयोगिता, जरूरत और महत्व तीनों को द्विगुणित कर दिया हैं।

फीचर रचना का मुख्य नियम यह है कि फीचर आकर्षक, तथ्यात्मक और मनोरंजक होना चाहिए। वर्तमान में फीचर के लिए किसी खास प्रकार का ले आऊट, साज सज्जा, आकार–प्रकार या शब्द सीमा का बंधन नहीं रह गया हैं। आज कम से कम शब्दों में फीचर रचना को अधिक महत्वपूर्ण माना जाने लगा हैं। इसी तरह अब एक

विषय पर एक बड़ी रचना के बजाय एक साथ छोटी–छोटी कई सूचनाओं–सामग्रियों को प्रस्तुत करके भी फीचर जाने लगे हैं।

मौटे तौर पर फीचर लेखन के लिए 5 मुख्य बातों का ध्यान रखा जाता हैं।

1. **तथ्यों का संग्रह** : जिस विषय या घटना पर फीचर लिखा जाना हैं उससे जुड़े, तथ्यों को एकत्रित करना सबसे जरूरी काम हैं। तथ्यों और जानकारी को जुटाए बिना फीचर की रचना हो हीं नहीं सकती। जितनी अधिक जानकारी होगी, फीचर उतना ही सहयोगी और रोचन बनेगा। तथ्यों के संग्रह में इस बात का भी खास ध्यान रखा जाना चाहिए कि तथ्य मूल स्त्रोत से जुटाए जाएं और वह एकदम सही हों। गलत तथ्यों से फीचर का प्रभाव ही उल्टा हो जाता हैं।

2. **फीचर का उद्देश्य** : फीचर लेखन का दूसरा महत्वपूर्ण बिन्दु फीचर के उद्देश्य का निर्धारण हैं। किसी घटना या विषय पर लिखे जाने वाले फीचर का उद्देश्य तय किए बिना फीचर लेखन स्पष्ट नहीं हो सकता। किसी दुर्घटना से जुड़ा फीचर लिखने के लिए यह तय करना जरूरी है कि दुर्घटना के किस पहलू पर फीचर लिखा जाना हैं, दुर्घटना के इतिहास पर, दुर्घटना के प्रभावों पर, दुर्घटना की रोकथाम के तरीकों पर या दुर्घटना के यांत्रिक पक्ष पर। एक बार उद्देश्य तय हो जाए तो फीचर लेखन का चौथाई काम पूरा हो जाता हैं।

3. **प्रस्तुतिकरण** : फीचर लेखन का यह अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष हैं। फीचर लेखन में इस बात का खास ध्यान रखा जाना चाहिए कि फीचर मनोरंजक हों। उसे सरस और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया जाए। तथ्यों का प्रस्तुतिकरण सहज हो और तथ्यों की अधिकता से पठनीयता खत्म न हों।

4. **शीर्शक तथा आमुख** : किसी अच्छे समाचार की तरह ही अच्छे फीचर का शीर्षक और आमुख भी उपयुक्त ढंग से लिखा जाना चाहिए। अच्छे शीर्षक से पाठक सहज रूप से फीचर की ओर आकर्षित हो सकता है। खराब शीर्षक के कारण यह भी हो सकता है कि पाठक का ध्यान उसकी ओर जाए ही नहीं। इसी तरह अच्छा आमुख भी पाठक को बांध सकता हैं। बेतरतीब ढंग से लिखे आमुख के कारण पाठक में अरूचि पैदा हो सकती हैं। शीर्षक की विशेषता यह होनी चाहिए कि वह पाठक को आकृष्ट भी कर ले, पाठक में विषय के प्रति जिज्ञासा भी पैदा करे और सार्थक भी हो। शीर्षक में सिर्फ शब्दों की तुकबन्दी या शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रभावों की अधिकता के प्रयोग से भी बचा जाना चाहिए।

5. **साज सज्जा** : लेखन तब तक पूरा नहीं होता जब तक उसकी पर्याप्त साज सज्जा की तैयारी पूरी न हो जाए। फीचर के साथ इस्तेमाल होने वाले चित्रों, रेखाचित्रों और ग्राफिक्स का चयन भी फीचर रखना का एक जरूरी पहलू हैं। छपाई की वर्तमान तकनीक के कारण फीचर की साज सज्जा अब बेहद आसान हो गई हैं और उसमें तरह–तरह के प्रयोग करने की गुजाइंश भी बढ़ गई हैं।

फीचर लेखन एक कला भी हैं और अब जबकि फीचर का स्वरूप बदल रहा है तो फीचर लेखन की तकनीक और तरीके भी बदल रहें हैं। वर्तमान में फीचर अपनी परम्परागत शैलियों और परिभाषाओं की सीमा तोड़ कर नए–नए बदलते जा रहे हैं।

5.4 पाठ के आगे भाग

5.4.1 फीचर लेखन एवं छायांकनः

फीचर लेखन में छायांकन का अत्यधिक महत्व होता हैं। प्रारम्भिक ब्रिटिश तथा यूरोपीय समाचार पत्रों में फीचर के साथ प्रकाशित चित्रों के छायाकार के नाम का उल्लेख भी लेखक के समान ही किया जाता था।

पत्रिकाओं में भी फीचर के साथ प्रकाशित होने वाले चित्रों के लिए छायाकार विशेष प्रयत्न करके तस्वीरें खीचते थे। फोटो सम्पादक फीचर को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने के लिए बेहद मेहनत करते थे। जैसे–जैसे छपाई की तकनीक बदलती गई है वैसे–वैसे फीचर के साथ प्रयुक्त होने वाले चित्रों का महत्व और उपयोगिता भी बढ़ती गई है। आज तो पत्र पत्रिकाओं में तस्वीरों के बिना फीचर के प्रकाशन की सम्भावना खत्म हो गई है। अब तो सिर्फ या रेखाचित्रों के आधार पर ही फीचर प्रयुक्त किए जाने लगे हैं। आज सचित्र या चित्रात्मक फीचर अधिकाधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं। अब तो इस तरह के चित्रात्मक रूपक भी आम हो गए हैं जिनमें चित्रों के जरिए ही पूरी बात कह दी जाती हैं। शीर्षक या चरित्र परिचय या थोड़े से शब्दों के जरिए उस चित्र कथा को प्रस्तुत कर दिया जाता हैं। जबकि पहले सिर्फ एक–दो चित्रों की मदद से फीचर के किसी एक पक्ष को स्पष्ट किया जाता था।

आज के रूपक में कहानी शब्द नहीं बल्कि चित्र कहते हैं और शब्दों का उपयोग चित्रों के जरिए प्रस्तुत सामग्री को सिलसिलेवार ढंग से प्रस्तुत करने के लिए ही किया जाता हैं। चित्रात्मक फीचर का प्रभाव भी अधिक स्थाई होता हैं। क्योंकि चित्रों के माध्यम से कही गई बात मस्तिष्क पर अधिक गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। हिरोशिमा नागासाकी में गिरे परमाणु बम के विध्वंस के चित्र हों या भोपाल की यूनियन कार्बाइड त्रासदी के कंकाल वाले चित्र, पाठक के मन में शब्दों की तुलना में आज भी इन्हीं चित्रों के प्रभाव दर्ज हैं। किसी फीचर के साथ एक दो चित्र होने से ही उसका प्रभाव बढ़ जाता हैं और जब चित्र ही सारी कहानी बयां कर रहें हो तो उसका क्या प्रभाव होगा यह सहज की समझा जा सकता हैं। डिजिटल फोटोग्राफी के विकास ने पत्रकारिता में फोटोग्राफी और तस्वीरों के उपयोग के क्षेत्र में में क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिए हैं।

प्रिंटिग टैक्नोलॉजी में भी अभूतपूर्व बदलाव आ गए हैं। इसकी वजह से फोटोग्राफ्स का चयन, उनकी क्वालिटी और उन्हें कहीं भी भेज सकने की सीमाएं खत्म हो गई हैं। फीचर लिखने वाले के लिए तो अब उपयुक्त तस्वीरों के चयन के लिए इंटरनेट ने भी अपना खजाना खोल दिया हैं। फिर भी बड़े अखबार समूहों में या बड़ी पत्रपत्रिकाओं में अब भी विशिष्ट विषयों पर फीचर तैयार करने के लिए लेखक के साथ फोटोग्राफर को भी भेज दिया जाता हैं और ऐसे फीचर तैयार करने में फोटोग्राफर का काम लेखन से कम नहीं माना जाता। कई बार तो लेखक शब्दों के जरिए भी जिस बात को सही तरह से संप्रेषित नहीं कर पाता, उसी बात को फीचर में मौजूद एक

ही चित्र बिल्कुल साफ कर देता हैं। तस्वीरों की तरह ही रेखाचित्रों और ग्राफिक्स का इस्तेमाल भी फीचर की प्रस्तुति को चार चांद लगा देता हैं। सभी प्रमुख समाचार पत्रों में अब ग्राफिक आर्टिस्ट या ग्राफिक डिजाइनर जैसे विशेषज्ञ अनिवार्य रूप से तैनात किए जाने लगे हैं जो अखबार की नियमित साज सज्जा के साथ–साथ फीचर की प्रस्तुति को बेहतर बनाने में अपना योगदान करते हैं। कहा जा सकता हैं कि रूपक का भविष्य अब चित्रों, रेखाचित्रों और ग्राफिक्स के साथ जुड़ गया हैं और इस तकनीकी प्रगति ने फीचर के महत्व को और भी बढ़ा दिया हैं।

5.4.2 फीचर और लेख में अन्तर

पत्रकारिता में समाचारों के बाद लेख और फीचर का स्थान हैं। लेख और फीचर दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं लेकिन दोनों का प्रभाव अलग–अलग होता हैं। फीचर पाठकों की रूचि के अनुरूप, किसी घटना या विषय की तथ्यपूर्ण रोचक प्रस्तुति हैं और गहन अध्ययन पर आधारित गम्भीर प्रमाणित लेखन, लेख की श्रेणी में आता हैं। फीचर दिल को प्रभावित करता हैं जबकि लेख दिमाग को। फीचर एक प्रकार का गद्यगीत हैं जबकि लेख गम्भीर व उच्च स्तर की बहुआयामी गद्य रचनां फीचर किसी घटना या विषय के कुछ आयामों को छूता हैं तो लेख उस घटना के हर एक पहलू को स्पर्श करता हैं, प्रस्तुत करता हैं। एक परिभाषा के मुताबिक फीचर एक कक्ष वाला साफ–सुथरा सुन्दर घर हैं तो लेख अनेक कमरों वाला सुरुचिपूर्ण विशाल भवन। डी एस मेहता ने अपनी पुस्तक 'मॉस कम्युनिकेशन एण्ड जर्नलिज्म इन इण्डिया' में फीचर और लेख के अन्तर को इस प्रकार परिभाषित किया हैं–"The feature is a sort of lyric in prose, a momentary mood garnered in words. An article on the other hand deals with several moods."

पत्रकार पी डी टण्डन के अनुसार " किताब पढ़कर, आंकड़े जमा कर के लेख किया जा सकता हैं, लेकिन फीचर लिखने के लिए लेखक को अपनी आँख, कान, भावों अनुभूतियों, मनोवेगों और अन्वेषण का सहारा भी लेना पड़ता हैं। लेख लम्बा, गम्भीर, हर व्यक्ति की रूचि के अनुकूल न होते हुए भी प्रशंसनीय हो सकता हैं, लेकिन ये बातें फीचर के लिए जानलेवा हैं। फीचर को रोचक, दिलचस्प और सबकी रूचि के अनुकूल होना ही होता है।"

फीचर और लेख के अन्तर को इस तरह भी समझा जा सकता हैं। 'देश में महंगाई' विषय पर लेख लिखते समय लेखक को महंगाई का अर्थ, पिछली सरकारों के कार्यकाल में महंगाई का स्तर, महंगाई बढ़ने के कारण और इसके निवारण में सरकार की सफलता–विफलता का समग्र विवेचन करना पड़ेगा जबकि इसी विषय में फीचर लिखते समय लेखक सिर्फ महंगाई के प्रभाव से आम आदमी की दिक्कतों, या क्षेत्र विशेष में आम जरूरतों की चीजों की महंगाई या फिर महंगाई बढ़ाने वाली वजहों आदि पर केन्द्रित रोचक सामग्री का प्रस्तुतिकरण करके एक अच्छा फीचर तैयार कर सकता हैं। इसी तरह टू जी स्पैक्ट्रम घोटाले पर लेख लिखते समय लेखक को इसके कारण, इसके दुष्प्रभाव, इससे जुड़े लोगों के हित–अहित आदि सभी विषयों पर गम्भीर सामग्री एकत्र कर उसका सिलसिलेवार प्रस्तुतिकरण करना होगा जबकि फीचर लेखक इस घोटाले से भारतीय राजनीति में आए भूचाल, देश

के नीति निर्धारण मामलों में हो रही रिश्वतखोरी, राडिया की भूमिका या टू जी आवंटन की प्रक्रिया जैसे किसी एक विषय पर ही उपयोगी मनोरंजक और ज्ञानप्रद सामग्री पेश कर अपना काम पूरा कर सकता हैं। कहने का आशय यह हैं कि फीचर और लेख दोनों की विषयवस्तु एक ही हो सकती हैं किन्तु उसका प्रतिपादन दोनों में अलग–अलग तरह से होता हैं।

" The feature is a sort of lyric in prose, a momentary mood garnered in words. An article on the other hand deals with several moods." (D.S. Mehta : Mass Communication and Journalism in India)

लेख सामान्यतः किसी विशेष समस्या पर उसके किसी विशेष पहलू का सूक्ष्म और गहन अध्ययन होता हैं। फीचर में इतनी गहराई नहीं होती बल्कि उसमें विषय के किसी एक पक्ष पर कम शब्दों से ही अपेक्षित प्रभाव पैदा किया जाता हैं।

विषय की पृष्ठभूमि के अध्ययन से लेख तो तैयार किया जा सकता हैं लेकिन फीचर नहीं। फीचर लेखन के लिए अनुभूतियों, भावनाओं, अवलोकन तथा कल्पना की आवश्यकता होती हैं। तथ्यों और आंकड़ों को लेकर लेख लिखना आसान हैं किन्तु रूपक लेखन का कार्य कहीं अधिक कलात्मक हैं। लेख और फीचर दोनों की ही शैली भी भिन्न–भिन्न होती हैं। लेख के मामले में इससे काम नहीं चल सकता। फीचर लेखन की शैली तो छोटी नदी के प्रवाह जैसी सरल और गतिमान होनी चाहिए। लेख में लेखक की सीमाएं होती हैं। विषय के पक्ष या विपक्ष में विचार रखने के लिए उसको तर्कों का सहारा लेना पड़ता हैं। जबकि फीचर का लेखक उन्मुक्त पक्षी जैसा होता है, उसे कल्पना का प्रयोग करने की स्वच्छन्दता अधिक प्राप्त होती हैं। लेख में लेखक उपलब्ध आधारसामग्री के अनुसार गम्भीरता पूर्वक चीजें प्रस्तुत करनी होती हैं मगर फीचर लेखक को जीवन और जीवन की समस्याओं पर अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने की भी छूट होती हैं। लेकिन इन दोनों विधाओं के बीच इतनी भिन्नताएं होते हुए भी दोनों का ही उद्‌देश्य एक हैं और वह हैं अपने पाठक को शिक्षित करना, उसे जागरूक बनाना और उसका मनोरंजन करना।

5.4.3 रेडियो और टीवी के लिए फीचर लेखन

पत्र पत्रिकाओं की तुलना में इलैक्ट्रानिक संचार माध्यमों में फीचर लेखन का क्षेत्र अधिक विशद हैं और उनमें फीचर के जरिए कुछ कह पाने की सम्भावनाएं भी बहुत अधिक हैं रेडियो फीचर और टेलीविजन फीचर, वैसे तो मुद्रित माध्यमों के फीचर की तरह ही होते हैं लेकिन रेडियो और टीवी के फीचर दोनों के लिखने के तरीके में काफी भिन्नता हैं।

(i) रेडियो फीचर

रेडियों फीचर को रेडियो रूपक भी कहा जाता है। यह एक आधुनिक रेडियो विधा है। रेडियो फीचर समाचार पत्रों, एवं पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले फीचर से सर्वथा भिन्न विधा है। रेडियो फीचर वह फीचर हैं जो रेडियों के श्रोताओं को खबरों से आगे की जानकारी प्रदान करने के लिए प्रस्तुत किया जाता हैं। इस फीचर को श्रोता न तो देख सकते और न ही पढ़ सकते हैं। लेकिन रेडियों फीचर की सबसे बड़ी खूबी यह हैं कि शब्दों को न पढ़ सकने वाला तबका भी इसका आनन्द ले सकता हैं। पत्र पत्रिकाओं के फीचर की भांति रेडियो रूपक में कल्पनाशीलता, तथ्य, घटना अथवा विषय का विवरण, विवेचन, लोगों के विचार, प्रतिक्रियाएं और रोचकता तो होती हैं, इसमें संगीत और ध्वनियों का अतिरिक्त प्रभाव भी होता हैं। रेडियों फीचर को ''रेडियों की टैक्नोलॉजी के साथ तथ्यों और विश्लेषण की ध्वन्यांकित सर्जनात्मक प्रस्तुति'' भी कहा जाता हैं। इसको प्रभावशाली बनाने में संगीत के प्रभावों और प्रस्तोता की असरदार आवाज का भी योगदान होता हैं। रेडियो फीचर तैयार करते समय कई चीजों को ध्यान में रखा जाता हैं।

1. रेडियो फीचर का विषय श्रोताओं की रूचि के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए।
2. रेडियो फीचर तैयार करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उसकी शुरूआत भी प्रभावशाली हो।
3. रोचकता और सरलता रेडियो फीचर का मूल तत्व हैं। उसमें नाटकीयता भी होनी चाहिए।
4. रेडियो फीचर में सरल, स्पष्ट व आसानी से समझ में आने वाले शब्दों और भाषा का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।
5. रेडियो फीचर में संगीत के जरिए उपयुक्त प्रभाव पैदा किए जाने चाहिए।
6. रेडियो फीचर की प्रस्तुति में निरन्तर प्रवाह और मनोरंजन का सामंजस्य होना चाहिए।

भारत में निजी एफ एम चैनलों के बढ़ते प्रभाव और बीबीसी जैसे रेडियो चैनलों की स्तरीय प्रस्तुतियों के बावजूद रेडियो प्रसारण के क्षेत्र में अभी भी आकाशवाणी का ही प्रभुत्व हैं। आकाशवाणी ने रेडियो रूपक लेखन के लिए एक आचार संहिता भी बनाई गई हैं। जिसके प्रमुख नियम इस प्रकार हैं–

- रेडियो फीचर में भारतीय संविधान की मर्यादा का सम्मान होना चाहिए।
- फीचर में धर्म या संप्रदाय पर टिप्पणी नहीं होनी चाहिए।,
- रेडियो फीचर का लेखन किसी व्यावसायिक समूह के नाम का प्रयोग, विज्ञापन फीचर में किसी भी मित्र देश की आलोचना नहीं की जानी चाहिए।
- रेडियो फीचर किसी भी व्यक्ति या संस्था को अनावश्यक लाभ पहुंचाने वाला न हो, इसका ध्यान रखा जाना भी बेहद जरूरी हैं।
- फीचर में राज्यों के खिलाफ आक्रामक आलोचना भी नहीं की जानी चाहिए।

- फीचर में अश्लीलता नहीं होनी चाहिए तथा न ही किसी की मानहानि होनी चाहिए।
- रेडियो फीचर में भारत के राष्ट्रपति, केन्द्र सरकार तथा न्यायालयों की मर्यादा के विरूद्ध कुछ भी नहीं लिखा जाना चाहिए।
- किसी भी रेडियो फीचर से न्यायालय की अवमानना भी नहीं होनी चाहिए।
- किसी भी 'अपील' को आधार मानकर रेडियो फीचर का निर्माण करना सख्त मना है। लेकिन राष्ट्रीय संकट के समय देशहित में फीचर के माध्यम से अपील का प्रसारण उचित हैं।
- फीचर में हिंसा को प्रोत्साहन नहीं दिया जाना चाहिए और न ही कानून और व्यवस्था के विरूद्ध कुछ लिखना चाहिए।
- रेडियो फीचर में किसी भी राजनीतिक दल का नाम लेकर आलोचनात्मक वाक्य नहीं लिखे जाने चाहिए।

रेडियो फीचर आज भी रेडियो की एक लोकप्रिय विधा हैं। यह लोगों का जागरूक करने का भी एक तरीका हैं और उन्हें शिक्षित करने का भी। आज निजी रेडियो चैनल भी रेडियो रूपकों का खूब इस्तेमाल करने लगे हैं और इसमें नए–नए प्रयोग भी होने लगे हैं।

(ii) टेलीविजन फीचर

टेलीविजन फीचर, फीचर की सबसे नई और आधुनिक विधा हैं। टेलीविजन फीचर की सबसे बड़ी खूबी यह हैं कि इसमें शब्द भी होते हैं और चित्र भी। संगीत भी होता हैं और ध्वनियां भी। इसकी सजीवता, गति और दृश्यात्मकता इसे फीचर की हर विधा से अलग और विशिष्ट बनाती हैं। टेलीविजन फीचर दर्शक को इस लिए भी बांध कर रखता हैं कि दर्शक देख कर, सुन कर और महसूस कर के इसका आनन्द ले सकता हैं। रेडियो फीचर की तरह ही टेलीविजन फीचर के लिए भी कुछ चीजों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

1. टेलीविजन दृश्य माध्यम हैं। इसलिए फीचर की रचना के लिए विषय या घटना से जुड़े दृश्य पर्याप्त मात्रा में एकत्र किये जाने चाहिए।
2. फीचर की स्क्रिप्ट दृश्यों के आधार पर तैयार की जानी चाहिए। यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि शब्दों और दृश्यों में दोहराव न हो। शब्द दृश्यों के पूरक की तरह ही इस्तेमाल किए जाने चाहिए।
3. फीचर के दृश्यों, चित्रों और शब्दों में सरल प्रवाह होना चाहिए। कन्टिन्युटी का भी विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।
4. फीचर में इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कम से कम शब्दों में ही बात कह दी जाए। अनावश्यक शाब्दिक विस्तार से बचा जाना चाहिए।
5. भाषा का प्रयोग विषय के अनुरूप किया जाना चाहिए। गम्भीर विषयों में चलताऊ भाषा का इस्तेमाल नहीं होना चाहिए।

6. दृश्यों के साथ–साथ विषय से जुड़े लोगों के साक्षात्कार और चित्र तथा ग्राफिक्स का प्रयोग अवश्य किया जाना चाहिए।
7. साक्षात्कार छोटे–छोटे होने चाहिए। 'बाइट' संक्षिप्त होनी चाहिए और इनके जरिए फीचर का विस्तार होना चाहिए, विषय का दोहराव नहीं।
8. फीचर की एडिटिंग और 'वॉयस' ओवर' स्तरीय होने चाहिए।

टेलीजिवन फीचर मुद्रित या श्रव्य माध्यमों के फीचर से कहीं अधिक प्रभावशाली होते हैं क्योंकि इनके जरिए हमें घटना या विषय की दृश्यात्मक जानकारी हासिल होती हैं जो हमें अधिक समय तक याद भी रहती हैं और हमें घटना या विषय से सीधे–सीधे जोड़ भी देती हैं। टेलीविजन फीचर के जरिए दर्शक घर बैठे–बैठे देश विदेश तक की यात्रा कर सकता हैं। इसलिए टेलीविजन फीचर के जरिए जानकारियों के विस्तार का फलक भी बहुत विस्तृत होता हैं। डिस्कवरी और नेशनल जियोग्राफिक्स जैसे चैनलों में प्रस्तुत फीचर टेलीविजन फीचर के उल्लेखनीय उदाहरण हैं और भारतीय टेलीविजन जगत को अभी इस ऊँचाई को छूना बाकी हैं।

5.5 अपनी प्रगति जांचिए

(क) (i) फीचर किसे कहते हैं ?

(ii) फीचर का प्रमुख लक्ष्य क्या हैं ?

(iii) फीचर किसके लिए लिखे जाते हैं ?

(iv) फीचर के कोई दो प्रमुख गुण बताइए ?

(v) यात्रा के फीचर कौन–से होते हैं ?

(ख) (i) समाचार अगर पत्रकारिता की रीढ़ हैं तो फीचर क्या हैं?

(ii) फीचर में लेखक की विचारधारा का क्या महत्व हैं?

(iii) चित्रात्मक फीचर किसे कहते हैं?

(iv) रेडियो फीचर को दूसरे किस नाम से जाना जाता हैं?

(v) 'वॉयस ओवर' क्या हैं?

5.6 सारांश

- पत्रकारिता में फीचर अथवा रूपक का आशय ऐसे लेखों से हैं जो जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण जगाते हैं। घटनाओं और विषयों की जानकारी देते हैं, मनोरंजन करते हैं' और ज्ञान भी बढ़ाते हैं।

- फीचर समाचारों को नया आयाम देते हैं। उन्हें नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करता हैं। फीचर किसी न किसी सामाजिक विषय अथवा मानवीय भावना आदि के इर्द गिर्द घूमता रहता हैं और समाचार से अलग पाठक, श्रोता या दर्शक को किसी मानवीय संवेदना से जोड़ता हैं। इसलिए फीचर की संरचना में तीन उद्देश्यों को ध्यान रखा जाना चाहिए कि फीचर मार्गदर्शक हो, ज्ञानवर्धक और मनोरंजक हो।
- फीचर का शीर्षक आकर्षक और नाटकीय होना चाहिए। इसी तरह फीचर की संरचना में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि आमुख अथवा प्रस्तावना कलात्मक और और उत्सुकता पैदा करने वाली हो। अगर आमुख अच्छा होगा तो फीचर पर पाठक, श्रोता या दर्शक का ध्यान केन्द्रित होगा। आमुख की ही भांति फीचर का का मुख्य भाग या विवरण भी जानकारियों से परिपूर्ण, मनोरंजक और विश्लेषणयुक्त होना चाहिए।
- फीचर का अंतिम भाग उपसंहार फीचर का एक महत्वपूर्ण अंश होता हैं। फीचर का सही उपसंहार पाठक, श्रोता या दर्शक को कुछ सोचने पर मजबूर कर देता हैं। फीचर का निष्कर्ष इसी भाग में निकलता हैं।
- अच्छे फीचर की सबसे बड़ी विशेषता इस बात में हैं कि उसके जरिए किस तरह की नई जानकारी दी जा रही हैं। पाठक या दर्शक फीचर के जरिए नई–नई जानकारी हासिल करना चाहते हैं। अच्छे फीचर की खासियत इस बात में भी है कि वह जानकारी को कितने सरल ढंग से प्रस्तुत कर रहा है।
- जानकारी हासिल करने के लिए फीचर लेखक के पास कई तरह के स्त्रोत होते हैं। इसमें पहला स्त्रोत आँखों देखा हाल है। घटना मूलक या समाचार मूलक फीचर लेखन के लिए आँखों देखी जानकारी बहुत महत्वपूर्ण होती हैं। इसी तरह बातचीत, पत्र–व्यवहार, पुस्तक व संदर्भ ग्रंथों तथा इंटरनेट आदि द्वारा जुटाई गई जानकारी भी फीचर लेखन में बहुत सहायक होती हैं।
- कुल मिलाकर कह सकते हैं कि फीचर पत्रकारिता का एक कलात्मक पहलू है और अच्छा फीचर जहां किसी संचार माध्यम को नई पहचान देता है वहीं वह पाठक, श्रोता या दर्शक को भी जानकारियों और मनोरंजन से सरोबार कर देता है।

5.7 भाब्दावली

फीचर : पत्रकारिता के सन्दर्भ में फीचर का अर्थ ऐसे विशेष लेखों से है जो रोचक, मनोरंजक, भाव प्रधान, मानवीय रूचि से जुड़े, मन की संवेदनाओं और अनुभूतियों को जगाने वाले और सामयिक जानकारी तथा ज्ञान बढ़ाने वाले होते हैं।

खोजपरक फीचर : इस तरह के फीचर वे होते हैं जिनके लेखन के लिए विशेष रूप से खोजबीन की जाती हैं। तथ्यों की छानबीन की जाती है और तथ्यों की गहराई तक जाकर जानकारियां जुटाई जाती है।

टेलीविजन फीचर : टेलीविजन फीचर, फीचर का एक ऐसा रूप हैं जो टेलीविजन के दर्शकों के लिए तैयार किया जाता हैं। इसमें शब्दों और ध्वनियों के साथ–साथ दृश्यों का प्रयोग होने से इसका प्रभाव और प्रवाह दोनों बढ़ जाते हैं।

वॉयस ओवर : वॉयस ओवर टेलीविजन में किसी समाचार या फीचर की रचना के दौरान की एक प्रक्रिया है जिसके तहत संवाददाता या प्रस्तोता तैयार क्लिपिंग को अपनी आवाज देता हैं। सरल शब्दों में यह दृश्यों और कहानी में चित्रों के सिलसिले को बनाए रखने वाली आवाज हैं जो दर्शक तक पूरी बात संप्रेषित कर देती हैं।

5.8 स्व–मूल्यांकन परीक्षा

प्रश्न 1 फीचर और समाचार में क्या अन्तर हैं?

प्रश्न 2 फीचर की प्रमुख परिभाषाएं क्या हैं?

प्रश्न 3 फीचर और लेख में अन्तर स्पष्ट कीजिए?

प्रश्न 4 रेडियो फीचर लिखने के लिए आकाशवाणी की आचार संहिता के प्रमुख नियम क्या हैं?

प्रश्न 5 टेलीविजन फीचर तैयार करने में किन–किन बातों का ध्यान रखा जाता हैं?

5.9 प्रगति समीक्षा हेतु प्रश्नोत्तर देखे ?

(क) (i) विशेष आलेख को (ii) ज्ञानवर्धक और मनोंरजन करना

(iii) जनसामान्य के लिए (iv) संवेदनशीलता एवं विश्सनीयता

(v) जो यात्राएं ज्ञानवर्धक और मनोरंजनक हों।

(ख) (i) सौन्दर्य बढ़ाने वाली शक्ति

(ii) फीचर की प्रभावशीलता लेखक पर निर्भर करती हैं

(iii) जो बोलते चित्रों के माध्यम से अपना संदेश देते हैं

(iv) रूपक के नाम से

(v) किसी समाचार व फीचर की रचना के दौरान की क्रिया हैं।

5.10 संदर्भ ग्रंथ

मनीषा द्विवेदी : पत्रकारिता एवं प्रेस कानून

अर्जुन तिवारी : सम्पूर्ण पत्रकारिता

मीनाक्षी वशिष्ठ : पत्रकारिता का बदलता स्वरूप

पी.के. आर्य : फीचर लेखन प्रतिभा प्रतिष्ठान

संतोष कुमार श्रीवास्तव	:	एक परिचय
असगर वजाहत	:	टेलीविजन लेखन
डॉ. संजीव भानावत	:	समाचार लेखन के सिद्धान्त एवं तकनीकी

इकाई 6 भारत में प्रिंट मीडिया

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 सीखने के परिणाम

6.2 जन संचार – परिभाषा

6.3 मास मीडिया और समाज

6.4 व्यापक मीडिया नीति ढांचा

6.4.1 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

6.4.2 राष्ट्र निर्माण और विकास

6.4.3 व्यापार और मनोरंजन

6.5 प्रेस

6.5.1 स्वतंत्रता पूर्व प्रेस

6.5.2 स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रेस

6.5.3 स्वतंत्र भारत में प्रेस

6.5.4 मिशन से प्रोफेशन

6.5.5 आपातकाल का दौर : एक अंधेरा अध्याय

6.5.6 वर्तमान युग

6.5.7 समकालीन चुनौतियां

6.5.8 प्रेस और किताबों का विस्तार

6.6 सारांश

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.8 बोध प्रश्नों के संभावित उत्तर

6.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने जन संचार के इतिहास के बारे में जाना। इस इकाई में आप भारत में प्रिंट मीडिया के विकास के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। जैसा कि आप जानते हैं कि मीडिया एक समाज की राजनीति और अर्थशास्त्र दोनों को प्रभावित करता है। इस प्रकार, मीडिया परिदृश्य का ज्ञान आपको समकालीन भारत की बेहतर समझ रखने में मदद करेगा।

समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, किताबें, कॉमिक्स आदि मुख्य प्रिंट मीडिया हैं, जिनसे आप सभी अच्छी तरह से परिचित हैं। यह सभी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह समाज की प्राथमिकताओं और उनके मुद्दों को निरंतर प्रदर्शित व परिष्कृत करने का कार्य करते हैं। इस इकाई में, हम प्रिंट मीडिया का संक्षिप्त इतिहास, विकास और समकालीन भारतीय समाज में इसके संचालन को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में समझेंगे।

6.1 सीखने के परिणाम

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप सक्षम होंगे :

- जन संचार की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे;
- मास मीडिया का विकास समाज मास मीडिया की भूमिका की व्याख्या कर पाएंगे;
- प्रिंट मीडिया के व्यापक नीतिगत ढांचे की व्याख्या कर पाएंगे; और
- प्रिंट मीडिया के इतिहास और विकास का वर्णन करने में सक्षम होंगे और समकालीन प्रिंट मीडिया द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों की व्याख्या कर सकेंगे।

6.2 जन संचार- परिभाषा

हम जन संचार को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिससे बड़े पैमाने पर उत्पादित संदेश को अलग-अलग स्थानों पर स्थित, विषम व्यक्तियों के बीच व्यापक रूप से प्रेषित किया जा सकता है। विषम से हमारा मतलब उन लोगों से है जो उम्र, लिंग, शिक्षा, आय, पेशे, निवास, स्थान, क्षेत्र, भाषा, धर्म में एक दूसरे से अलग हैं। मीडिया शब्दावली में इन्हें हेटेरोजेनियस ऑडियंस कहा जाता है। व्यापक संदेश प्राप्त करने वाले यह विभिन्न व्यक्ति आम तौर पर एक दूसरे व उन संदेशों के स्रोतों के लिए भी अजनबी होते हैं। जन संचार को अधिक प्रभावी बनाने व उसे लक्षित वर्ग के लिए अधिक केंद्रित बनाने हेतु बड़े पैमाने पर दर्शकों का विभाजन किया जाता है। इस प्रक्रिया को मीडिया विभाजन यानी मीडिया सेगमेंटेशन कहते हैं।

6.3 मास मीडिया और समाज

मास मीडिया हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। क्रिकेट स्कोर जानने के लिए आप टेलीविजन देखते हैं, रेडियो सुनते हैं और मोबाइल पर अपडेट देखते हैं। देश और दुनिया के प्रमुख मुद्दों को जानने-समझने के लिए समाचार-पत्र पढ़ते हैं या समाचार वेबसाइटों पर जाते हैं। मनोरंजन के लिए फिल्में देखते हैं, मोबाइल या कंप्यूटर पर गेम खेलते हैं, उपन्यास, किताबें और पत्रिकाएं पढ़ते हैं या टेलीविजन देखते हैं। समाचार-पत्र, पत्रिका, किताबें, रेडियो, टेलीविजन और फिल्म मास मीडिया हैं। हम सभी इन मास मीडिया से परिचित हैं और दैनिक जीवन में निरंतर मीडिया के संपर्क में हैं।

यहां यह जानना जरूरी है कि मास मीडिया समाज में क्या करता है? यह हमारे पसंदीदा खेलो की लगातार कमेंट्री करता है और स्कोर बताता है, हमारे आस-पास के वातावरण, राजनीतिक मुद्दों, विभिन्न आयोजनों, दुर्घटनाओं व संघर्ष क्षेत्र से लगातार समाचार व नवीनतम जानकारियां संप्रेषित करता है। मास मीडिया के माध्यम से हमें जम्मू और कश्मीर में बाढ़, ओडिशा में चक्रवात, भारत-अमेरिका परमाणु समझौते के बारे में पता चलता है। मुद्रास्फीति और आर्थिक विकास जैसे विविध विषयों पर जानकारियां मिलती हैं। मीडिया यह सारी जानकारी व घटनाएं हमें विस्तृत एवं सरल रूप से प्रस्तुत करता है। जैसे ही कि कोई खबर घटित होती है 24x7 वाले समाचार चैनल ब्रेकिंग न्यूज़ के रूप में सारी जानकारियां हमारे सामने लेकर आते हैं। साथ ही यह विज्ञापन के जरिए वस्तुएं व सेवाएं भी बेचते हैं।

मास मीडिया ने काम और अवकाश के समय की गतिविधियों के लिए भी एजेंडा निर्धारित किया है। मास मीडिया में दिखाई गई सामग्री पर घरों, कॉफी की दुकानों और कार्यस्थलों पर चर्चा की जाती है। इस प्रक्रिया में मीडिया हमें उस वातावरण से भी परिचित कराता है, जिसमें हम रहते हैं। हमारा परिवेश जो विभिन्न मुद्दों और व्यक्तित्वों के बारे में हमारी धारणाओं को प्रभावित करता है, जनमत को आकार देता है और हमारे समाज के लोकतांत्रिक कामकाज में मदद करता है। मास मीडिया हमें हंसाता है, रुलाता है, जीवन में संगीत और मनोरंजन लाता है। संक्षेप में, मास मीडिया के माध्यम से हम जनता के साथ संवाद करते हैं और जन समाज को बनाए रखते हैं।

वर्तमान युग में अखबार, मोबाइल फोन या टीवी के बिना सामान्य सामाजिक जीवन की कल्पना करना मुश्किल है। हमारे दिन-प्रतिदिन के अस्तित्व में, मीडिया और समाज घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं और आधुनिक जीवन की परस्पर निर्भरता वास्तविकता हैं। इस प्रकार, समकालीन भारत को समझने के लिए, हमें भारत में समकालीन मीडिया परिदृश्य को समझने की बेहद आवश्यकता है ।

6.4 व्यापक मीडिया नीति ढांचा

प्रिंट मीडिया के महत्व को स्वतंत्रता संग्राम के दौरान ही महसूस कर लिया गया था। इस प्रकार, स्वतंत्रता के बाद व्यापक नीतिगत ढांचे ने प्रिंट मीडिया के विकास, कार्यान्वयन और उपयोग का मार्गदर्शन किया। इनमें शामिल हैं :

6.4.1 अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता

भारत ने सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के आधार पर संसदीय लोकतंत्र का विकल्प चुना था, ऐसे में प्रेस की स्वतंत्रता को देश में लोकतंत्र का एक अनिवार्य तत्व माना जाता है। यद्यपि, भारतीय संविधान में ऐसा कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है, जो विशेष रूप से प्रेस की स्वतंत्रता के लिए हो, तथापि, संविधान के अनुच्छेद 19 (1) (ए) के तहत प्रदान किए गए **"भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार"** हमारे मौलिक अधिकार के रूप में, किसी भी सरकारी हस्तक्षेप के बिना समाचार-पत्र प्रकाशित करने की स्वतंत्रता के संबंध में देखा जाता है। अभिव्यक्ति की आजादी के साथ ही हमें अनुच्छेद 19(2) में वर्णित नीतिगत प्रतिबंधों का सदैव ध्यान रखना होगा जो भारत की संप्रभुता और अखंडता के हित में हैं। बाद में 1990 के दशक में इलेक्ट्रॉनिक मीडिया को शामिल करने के लिए हवा की तरंगों को भी प्रेस की आजादी की व्याख्या के संदर्भ में बताया गया। हमेशा से ही विचारों का मुक्त आदान-प्रदान और स्वतंत्र बहस सरकार के लोकतांत्रिक कामकाज का आवश्यक हिस्सा मानी जाती है। *(आप एक अन्य इकाई में प्रेस कानूनों के तहत 'प्रेस की स्वतंत्रता' के बारे में विस्तार से सीखेंगे।)*

6.4.2 राष्ट्र निर्माण और विकास

स्वतंत्र भारत में मास मीडिया "अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता" प्रदान करने के साथ-साथ सार्वजनिक शिक्षा के अन्य सभी साधनों और राज्य की एकता और अखंडता को बढ़ावा देने के लिए काम करता रहा है। लोगों को विभिन्न विषयों पर सूचित, शिक्षित करने के अलावा, देश के राजनीतिक और सामाजिक विकास में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए भी प्रयासरत

रहा है। राष्ट्रीय विकास के लिए अपनाई गई मिश्रित अर्थव्यवस्था की तरह, सूचना और प्रसारण क्षेत्रों में भी एक मिश्रित व्यवस्था अपनाई गई थी। भारत में प्रेस शीर्षकों के पंजीकरण की आवश्यकता को छोड़कर काफी हद तक निजी हाथों में रहा है। प्रसारण और दूरसंचार पर केंद्र सरकार के एकाधिकार को बनाए रखा गया था। फिल्म निर्माण निजी हाथों में था, लेकिन फिल्मों की सार्वजनिक प्रदर्शनी केंद्र सरकार के प्रतिनिधि द्वारा प्रमाणन / मंजूरी के अधीन थी।

भारत में लोगों तक पहुंचने, उनके साथ संवाद करने और उन्हें नए कौशल से लैस करने के बारे में पहली पंचवर्षीय योजना में ही जोर दिया गया था। इस योजना में देश के योजनाबद्ध विकास की रूपरेखा तैयार की थी। इसमें कहा गया है, "योजना को नियंत्रित करने वाली प्राथमिकताओं की व्यापक समझ ही प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमिका को समूचे राष्ट्र के मुख्य उद्देश्य से जोड़ने में सक्षम बनाएगी। संचार के सभी उपलब्ध तरीकों को विकसित किया जाना चाहिए और लोगों को समाचार-पत्र, पत्रिका और साहित्य व अन्य सभी माध्यमों जैसे रेडियो, फिल्म, गीत और नाटक आदि माध्यमों से संपर्क किया जाना चाहिए और सरल भाषा में देश की आवश्यकता के अनुसार जानकारी प्रदान करने के लिए आवश्यक कदम उठाए जाने चाहिए।"

इस तरह के एक व्यापक नीतिगत ढांचे ने 1991 तक भारत में मीडिया के विकास का मार्गदर्शन किया। फिर देश में एक प्रमुख नीतिगत बदलाव हुआ जिससे उदारीकरण और वैश्वीकरण हुआ और सूचना प्रौद्योगिकी क्रांति की शुरुआत हुई। नतीजतन, मास मीडिया परिदृश्य बड़े पैमाने पर विकास और विविधता के साथ बदल गया।

आज, भारत में मास मीडिया स्वतंत्र है और काफी हद तक निजी हाथों में है। कोई भी नागरिक एक समाचार-पत्र या पत्रिका प्रकाशित कर सकता है। देश के कानून के प्रति नागरिक जिम्मेदारी के अलावा चयनित सामग्री को प्रकाशित करने के लिए उसे किसी अन्य प्राधिकरण से किसी पूर्व अनुमति की आवश्यकता नहीं है। एक समाचार-पत्र या एक पत्रिका को प्रकाशित करने के लिए 1867 के प्रेस और पुस्तक पंजीकरण अधिनियम के तहत एकमात्र आवश्यकता पंजीकरण प्रमाण-पत्र और प्रकाशन पर प्रकाशक और प्रिंटर का नाम और स्थान का विवरण देना है।

लेकिन रेडियो, टेलीविजन और दूरसंचार के मामले में केंद्र सरकार के पास यह एकाधिकार 1991 में तभी तक था जब तक सुप्रीम कोर्ट द्वारा एयरवेज को भी इसमें जोड़ने के लिए संविधान में दिए गए मौलिक अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की व्याख्या की गई। 1990 के दशक में उदारीकरण और वैश्वीकरण के साथ इलेक्ट्रॉनिक मीडिया और दूरसंचार को भी निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया गया। नतीजतन, आज हर व्यक्ति के पास मोबाइल फोन है और हमारे पास कई निजी टीवी चैनल और एफएम रेडियो स्टेशन हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि कई समाचार टीवी चैनल होने के बावजूद भी रेडियो समाचारों के प्रसारण पर अब भी केंद्र सरकार का एकाधिकार बना हुआ है।

6.4.3 व्यापार और मनोरंजन

व्यापार और मनोरंजन मास मीडिया की अन्य दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। सूचना और शिक्षा प्रदान करने के अलावा, मास मीडिया मनोरंजन का प्रमुख स्रोत हैं। अपने दर्शकों को आकर्षित करने और बनाए रखने के लिए, मास मीडिया को रोचक और मनोरंजक तरीके से सूचना और ज्ञान प्रदान करना होता है। इसके अलावा, उत्पादन और वितरण की लागत को पुनर्प्राप्त करने

और कुछ लाभ कमाने के लिए, मास मीडिया को विज्ञापन के माध्यम से आने वाली आय पर निर्भर रहना पड़ता है। यह आय समाचार-पत्र पत्रिका के पाठकों, रेडियो के श्रोताओं और टीवी के दर्शकों की संख्या पर निर्भर करती है। हालांकि मीडिया का प्राथमिक कार्य सूचना, शिक्षा और मनोरंजन प्रदान करना हैं, लेकिन विज्ञापन और विपणन के माध्यम से व्यापारिक हितों को बढ़ावा देना भी मीडिया संचालन में एक प्रमुख प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करता है। कभी-कभी विज्ञापन के चलते 'गुणवत्ता' और 'सामग्री' से भी समझौता कर दिया जाता है। अक्सर प्रचार संख्या और टीआरपी के नाम पर वाणिज्यिक हितों को बढ़ावा देने के लिए समाचार और घटनाओं को सनसनीखेज तरीके से परोसा जाता है। नतीजतन, मास मीडिया आज तेजी से एक प्रमुख इन्फोटेनमेंट बिजनेस इंडस्ट्रीज बन गया है।

यह जानते हुए की मास मीडिया हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है और भारत के संविधान में नागरिकों को दिया गया मूल मूल्य 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' मीडिया संचालन को प्रेरणा व मार्गदर्शन देने का कार्य करता है, अब हम विभिन्न मास मीडिया के विकास पर विस्तार से चर्चा करेंगे ताकि समकालीन भारत की बेहतर समझ हो सके।

बोध प्रश्न 1

नोट: 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।

2) यूनिट के अंत में दिए गए उत्तरों के साथ अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1. प्रेस की स्वतंत्रता के संबंध में भारतीय संविधान में क्या प्रावधान हैं?

....

....

....

....

....

इंटरनेट

वेबसाइट का नाम	देखने में व्यतीत समय (मिनटों में)
i)	i) ....
ii)	ii) ....
iii)	iii) ....

दूरदर्शन

चैनलों का नाम	देखने में व्यतीत समय (मिनटों में)
i)	i) ....
ii)	ii) ....
iii)	iii) ....

6.5 प्रेस

6.5.1 स्वतंत्रता पूर्व प्रेस

आरंभ : भारत में अपने विकास के क्रम में प्रेस ने कई समस्याओं का सामना किया है। पहले साप्ताहिक समाचार-पत्र *'बंगाल गजट'* 29 जनवरी 1780 को जेम्स ऑगस्टस हिकी द्वारा शुरू किया गया था। उनके अखबार ने मुख्य रूप से ईस्ट इंडिया कंपनी, विशेष रूप से गवर्नर जनरल, वॉरेन हेस्टिंग्स के खिलाफ अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का सहारा लेकर समाचार प्रकाशित किए। जल्द ही कलकत्ता, मद्रास और बॉम्बे में कुछ और समाचार-पत्र प्रकाशित होने लगे। मद्रास में पहला समाचार-पत्र, *मद्रास कूरियर* 1785 में प्रकाशित हुआ और चार साल बाद बॉम्बे का पहला समाचार-पत्र, *बॉम्बे हेराल्ड* प्रकाशित हुआ।

क्योंकि यह समाचार-पत्र ब्रिटिश निवासियों के लिए थे और ईस्ट इंडिया कंपनी की गतिविधियों के बारे में छापते थे, उनका परिसंचरण सीमित था। प्रेस कानून नहीं थे और प्रकाशक अपने विवेक के अनुसार समाचार छापने के लिए स्वतंत्र नहीं थे। इस दौरान समाचार-पत्रों में संपादकों को पत्र, विज्ञापन, फैशन व सामाजिक मुद्दों पर रिपोर्टिंग जैसे कुछ नवाचारों का चलन शुरू हो गया था।

6.5.2 स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रेस

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में समाचार-पत्रों की विशेषता उनका भारतीय भाषाओं में प्रसार था। इन अखबारों ने सरकार के सख्त और अनुचित नियमों के खिलाफ एक प्रतिरोध बनाए रखा। कई भारतीय अभिजात्य वर्ग भी देश के विभिन्न हिस्सों में संपादक और प्रकाशक बन गए। इन समाचार-पत्रों की प्रचार संख्या हजारों में थी, फिर भी ये समाचार-पत्र सामाजिक सुधारों, सूचनाओं, संपर्कों और सामाजिक जागृति के वाहक बन गए। माना जाता था कि भाषाई अखबारों पर नजर रखने से विद्रोह के बारे में खुलासा हो सकता था और उचित उपाय किए जा सकते थे।

बंगाल के समाज सुधारक, पत्रकार और स्वतंत्रता सेनानी राजा राममोहन राय ने कलकत्ता जर्नल की शुरुआत की और इसके बाद संबाद कौमुदी और मिरात-उल-अखबार का प्रकाशन किया। हिन्दी भाषा का पहला समाचार-पत्र उदंत मार्तंड का प्रकाशन पं जुगल किशोर शुक्ल ने वर्ष 1826 में साप्ताहिक आधार पर किया था। स्वतंत्रता के लिए प्रथम संघर्ष के बाद की अवधि में भारतीय भाषा प्रेस के लिए कड़े नियम लगा दिए गए। प्रिंटिंग प्रेस को सील कर दिया गया, न्यूजप्रिंट को जब्त कर लिया गया और कई संपादकों को जेल में डाल दिया गया था।

19वीं शताब्दी के अंत में राष्ट्रवादी प्रेस में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ था। मराठी साप्ताहिक *केसरी* और अंग्रेजी साप्ताहिक *महाराष्ट्र* 1880 में बाल गंगाधर तिलक द्वारा लाया गया था।

तिलक न केवल एक राष्ट्रवादी थे, बल्कि एक सच्चे समाज सुधारक भी थे। उन्होंने जोर देकर कहा कि समाचार-पत्रों को सामाजिक परिस्थितियों को उजागर करना चाहिए जिन्हें सुधारने की आवश्यकता है। उनके लिए अखबार राजनीतिक मुक्ति का भी जरिया था।

माथुर (2013) ने लिखा है कि अंग्रेजों के खिलाफ गुस्सा और अशांति 20वीं शताब्दी के शुरुआती हिस्से में अपने चरम पर थी। महात्मा गांधी के प्रभावशाली लेखन ने भी जनता की

प्रभावित किया। *युवा भारत* और *हरिजन* विशाल पाठकों को इकट्ठा करने और स्वतंत्रता संग्राम के लिए लामबंद करने में सक्षम थे। उन्होंने दृढ़ विश्वास और जुनून के साथ लिखा। उनके लेखन सरल, स्पष्ट और शक्तिशाली थे। गांधी जी ने 'स्वराज' के लिए भावनाओं को जगाने के साथ-साथ लोगों अभिव्यक्ति का एक मंच प्रदान करने के लिए समाचार-पत्र प्रकाशित किए।

गांधी जी एक विपुल पत्रकार के रूप में विख्यात थे। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से जनता की राय को प्रभावित किया। उनके समाचार-पत्रों ने विज्ञापनों को स्वीकार नहीं किया, वह पाठकों की सदस्यता के आधार पर चलते थे। गांधी जी जनता के बीच अपने विचारों को फैलाने का एक सशक्त माध्यम बन गए। राष्ट्रीय आंदोलन पर उनके रुख को उनके लेखन ने बहुत अच्छी तरह से दर्शाया। यही वजह थी उनके समाचार-पत्रों के साथ पाठक हमेशा बने रहे।

गांधी जी से प्रेरणा लेकर उस समय के कई लोकप्रिय नेताओं ने जनता तक पहुंचने के लिए पत्रकारिता को एक साधन के रूप में लिया। वे संपादकों और प्रकाशकों के रूप में पत्रकारिता से जुड़ गए। उन्होंने पत्रकारिता को एक मिशन समझते हुए पूरे उत्साह के साथ, सामाजिक सुधार, शिक्षा और राष्ट्रीय जागृति के लिए अपने साप्ताहिक या दैनिक समाचार-पत्रों का इस्तेमाल किया। इस युग की पत्रकारिता भारतीय स्वतंत्रता के कारण के प्रति अपने मिशनरी उत्साह के लिए जानी जाती थी (माथुर, 2013)।

गांधी, नेहरू, तिलक और ऐसे देश भक्तों के मार्गदर्शन में, समाचार-पत्र भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ स्वतंत्रता संग्राम में सहभागी बन गए।

6.5.3 स्वतंत्र भारत में प्रेस

एक लंबे और कठिन स्वतंत्रता संग्राम के बाद विदेशी शासन के अंत को चिह्नित करने के लिए स्वतंत्रता के बाद एक सर्वव्यापी उत्साह प्रबल हो गया। राष्ट्र की उम्मीदों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने और एक मजबूत स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए पूरे देश में बहुत उत्साह था। ऐसे समय में, इन सभी आग्रहों और आकांक्षाओं को समझते हुए, प्रेस को राष्ट्र निर्माण में भूमिका निभानी थी। वास्तव में, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका के साथ प्रेस को चौथे स्तंभ के रूप में देखा जाने लगा।

देश के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने भी प्रेस के विकास में बहुत योगदान दिया। उन्होंने एक स्वतंत्र और निष्पक्ष प्रेस के लिए दबाव डाला। उन्होंने प्रसिद्ध रूप से टिप्पणी की थी कि, "एक दबी और नियमित प्रेस की तुलना में मैं जोखिमों की संभावना वाली एक स्वतंत्र प्रेस ज्यादा पसंद करूंगा"। नतीजतन, भारत के स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद प्रेस को काफी हद तक विनियमित कर दिया गया।

इस प्रकार, भारत में प्रेस स्वतंत्र, जीवंत और सतर्क है। यह निडरता से हमारे समाज और राजनीति में गलतियों को उजागर करती है। यह उत्साह से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करती है और किसी प्रकार से सरकार से प्रतिबंधित या नियमित नहीं है।

आज भारतीय प्रेस काफी हद तक निजी हाथों में है और एक वाणिज्यिक उद्यम है। संख्यात्मक रूप से अधिकांश समाचार-पत्र व्यक्तिगत स्वामित्व के अधीन पंजीकृत हैं लेकिन उनका प्रसार सीमित है। दूसरी ओर, केवल कुछ सीमित कंपनियों (लगभग 75) के पास बहु संस्करणों और पत्रिकाओं के साथ प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र हैं, जिनकी प्रसार संख्या 80 प्रतिशत से अधिक है।

6.5.4 मिशन से प्रोफेशन

भारतीय स्वतंत्रता ने प्रेस की भूमिका में व्यापक बदलाव लाया। इससे पहले, वे 'व्यू-पेपर' के रूप में कार्य करके लोकप्रिय नेताओं को जनता से जोड़ रहे थे और उनकी पहल के लिए समर्थन प्राप्त करने में उनकी मदद कर रहे थे। प्रेस स्वतंत्रता संग्राम की एक शक्तिशाली साधन बन गई थी। लेकिन स्वतंत्रता के बाद परिदृश्य बदलने लगा क्योंकि जनता अपने नेताओं के प्रति श्रद्धा की बजाए, उन्हें उनके निर्णयों और किए जा रहे कार्यों से परखने लगी। यद्यपि संघर्ष के दौर में जनता के जुड़ाव के चलते नेताओं की लोकप्रियता निर्बाध रूप से जारी रही और जल्द ही प्रेस लोकतंत्र के प्रहरी की भूमिका में आ गया।

हालांकि, स्वतंत्रता के बाद सरकार ने समाचार-पत्र उद्योग को विनियमित करने की आवश्यकता महसूस की। इसलिए, 1952 में भारत के पहले प्रेस आयोग का गठन समाचार-पत्रों को अपनी स्वतंत्रता बनाए रखने, आचार संहिता के माध्यम से उच्च पेशेवर आचरण बनाए रखने के साथ-साथ सार्वजनिक रुचि के उच्च मानकों को बढ़ावा देने में के लिए किया गया था। उनकी सिफारिशों के आधार पर, प्रेस परिषद अधिनियम, 1965 पारित किया गया था और 1966 में भारतीय प्रेस परिषद की स्थापना की गई थी।

धीरे-धीरे, प्रेस के लिए सख्त नियमों के परिणामस्वरूप 'हैंड-आउट' पत्रकारिता की नई प्रवृत्ति की शुरुआत हुई, जहां रिपोर्ताज को प्रकाशन के लिए दिए गए आधिकारिक बयानों तक ही सीमित कर दिया गया। भले ही राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के वक्तव्य को समाचार-पत्र में कवरेज मिल जाए लेकिन सरकार के महत्वपूर्ण कार्यों के विश्लेषण की बहुत अधिक गुंजाइश नहीं थी। समाचारों के अलावा कार्टून और संपादकीय पर भी नजर रखी जाती थी इस दौरान प्रेस को 1962 में भारत-चीन युद्ध के अलावा अपने समय के किसी भी बड़े खुलासे को प्रकाशित करने की अप्रत्यक्ष रूप से मनाही थी। प्रेस ने नेहरू की रक्षा तैयारियों की कड़ी आलोचना की और तत्कालीन रक्षा मंत्री कृष्ण मेनन स्वतंत्र भारत में प्रेस हमले का पहला बड़ा शिकार बन गए (माथुर, 2013)।

6.5.5 आपातकाल का दौर : एक अंधेरा अध्याय

बाद के वर्षों में, चीजें काफी हद तक बदल गईं। प्रेस इंदिरा गांधी के प्रति उतना दयालु नहीं रहा, जैसा कि नेहरू के लिए था। उन्होंने लगभग 18 वर्षों तक भारतीय राजनीतिक परिदृश्य पर प्रभुत्व बनाए रखा लेकिन प्रेस को हमेशा संदेह के साथ देखा। इस तरह के पारस्परिक अविश्वास और सख्ती से प्रेस भी विरोधी भूमिका में आ गया। शासकों ने प्रेस को वश में करने के लिए यथासंभव प्रयास किए। 1975 में लगभग डेढ़ साल चली राष्ट्रीय आपातकाल और सेंसरशिप उसी का परिणाम था। आपातकाल के दौरान यह कहना कि "पत्रकारों को झुकने के लिए कहा गया लेकिन वे रेंगने लगे", पूरे पेशे पर एक दुखद टिप्पणी थी। 1977 में आपातकाल की समाप्ति और सेंसरशिप का हटना, भारत में प्रेस विशेष रूप से समाचार-पत्र/पत्रिकाओं के विकास का कारक बना। नतीजतन 1978 में दूसरे प्रेस आयोग का गठन किया गया जिसने सरकार और प्रेस के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने पर बल दिया।

सरकार और सार्वजनिक जीवन व्यतीत करने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों की विफलताओं को उजागर करना प्रेस का एक मुख्य कार्य रहा है। यह भारतीय प्रेस के लिए भी सच है। हालांकि, 1979 में अंग्रेजी साप्ताहिक द्वारा भागलपुर ब्लाइंडिंग मामले को सामने लाने के परिणामस्वरूप

जो सार्वजनिक हंगामा हुआ, उसने भारतीय पत्रकारिता में एक नए चरण की शुरुआत की। कुछ वकीलों द्वारा मामले को सुप्रीम कोर्ट के संज्ञान में लाने से मीडिया की समाज के प्रहरी यानी वॉच डॉग सरीखी महत्ता समझी जाने लगी। तब से भारत में खोजी पत्रकारिता ने कई मील के पत्थर समझे जाने वाले मामलों को कवर किया है और इस प्रक्रिया में विशेष व्यक्तियों और सरकारों के कई अनैतिक मामले भी सार्वजनिक प्रकाश में आए हैं।

नतीजतन, वर्षों से भारत में प्रेस के कामकाज को निर्देशित करने व एक आकार देने वाला उदारवादी दर्शन और प्रेस के सामाजिक उत्तरदायित्व सिद्धांत के बीच संघर्ष, अब तेज होता जा रहा है। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता है कि भारत में पत्रकारिता एक पेशा बन गई है। एक मिशन के रूप में शुरू हुई पत्रकारिता, अब एक प्रतिस्पर्धी और बाजार-संचालित उद्योग बन गई है। प्रचार और बिक्री महत्वपूर्ण हो गए हैं। समाचार और समाचार-पत्र बेचने के कौशल और रणनीतियां जरूरी हो गई हैं। समाचार-पत्र की बिक्री और प्रचार के लिए आज उसकी मुख्य 'सामग्री' यानी समाचार से भी ज्यादा आवश्यक आकर्षक सुर्खियां, पृष्ठ सुसज्जा, रूपरेखा हो गए हैं।

1980 और 1990 के दशक में संचार प्रौद्योगिकी क्रांति, उदारीकरण और वैश्वीकरण के साथ भारतीय अर्थव्यवस्था ने देश में प्रेस को तेजी से बदल दिया। कंप्यूटरीकरण, बेहतर दूरसंचार सेवाएं, उपग्रह, मोबाइल फोन, नवीनतम मुद्रण प्रौद्योगिकियां, डिजिटल कैमरे सभी ने देश में प्रेस के तेजी से विस्तार में योगदान दिया। साथ ही, प्रेस के बारे में धारणा बदल गई और इसे साबुन और टूथपेस्ट जैसे ही किसी उत्पाद के रूप में विपणन व बेचा जाने लगा। कई समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के मालिकों ने संपादकों और समाचार संवाददाताओं से ज्यादा विज्ञापनदाताओं और विपणक को प्राथमिकता देना शुरू कर दिया। संपादक रूपी संस्था को अस्वीकार कर दिया।

हालांकि समाचार-पत्र एक उत्पाद से कहीं अधिक है, जिसे विपणन और उपभोक्ताओं को बेचा जाना है। यह पाठकों के मन, विचारों, मूल्यों और संस्कृति को प्रभावित करता है। इसलिए, यह एक उत्पाद की तुलना में बहुत अधिक भूमिका निभाता है। समाचार-पत्र के लिए आर्थिक व्यवहार्यता आवश्यक है और लाभ कमाना भी वैध है क्योंकि यह एक वाणिज्यिक गतिविधि है।

6.5.6 वर्तमान युग

वर्तमान युग सूचना एवं तकनीकी प्रगति का दौर है, जिसके चलते काफी तीव्र गति से दूरदराज के क्षेत्रों से समाचार इकट्ठा करने में मदद मिली। इंटरनेट सेवाओं की मदद से कहीं भी डाउनलोड करने, संपादन करने, पृष्ठ साज-सज्जा व रंग-मुद्रण के बाद, देश भर के पाठकों को अंतिम उत्पाद वितरित करने में सहायक है। इसके परिणामस्वरूप प्रमुख समाचार-पत्रों के बहु-संस्करण कई प्रकार के फीचर, विशेष परिशिष्ट, क्षेत्रीय समाचारों और स्थानीय पाठकों से संबंधित समाचार भी निकलने लगे।

दैनिक समाचारों की बढ़ती संख्या को संभालने की क्षमता ने, समाचार-पत्रों के लिए पत्रिकाओं की कुछ विशेषताओं को समाहित करना भी संभव बना दिया। नतीजतन, कुछ समाचार पत्रिकाएं समय के साथ बंद हो गई, जैसे द इलस्ट्रेटेड *वीकली ऑफ इंडिया*, *धर्मयुग*, *रविवार आदि;* जबकि कुछ विशेष रुचि की पत्रिकाएं जैसे *बिजनेस इंडिया, बिजनेस वर्ल्ड और*

बिजनेस टुडे और फिल्मी पत्रिकाओं में; *फिल्मफेयर, स्टारडस्ट, सिने ब्लिट्ज* और कंप्यूटर और प्रौद्योगिकी पत्रिकाएं; *कंप्यूटर टुडे और टेलीमैटिक्स* अधिक लोकप्रिय हो गईं। आर्थिक विकास और बाजार में बढ़ती रुचि को पूरा करने के लिए, अधिकांश अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के दैनिक समाचार-पत्रों ने व्यापार व आर्थिक विशेष परिशिष्ट देना शुरू किया। इतना ही नहीं अन्य व्यापार और आर्थिक दैनिक समाचार-पत्रों की संख्या में भी खासी वृद्धि हुई।

शुरुआत में 24x7 टेलीविजन समाचार चैनल, समाचार-पत्र उद्योग के लिए खतरा समझा जाने लगा, लेकिन जल्द ही यह नए वातावरण में समायोजित हो गया। टेलीविजन समाचार चैनल ब्रेकिंग न्यूज़ और एक्सक्लूसिव न्यूज़ के प्रमुख स्रोत बनकर उभरे और समाचार-पत्र तथ्यपरक, विश्वसनीय खबरों और उनके विश्लेषण, संपादकीय के लिए पढ़े जाते रहे। अखबारों ने अधिक फीचर, सॉफ्ट स्टोरी और फोटो फीचर देना शुरू कर दिया। इससे अखबारों में पेज-3 पत्रकारिता का भी प्रचलन बढ़ा। हमारे आस-पास की दुनिया में हर दिन घटने वाली घटनाओं को जानने-समझने के संदर्भ में यह कहना गलत नहीं होगा कि टेलीविजन समाचार ऐपेटाइज़र की तरह और समाचार-पत्र भूख को संतुष्ट करने के लिए मुख्य मेनू की तरह हैं।

6.5.7 समकालीन चुनौतियां

आज प्रेस पर पेड न्यूज़ में लिप्त होने का आरोप लगाया जाता है जिसका अर्थ है, पैसे के बदले में पेड फीचर्स या समाचार लेख प्रकाशित करना। यह विज्ञापनों से अलग हैं क्योंकि वे सामान्य समाचार की तरह दिखते हैं। यह एक नैतिक उल्लंघन है क्योंकि पाठक सामान्यतः समाचार और पेड न्यूज के बीच अंतर करने में सक्षम नहीं होते हैं। आज प्रेस के सामने आने वाले अन्य प्रमुख मुद्दों में कामकाजी पत्रकारों के वेतन पर मजीठिया वेतन बोर्ड की सिफारिशों का उल्लंघन, खराब नैतिक मानकों और पीत पत्रकारिता या सनसनीखेज कहानियों का प्रसार शामिल है। हालांकि, सभी परिवर्तन बुरे नहीं हैं। नए प्रयोगों ने समाचार-पत्रों के साथ रंग जोड़ा है और उन्हें अधिक दिलचस्प बना दिया है। अखबारों के ऐप और ई-पेपर ने हजारों किलोमीटर दूर होने के बावजूद लोगों को अपने शहरों से समाचार-पत्रों के ऑनलाइन संस्करणों तक पहुंचने की सहूलियत दी है।

बेहतर प्रस्तुतीकरण, डिजिटल मीडिया के विकास के कारण रंगों, चित्रों, डिजाइन और ग्राफिक्स के बेहतर उपयोग, कंप्यूटर और सामग्री अनुकूलन के माध्यम से तेज और सुविधाजनक संपादन ने इसे बहुत अधिक गतिशील उद्योग बना दिया है।

हालांकि, आज वाणिज्यिक विचारों ने पेशेवर विचारों की तुलना में प्राथमिकता ली है, जिसके चलते बिक्री बढ़ाने के लिए समाचार प्रस्तुतियों और टिप्पणियों को सनसनीखेज करके प्रस्तुत किया जाता है। नतीजतन जनता को अपने समाज के बारे में सूचित व शिक्षित करने वाले पत्रकारिता जैसे महान पेशे की विश्वसनीयता को नुकसान पहुंचा है। लोकतंत्र का चौथा स्तंभ समझे जाने वाले प्रेस के लिए यह स्व-निरीक्षण का समय है। ऐसे में किसी भी बाहरी हस्तक्षेप से ज्यादा जरूरी है प्रेस का स्व-नियमन, जिसके लिए एडिटर्स गिल्ड ऑफ इंडिया नामित निकाय है।

6.5.8 प्रेस और किताबों का विस्तार

इस प्रकार भारत में टेलीविजन के विकास के बावजूद, प्रेस का विस्तार और विकास जारी है। 1950 के दशक में भारत में केवल 240 दैनिक समाचार-पत्र प्रकाशित किए गए थे। यह संख्या 1990 में 2,856 दैनिक समाचार-पत्रों और 2000 में 5,364 दैनिक समाचार-पत्रों तक बढ़ गई। मार्च 2018 में, आरएनआई के साथ एक लाख से अधिक प्रकाशन पंजीकृत थे।

1993 में, प्रकाशित समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं की कुल संख्या 35,595 थी जो 2006 में बढ़कर 62,550 हो गई जो 1990 के दशक के बाद से प्रेस की पर्याप्त वृद्धि का संकेत है। भारत के समाचार-पत्रों के पंजीयक की 55वीं वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार- हमारे पास कुल 82,237 पंजीकृत पत्रिकाएं हैं, जिनमें से 32,793 हिंदी में है। अंग्रेजी 11,478 समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के साथ दूसरे स्थान पर रही। 2009-10 में समाचार-पत्रों का कुल प्रचलन 30,88,16,563 से बढ़कर 32,92,04,841 हो गया।

भारत में पुस्तकों का प्रकाशन, गोवा में पहली प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना 1556 के साथ हुआ। आज पुस्तकों का प्रकाशन एक समृद्ध व्यवसाय है। विपणन और प्रौद्योगिकी में प्रगति ने भारत के पुस्तक प्रकाशन उद्योग को और आगे बढ़ाया है। आज किताबें स्थानीय अनुवादों, ई-पुस्तकों, ऑडियो पुस्तकों, ग्राफिक पुस्तकों जैसे विविध इलेक्ट्रॉनिक रूपों में उपलब्ध हैं। नीलसन बुक स्कैन का अनुमान है कि वर्ष 2011 में 3.28 बिलियन रुपए की 13 मिलियन किताबें बेची गई, जिसमें 286,455 से अधिक अलग-अलग शीर्षक शामिल थे। वर्ष 2013 के अंत में, पत्रिका उद्योग का मूल्य 14 बिलियन था। फोटोग्राफी, यात्रा, जीवन शैली, बॉलीवुड, वास्तुकला, खेल, व्यापार आदि विषयों पर दर्शक वर्ग को लक्षित करने वाली विशिष्ट पत्रिकाएं ही आज सबसे अच्छा प्रदर्शन कर रही हैं।

बोध प्रश्न 2

नोट: 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का उपयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए संभावित उत्तरों के साथ अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1. स्वतंत्रता पूर्व की अवधि में प्रेस द्वारा निभाई गई भूमिका क्या थी?

....

....

....

....

....

2. गांधी जी ने प्रेस के उद्देश्यों को कैसे परिभाषित किया?

....

....

....

....

3. कुछ प्रसिद्ध सामाजिक और राजनीतिक हस्तियों का उनके प्रकाशनों के नामों के साथ उल्लेख करें, जिन्होंने स्वतंत्रता पूर्व की अवधि में पत्रकारों के रूप में भी काम किया था।

....

....

....

....

....

4. स्वतंत्रता के बाद के युग में प्रेस की मुख्य जिम्मेदारियां क्या थीं?

....

....

....

....

....

5. तकनीकी परिवर्तनों ने प्रेस को कैसे प्रभावित किया है?

....

....

....

....

....

6. आज के समय में प्रेस के समक्ष क्या समस्याएं हैं?

....

....

....

....

....

6.6 सारांश

भारत में मास मीडिया ने सूचना प्रदाता, शिक्षक और मनोरंजनकर्ता के रूप में हमारे देश के विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रत्येक मीडिया ने अलग-अलग समय पर राष्ट्र के विकास की दिशा में अपने तरीके से योगदान दिया है। लोक मीडिया के अलावा, प्रिंट मीडिया पहला प्रमुख माध्यम था, जो जनता तक पहुंचा। इस प्रकार, प्रिंट मीडिया (किताबें, समाचार-पत्र, पत्रिकाएं, पत्रिकाएं आदि) का एक लंबा और महत्वपूर्ण इतिहास है। यह मुख्य रूप से अंग्रेजों के खिलाफ जनता को संगठित करने पर केंद्रित था और इसने राष्ट्रीय स्वतंत्र

आंदोलन के लिए समर्थन जुटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। शुरुआती दिनों में, ब्रिटिश नागरिकों ने सरकार के खिलाफ अपना गुस्सा निकालने के लिए समाचार-पत्रों को प्रकाशित करना शुरू कर दिया। बाद में, स्वतंत्रता सेनानियों ने जनता के साथ जुड़ने, विद्रोहों को संगठित करने, अंधविश्वास दूर करने और राष्ट्र को एकजुट करने के लिए उनका इस्तेमाल किया।

अंग्रेजों को प्रेस के विकास पर प्रतिबंध लगाना पड़ा क्योंकि यह उनके लिए खतरा बन गया था। महात्मा गांधी सहित कई स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने-अपने अखबार निकाले। भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में संवैधानिक प्रावधानों ने नए स्वतंत्र भारत में समाचार-पत्रों को बहुत मदद की। वही उस समय के समाचार-पत्रों ने राष्ट्र निर्माण और सरकार की सहायता करने पर ध्यान केंद्रित किया। वह सरकार के कार्यों और नीतियों की खुले तौर पर और निडरता से आलोचना करने से नहीं डिगे। प्रेस के हितों की रक्षा के लिए एक प्रेस परिषद का गठन किया गया।

हालांकि 1970 के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा आपातकाल लगाए जाने से प्रेस की प्रतिष्ठा और गुणवत्ता का अपूरणीय नुकसान हुआ। सेंसरशिप के दौरान, कुछ मामलों में समाचारों, संपादकीय और लेखों को प्रकाशित करने के लिए अखबारों को पूर्व अनुमति प्राप्त करनी पड़ती थी। 1990 के दशक में उदारीकरण के आने के साथ चीजों में सुधार शुरू हुआ। न्यूजप्रिंट को सब्सिडी दी गई और बाहर की कंपनियों को भारतीय प्रिंटिंग दुनिया में निवेश करने की अनुमति प्राप्त हुई। केबल टीवी ने समाचार के स्रोतों के रूप में समाचार-पत्रों को कड़ी प्रतिस्पर्धा दी और परिणामस्वरूप, समाचार प्रस्तुति की गुणवत्ता में सुधार हुआ।

6.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. Mehta Nalin; India on Television, Harper Colins Publisher India, New Delhi, 2008
2. Page David & Crawley William; Satellites Over South Asia, Sage Publication New Delhi, 2001
3. Robin Jeffrey, India's Newspaper Revolution: capitalism, politics and the Indian Language PRESS, Oxford University Press, 2003
4. Black Jay & Bryant Jennings; Introduction to Mass Communication. Third Edition, WCB WM.C. Brown Publishers, 1992
5. Singhal Arvind & Rogers M. Evert; India's Communication Revolution, Sage Publication, New delhi, 2001
6. Kumar Keval J.; Mass Communication in India, Jaico Publishing House, Delhi, 2005
7. India Year Book; Chapter on Mass Media, Publication Division, Government ofIndia, New Delhi.
8. Mathur, C. K. (2013). Mass media and democracy in India: a political study of their relationship in post emergency period. INFLIBNET. Retrieved from http://shodhganga.inflibnet.ac.in:8080/jspui/handle/10603/27658

6.8 बोध प्रश्नों के संभावित उत्तर

बोध प्रश्न 1

1. भारतीय संविधान में प्रेस की स्वतंत्रता के लिए कोई स्पष्ट उपबंध नहीं है, तथापि, हमारे मौलिक अधिकारों के भाग के रूप में अनुच्छेद 19 (1) (क) के तहत **"भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार"** प्रदान किया गया है। अनुच्छेद 19 में वर्णित नीतियुक्त प्रतिबंधों के अलावा अन्य किसी भी सरकारी हस्तक्षेप के बिना समाचार-पत्र प्रकाशित करने की स्वतंत्रता के संदर्भ में इसकी व्याख्या की गई है।

बोध प्रश्न 2

1. अपने शुरुआती दिनों के दौरान, भारत में प्रेस का प्रबंधन अंग्रेजों द्वारा किया गया था। वे सरकार के प्रति असंतोष जाहिर करने के लिए इसका इस्तेमाल करते थे। बाद में कई स्वतंत्रता सेनानियों और समाज सुधारकों ने राष्ट्रवादी कारणों के लिए प्रेस का इस्तेमाल किया। यह सामाजिक और आर्थिक सुधार, राजनीतिक मुक्ति का एक माध्यम था। साथ ही राष्ट्रीय एकीकरण के लिए एक साधन भी था।

2. गांधी जी के अनुसार प्रेस के मुख्य उद्देश्य :
   - लोगों के बीच श्रेष्ठ रुचि को जगाने के लिए
   - सार्वजनिक जीवन में दोषों को निडरता से उजागर करने के लिए और
   - लोकप्रिय भावनाओं को समझना और उन्हें अभिव्यक्ति देना है।

3. प्रमुख व्यक्तित्व और उनके प्रकाशन
   - राजा राममोहन राय – संबाद कौमुदी और मिरात-उल-अखबर,
   - बाल गंगाधर तिलक – *केसरी* (मराठी) और *महाराष्ट्र* (अंग्रेजी)
   - महात्मा गांधी – *यंग इंडिया* और *हरिजन*

4. आजादी के तुरंत बाद, राष्ट्रीय आग्रहों और आकांक्षाओं को व्यक्त करने और एक मजबूत स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए बहुत उत्साह था। प्रेस एक ही समय में, राष्ट्रवादी आग्रहों और आकांक्षाओं का एक प्रमुख हिस्सा और साधन दोनों था। प्रेस को राष्ट्र निर्माण में भूमिका निभानी थी और सरकार द्वारा विकास के प्रयासों का भी समर्थन करना था। इससे प्रेस से वॉचडॉग की भूमिका निभाने की भी उम्मीद जगी।

5. कंप्यूटरीकरण, बेहतर दूरसंचार सेवाएं, उपग्रह, मोबाइल फोन, नवीनतम मुद्रण प्रौद्योगिकियां, डिजिटल कैमरे सभी ने रंग की शुरुआत और देश में प्रेस के तेजी से विस्तार में योगदान दिया। प्रेस को एक उद्योग और एक व्यवसाय के रूप में देखा जाने लगा और समाचार-पत्र को साबुन और टूथपेस्ट जैसे किसी भी अन्य उत्पाद के रूप में विपणन और बेचा जाने लगा। कई समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं के मालिकों ने विज्ञापनदाताओं और विपणकों को प्राथमिकता देना शुरू कर दिया।

नोट

नोट

नोट